श्रीपरमात्माय नमः

श्री

ध्यानकल्पतरू

RADISE OF MEDITATION

by

SHRI AMOLAKH RISHIJEE

अनेक सूत्रों व ग्रन्थों का दोहन कर मुमुक्षु
जनोंकी इच्छा पूर्ण करने के लिये

लब्रह्मचारी मुनी श्री अमोलख ऋषिजीने

बनाया और

सेठ कुंदनमल घुंमरमल्ल
बापणनें
(घोडनदी पुणें)

रेसिडेन्सी बाजार दक्षिण हैद्राबादमें
फाटक आणि कंपनी के छा॰ छपाके प्रसिद्ध किया
त २५० मुल्य शुद्ध प्रवृति सर्व प्रत १२५०

॥प्रस्तावना॥

मोक्ष कर्म क्षया देव, स सम्यग्ज्ञानतः समृत्तः ॥
ध्यान साध्यं मतं तद्धि, तस्मात द्धित मात्मनः॥

इस जगत् वासी सर्व जीव एकान्त सुखके अभिलाषी हैं; वो एकान्त सुख मोक्ष स्थानमें है; इसी सबबसे सर्व धर्मावलम्बियों अपनी धर्म करणीका फल-मोक्षकी प्राप्ती बतलाते हैं. और अलग २ मोक्षके नामकी स्थापना कर, उसकी प्राप्तीके लिये क्षप करते हैं. जो सर्व दुःखसे रहित, एकान्त सुखस्थान मय मोक्षहै, वो सर्व कर्मोंके क्षयसे होता है. कर्म क्षय करनेका उपाय दर्शानें वाला सम्यक (समकित युक्त) ज्ञान है; वो सम्यक ज्ञान ध्यानसे होता है. योग वाशिष्ट ग्रन्थमें कहा है कि "विचारं परमं ज्ञानं" विचार-ध्यान है सोही परमोत्कृष्ट ज्ञान है. इस लिये ध्यानही एकान्त सुख प्राप्त करनेका मुख्य हेतू है. परम सुखार्थी जनोंको ध्यानके स्वरूपको जाणनेंकी विशेष आवश्यकता समझ, यह "ध्यानकल्पतरू" ग्रन्थ रचा गया है. इसमें शूभाशुभ, और शुद्धाशुद्ध ध्यान का स्वरूप समझा-अशुद्ध और अशुभसे बच, शुभ और शुद्ध ध्यान कर.

नेकी रीति सरलतासे दरशाई गइ है. जिससे इसे पठन मनन कर मुमुक्षु जन अपना इष्टार्थ सिद्ध करने का उपाय जान सकेंगे.

"जयतीति जैन" जैन शब्द जिनसे हुवा है, जिन शब्दकी धातू 'जय' है, जय शब्दका अर्थ जीतना, पराजय करना या ताबेमें-काबूमें करना ऐसा होता है. जीत शत्रूकी की जाती है. अपने सच्चे कट्टे और जालिम शत्रू राग द्वेष को जीते व कमी करे, वोही सच्चे जैनी व जैन धर्मी हैं. राग द्वेष न होय ऐसे पवित्र धर्ममें मतभेद पडना, या क्लेश होना असंभव है, क्यों कि पानीसे वस्त्र जलता नहीं है. यह जैन धर्मका सत्य प्रभाव फक्त दो हजारही बर्ष पहले इस आर्य भूमीमे प्रत्यक्ष द्रष्टी आताथा; हजारों साधू. साध्वियों और लाखो श्रावक, श्राविकाओं तथा असंख्य सम्यक द्रष्टी जीव सब एक जिनेश्वर देवकेही अनुयायी थे. इस सम्पके परम प्रभाव से, या रागद्वेष रहित वीतरागी प्रवृतीके प्रभाव से, यह 'जैन धर्म' सर्व धर्मों से उच्च अद्वितीय पदका धारक था, बडे सुरेन्द्र नरेन्द्र इसे मान्य करते थे; अपार ऋद्धि सिद्धीयों का त्याग कर जैन भिक्षुक (साधू) बनते थे, और वीतराग प्रवृती से आत्मसाधन कर सर्व इष्टकार्य सिद्ध करतेथे, मोक्ष प्राप्त कर-

ते थे. जिसका मुख्य हेतू यह ही दिखता है, कि वो महात्मा सूत्रमें कहे मुजब ज्ञान ध्यान में विशेष काल व्यतीत करते थे. श्री उत्तराध्ययनजी सूत्रके २६ में अध्ययनमें साधूके दिन कृत्य और रात्री कृत्य का बयान है, वहां फरमाया हैकि—

पढमं पोरिसी सज्झायं, बीयं झाण झियायइ॥
तइयाए भिक्खायरि, चउत्थी भुजो त्रिसज्झाय॥१२॥

अर्थात्—दिनके पहिले पहरमें सज्झाय (मूल सूत्रका पठन) दूसरे पहरमें ध्यान (सूत्रके अर्थका विचार) तीसरे पहरमें भिक्षाचरी (भिक्षावृतीसे निर्दोष अहार प्रमुख ग्रहण कर भोगवे) और चौथे पहरमें पुनः सज्झाय; यह दिनकृत्य. और रात्रीके पहले पहरमें सज्झाय, दूसरे में ध्यान, और "तइया निंदा मोक्खंतु" अर्थात् तीसरी पहरमें निद्रा से मुक्त होवे. और चौथे में पुनः सज्झाय करे! यों दिन रात्रीके ६ पहर ज्ञान ध्यान में व्यतीत करते थे!!

तैसेही श्रावकों के लिये भी इसी सूत्र के ५ में अध्ययन में फरमाया हैकि—

आगारी यं सामाइ यंगाइ, सड्ढी काएण फासइ॥
पोसह दूहउ पक्खं, एगराइ न हावए॥२३॥

अर्थात्—ग्रस्था वास में रहा हुवा श्रावक त्रिकाल सामायिक वृत‡ शुद्ध श्रद्धा युक्त स्फर्श्ये (करे) और अष्टमी चतुर्दशी दोनो पक्ष(पक्खी) के पोषध वृत* करे, ऐसा सदाधर्म ध्यान करता रहे, परन्तु धर्म करणी में एक रत्तिकी भी हानी नहीं करे, काळ व्यर्थ नहीं गमावे.

गतकालमें श्रावकोंकोभी एक दिनमें कमसेकम एक प्रहर और महीनेमें छे दिन पुर्ण धर्म ध्यानमें गुजारतेथे, और धर्म ध्यान ध्यानेमें ऐसे मशगुल बन जातेथे कि उनके वस्त्र भूषण और प्राण तक भी कोइ हरण करलेता तो उन्हे भान नहीं रहताथा! देखिये! कुंड कोलीयाजी, कामदेवजी वगैरा श्रावकोंको. श्रावकही ऐसे थेतो फिर मुनीराजोंकी तो कहना ही क्या!

जब वे ध्यान से निवृत हो अन्य कार्य मे लगते थे, तोभी ध्यान में किया हुवा निश्चय उनके अतःकरणमें रमण करता था, जिससे अन्य स्वभाव—राग-द्वेष-विषय कषाय आदी दुर्गुणों को उनके हृदय में प्रवेश करने

---

‡ समभावमे प्रवृती करनेका वृत सामायिक वृत त्रिकाल करतेथे और

*ज्ञानादि गुणोंको पोषणेंका पोषध वृत एक महीनेमे छे करतेथे.

का अवकाशही नहीं मिलताथा, अपने कार्यसे नित्रृत अन्य के छिद्र दुर्गुण वगैरा गवेक्षण करने का परपंच वी कथा वगैरा में व्यर्थ काल गमाने की फुरसत ही नहीं पा ते थे, ज्ञान ध्यान सुकृत्यों में निरंतर मग्न रहतेथे, जिस से जिन्ह का चित सदा शांत और स्थिर रहताथा. जैन जैसे निर्दोष और पूंण पवित्र धर्म को पूर्ण प्रकाश मय- बनारक्खाथा! और उनके लिये मोक्षद्वार हमेशा खुला था. अब देखीये अभीके जैन साधू श्रावकों की तर्फ बहू तसे तो ध्यानमें समझतेही नहीं हैं. कितनेक ध्यान और काऊत्सर्गको एक ही कहते हैं, परंतु जो एक होता तो बारह प्रकारके तपमें अलग २ क्यो कहा? काउत्सर्ग तो काया को उत्सर्ग (उपसर्ग) के सन्मुख करनेका और ध्यान विचार करनेका नाम है.

ध्यान के गुण पूरे नहीं जाणने से इस वक्त प्रा यः ध्यान नष्ट जैसाही होरहाहै. जिससे वृत धारीयों को फुरसत मिली, स्वछन्द वृतीहो विकथादि अनेक परपंचमें फसे, बैरागी के सरागी बने और धर्म के नाम से अनेक झगडे खडेकर मन मुखतियार बन बठे अ- पना २ पक्ष बान्ध लिया, यह मेरा अच्छा और वह तेरा बुरा, मोक्ष का इजारा हमारे पन्थ वाले को ही है, अन्य सब मिथ्यात्वी हैं, हमारे को छोड अन्य को अ-

हार आदी देने, में तथा नमस्कार सन्मान करने में सम्यक्त्व का नाश होता है! अनंत संसार की बृधी होती है!! —वगैरा उपदेश कर बाडे बान्ध लिये?

देखिये बन्धूओं! राग द्वेष जीतने वाले जिन देवके अनुयायि यों का उपदेश? ऐसी २ विपरीत परूपणासे इस शुद्ध जैन मतके अनेक मतांतर होगये हैं, और एकेक की कटनी—सत्यानाशी का उपाय का विचार ध्यानमें करने में ही परम धर्म समझने लगे, जो कूयुक्तियों कर विवाद में जीते उसेही सच्चा धर्मी जान ने लगे, जो जरा संस्कृतादि भाषा बोलने लगे और कहानीयों रागणीयों कर प्रषदा को हँसादे वोही पाण्डित राज कहलाये, जो तरतम योग से साधू बने वोही चौथे आरेकी बानगी बजे, जो ज्यूनी मुहपति पूजणी रक्खी या टीले टमके किये वोही श्रावकजी कहलाये, और विषय कषाय के पोषणेंमे ही धर्म माना! इत्यादी प्रत्यक्ष प्रवृतती हुइ इन क्षुलक बातों परसे ही विचारीये कि जैनी इन को कहना क्या? लाला रण जीतसिंहजीने कहाहै—

जैन धर्म शुद्ध पाय के, वरते विषय कषाय॥
यह अंचभाहो रहा, जलमें लागी लाय॥ १

उज्जैन की सिप्रा नदीके पाणीमें भैंसे(पाडे)जल

(बल) मरे? ऐसा आश्चर्य जनक बनाव बन ने का सबब भैंसे की पीठ पर लदेहुवे चूनेही का था !! तैसे ही जैन धर्म में रहे हुये जीव नित्य हीन दिशा को प्राप्त होते हैं, इसका सबब उनके हृदय में रहा हुवा विषय कषाय इर्षा रूप क्षार ही है !! सखेदाश्चर्य है की जैन धर्म जैसा सुधा सिन्धू में गोता खा कर ही, विषय कषाय इर्ष रूप लाय (आग) शांत नहुइ ! हा इति खेद ! विषय कषाय राग द्वेष इर्ष रूप लाय बुजणे का शांत करने का उपाय ध्यानही है, कि जिसका प्रभाव प्राचीन कालमें प्रत्यक्ष था उसे लुप्त जैसा हुवा देख, ध्यानका स्वरूप सरलता से समझा ने वाला एक ग्रन्थ अलगही होने की आवश्कता जान यह ध्यानकल्पतरू नामक ग्रन्थ श्री उववाइ जी सूत्र, श्री उत्तराध्येनजी'' सूत्र, श्रीसुयडांग जी सूत्र श्री आचाराङ्गजी सूत्र और ज्ञानार्णव, द्रव्यसंग्रह, ग्रन्थ तथा कित्नेक थोकडों के आधासे स्व–मत्यानुसार बनाके श्री जैन धर्मानुयायी यों को समर्पण- करता हूँ और चहाताहूँकि ध्यानकल्पतरू की शीतल छांय में रमण कर, अशुभ और अशुद्ध ध्यान से निवृत शुभ और शुद्ध ध्यानमें प्रवृत न कर. सच्चे जैनी बन जैन धर्म का पुनरोद्धार करोगे ! और इछितार्थ सिद्ध करने समर्थ बनोगे—विज्ञेषु किंमधिकं.

धर्मो न्नती कांक्षी—अमोल ऋषि.

"आवश्यकीय सुचना"

ध्यान नाम विचार का है, विचार अनेक तरह के होते हैं उन सब विचारों का संग्रह कर श्री सर्वज्ञने चार❀हिस्से किये है, उसके बाहिर एकभी विचार नहीं है. येही युक्ती शास्त्रानुसार व कुछ प्रज्ञानुसार इस "ध्यान कल्पतरु" ग्रन्थमें वापरी है. अधमसे अधम विचरानिगोदमे ले जाने वाला औरउच्चसे उच्च ध्यान-मोक्षमें ले जानेवाला सर्वका संग्रह इसमें आगयाहै, संसारमे ऐसा कोइभी कार्य नहीं है किजो बीन विचार (बिन ध्यान) होवे अर्थात् सर्व कार्यके अव्वल विचारही है. बिन विचार किसीभी कार्यका होना असंभवहै. कोइक अकस्मात् होजाय उसकी बात अलग.

संसारके शुभा शुभ सर्व विचार का चित्र दर्शना येही इस ग्रन्थ का मुख्य प्रयोजन है, इस लिये आर्त और रौद्र ध्यान के पेटमेंसंसारमे वर्तमान वरती हुई बहुतसी बातों का समावेश हुवाहै, जिसे पढ कर पाठक गणों को ऐसा विचार नहीं करना कि ग्रन्थ कर्ता ने सर्व संसार कार्य की उथापना करदी. मेरेउथापन करने से कुछ संसार कार्य बन्ध पडता नहीं है. यह तो अनादी सिलसिला महान सर्वज्ञ उपदेशकें

❀ जो उप शाखा मे शुभ और शुद्ध ध्यान चार ध्यानसे अलग लिये हैं, परन्तु उनका भी धर्म और सुक्ल ध्यान में समवेश होजाता है.

ही नहीं अटका सके तो मैं बिचारा कौनसी गिनती-
में, परन्तु जो कार्यारंभ किया उसका यथातथ्य स्वरूप
यथा बुधि दर्शानायह ग्रन्थ कारकका मुख्य प्रयोजनहै,
इसी सबब संसारमें प्रवृतती हुई बातोंका चित्रइसमें
आया है.

यहतो निश्चय समझियेकि अव्वलके दोनो
ध्यान एकांत निषेधकही हैं, वो छूटने सेही आत्मा सु
खानुभव कर शक्तीहै. परन्तु ऐसा नहीं समझियेकि
खोटे ध्यानी सर्व संसारी जन हैं सो सबकी कुगती होगी
हां! यहतो निश्चय है कि खोटे ध्यानसे कुगती हीहो
ती है. परन्तु ऐसा नहीहै की सर्व संसारीयो एकान्त
कु—ध्यान केही ध्याने वाले है, क्योंकी बहुतसे संसा
री वक्तसर धर्म ध्यानभी ध्याते हैं और अच्छे धर्म कृ
त्यभी करते है. जिससे शुभाशुभ फलकी मिश्रता होने
से. उनको सुखमिश्र देव गतीकी प्राप्ती होतीहै, वहां
भी धर्म ध्यान ध्यानेसे पुनःउच्च मनुष्य गतीको प्राप्त
हो फिर शूभ ध्यानकी विषेशता होनेसे शुद्ध ध्यानको
प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त कर सकेंगे.

अमोलख ऋषि.

ग्रन्थ कर्ताका संक्षिप्त जीवन चरित्र वगैरा.

मालव देशके भोपाल शेहरमें औसवाल बडे साथ काँसटीया गोत्रकेसेठ केवलचंदजी रहतेथे, उनकी पत्नी हुलासा बाइके कूंखसे सवंत १९३३ के भाद्रव वद्य ४ को पुत्र हुवा उसका 'अमोलख' नाम दिया. और एक पुत्र हुये बाद हुलासा बाइका देहान्त होगया. फिर केवलचन्दजीने सं.१९४३ के चेतमे दिक्षा धारण कर पुज्य श्री काहानजी ऋषिजी महाराजके सम्प्रदाय के महंत मुनी श्री खूबाऋषिजी महाराजके शिष्य हुये. औरज्ञानाभ्यास कर एकउपवाससे एक्वीस उपवास तकळड बन्ध और ३०-३१-४१-५१-६१-६३-७१ ८१-८३-९१-१०१-१११-और १२१ यहतपस्यातो छाछके आगरसे, और छे महीनेतक एकांतर उपवास वगैरे बहोतसीकरीहै तथ पूर्व, पंजाब, मालवा, गुजरात, मेवाड, माखाड दक्षिण वगैरा बहुत देश स्फर्श्ये हैं.

सं०१९४४ के फागनमें महात्मा श्री तिलोका ऋषीजि महाराजके पाटवी शिष्यश्री रत्न ऋषिजी महाराजके साथश्रीकेवल ऋषिजी. इच्छा वर (भोपाल) पधारे उसवक्त वहांसे दो कोश खेडी ग्राममें अमोलख चंद अपने मामाके पासथे, मुनीआगम सुन दर्शनार्थ गये

और वैरागी पिता को देख वैरागी बने. और तुर्त फा
ल्गुन वद्य २को दिक्षा धारन कर पिताके साथ हुये, पुज्य
श्री खुब ऋषिजी महाराजके पास लाये. तपस्वीजी श्री
केवल ऋषिजीने संसार सम्बन्धके कारणसे श्री अमोल
ख ऋषिजीको अपने शिष्य बनानेकी नाखुशी दरशाइ ,त
बपुज्य श्रीके जेष्ट शिष्य आर्यमुनी श्री चेना ऋषिजी महा
राजके शिष्य अमोलख ऋषिको बनाये, थोडेहीकाल बा
द श्री चेना ऋषिजी और पुज्य श्री खुबाऋषिजी का स्वर्ग
वास हुवा और फिर थोडे ही काल बाद तपस्वी जी-
श्री केवल ऋषिजी एकले विहारी हुवे. तब नजीकमें वि
चरते श्री भेरूऋषी जी के साथ श्री अमोलखऋषिवि-
चरे, उसवक्त (१९४८ फालगुनमें) औस बाल ज्ञाती
कें एक पन्नालालजी ग्रस्थने १८ वर्ष की वयमे दिक्षा
धारन करश्री अमोलख ऋषिजीके शिष्य बनेथे. उनको-
साथ ले जावरे आये, वहां श्री- कृपा रामजी महारा
ज के शिष्य श्री रूपचंदजी महाराज गुरू वियोग से-
दुःखी हो रहेथे उनको संतोष ने श्री अमोलख ऋषि
जी ने अपने शिष्य पन्ना ऋषिजी को समरपण किये
देखीये एक येह भी उदारता ? फिर दो बर्ष बाद दि
क्षा दाता श्री रत्न ऋषिजी महाराज का मुकाबला
होते श्री अमोलख ऋषिजी उनके साथ विचरने लगे

इन महा पुरूषोने श्री अमोलख ऋषिजी को जैनमार्ग दीपाने लायक जान तहामनसे ज्ञानका अभ्यास कराया सूत्रों की रहस्य समझाइ, जिस प्रसाद से अमोलख ऋषिजीने गद्य पद्यमें अनेक ग्रन्थ बनाये, और बना रहे हैं, और अनेक स्वमति परमति को समझाये और-समझा रहे, हैं श्री अमोलख ऋषिजीके सवंत १९५६ के फागुन में ओसवालसंचेतीज्ञात्ती के मोती ऋषिजी नामके शिष्य हुवेथे. सं१९६०का चतुरमास श्री अमोलख ऋषिजीका घोड नदीथा (तब जैन तत्व प्रकाश नामे बडा ग्रन्थ शिर्फ ३ महीनेमें रचाथा) उसवक्त तपस्वी जी श्री केवल ऋषिजीका चतुर्मास अहमदनगरथा. चौमासे उतरे वाद समागम हुवा. तब तपस्वीजी कहने लगेकी मेरी बृद्ध अवस्था हुइहै, मुजे संयमका सहाय देना तेराकृतव्यहै. तब अमोलख ऋषिजी श्वशिष्य सहित श्री तपस्वी जी के साथ विचरने लगे. सं१९६१ का चतुर्मास श्री सिंघके अग्राह से बंबइ हनुमान गली) में कियायहां जैन स्थानक वासी रत्न चिन्ता मणी मित्रमंडलकी स्थापना हुइ, और इस मंडलकी तर्फसे महाराज श्रीअमोलख ऋषिजी की बनाइ हुइ "जैनामुल्य सुधा" नाम छोटासी पुस्तक प्रसिद्ध हुइ. यहां मोती ऋषिजी स्वर्गस्थ हुये. उस वक्त हमारे पिताजी श्री पन्नालालजी

कीमती कार्यार्थ बबंइ गयेथे, वहां महाराज श्री जीके दर्शन कर वीनंती करी के दक्षिण हैद्राबाद में जैनीयों के घर तो बहूत है, परन्तु मुनीराज का आगम बिलकुल नहीं है, जो आप पधारोगे तो बडा उपकार होगा. यह बात महाराज श्रीको पसंद आइ. चर्तुमास बाद बबंइ से विहार कर. इगत पुरी पधारे, चर्तुमास किया, और यहां के श्रावक मूल चंदजी टॉटीया वगैरे ने महाराज श्री की बनाइ 'धर्म तत्व संग्रह' नामे ग्रन्थ की १५०० प्रतों छपवा के अमुल्य भेटदी. वहां से विहार कर वे जापुर(औरंगाबाद)आये यहां के श्रावक भीखम चंदजी संचेती ने "धर्म तत्व संग्राह" की गुजरातीमें १२०० प्र-तो छपवाके अमुल्यभेट दी. वहां सें जालणे पधारे औ र आगे विहार करने लगे तब सब श्रावकों नें मना कि या की इधर आगे कोइ साधु गये नयींहै, आप पधा रोगे तो बडी तकलीप पावोगे. परन्तु श्री वीर परमा त्मा के वीर मुनीवरो आगे के आगे बढतेही गये औ र क्षुधा त्रषादी अनेक अति कठिण पीरसह सहन क रते, अनेको को नवे भेषसे अश्चर्य उपज्याते अपुर्व धर्म का सत्य स्वरूप बताते सं. १९६३ जेष्ट सुदी १२ शनीवार को चार कमान पावन करी. लाला नेतरामजी राम नारायणजीके दिये मकानमे चतर्मास किया. चौमासेमे

श्री सुखा ऋषिजी बीमार पडके फाल्गुन मांसमे स्वर्ग स्थ हुवे. आगे उष्ण ऋतू और बीकट मार्गके सबबसे श्रावको ने विहार नहीं करने दिया. दूसरे चातुर्मासमे श्री केवल ऋषिजी महाराज उपरा उपरी बिमारीयों भोगवनेसे और बृध अवस्थाके कारण से विहार न होता देख, श्रावकोनेस्थिर वास रहनेकी विनंती करी हमारे सुभग्योदयसे महाराजजी श्री ठाणे २ सातामें विराजमान हैं. महाराज श्रीके सरल जमाने अनुसार चारों अनुयोगरूप सद्बोध श्रवणसे यहां धार्मिक और व्यवहारिकअनेक सुधारे हुवे है और हो रहे हैं.

यहां के लाला नेतरामजी रामनारायणजी ने "जैनतत्व प्रकाश" हजार पृष्टके बडे ग्रंथकी १२५० प्रत छपवाके अमुल्य भेट दी. नित्य स्मरणकी छोटी पुस्तककी ५०० प्रत अमुल्य भेट दी. तैसे पन्नालालजी जमनालालजी रामलाल कीमतीने 'तत्वनिर्णय'की २००० प्रत और जैन 'सुबोधहीरावली'की १००० प्रत छापवाके अमुल्य भेट दी. तैसेही हैद्राबाद ज्ञानवृद्धिक खाते की तर्फसे 'केवलानंद छन्दावली' की तीन अवृत्तीकी ३५०० प्रत अमुल्य भेट दी. तैसेही उक्त लालाजी कीमतीजी और यादगीरी (हैद्राबाद) वाले सेठ नवलमलजी सूरजमलजी तथा सोरापुर बेन्डरवाले चोथम-

लजी सुलतानमलजीने 'भीमसेण हरीसेणकी' ढालकी १००० प्रत छपवाके अमुल्य भेट दी. तैसेही हैद्राबाद ज्ञान वृध्दिक खाताकी तर्फसे भक्तामरस्तोत्रकी १२०० प्रत छपवाके अमुल्य भेट दी. तैसेही सिकंदराबाद(हैद्राबाद) गुलाबचंदजी गणेशमलजी समदरीया तर्फसे श्री गणेशबौधकी १००० प्रत तथारामलाल पनालाल कीमतीजीकी तर्फसे२५० प्रत यों१२५०प्रत छपवाकेअमुल्य भेट दी.तैसेही जैन शिशु बौधनीकी ५०० प्रत ज्ञान वृधिक खातेका तर्फसे. तैसेही लालजी कीमतीजी और घोड नदी (पुन) वाले कुंदन मलजी घुमर मलजी बापणा और सिकद्राबाद के गुलाबचंदजी गणेशमलजी समदरीकी तर्फ से यह"ध्यानकल्पतरू"ग्रन्थ की१२५०प्रतो अमुल्य भेट दीजातीहै. यों आजतक सुम्मार छोटीबडी १२५०० पुस्तकों तो अमुल्य भेटदी गइ हैं. और सिकद्राबादके सेठ सागर मलजी गिरधारीलालजी तथा सहेंसमलजी जुगराजजी की तर्फ से "जैन तत्वप्रकाश" की दूसरी आवृती की१०००प्रत और अन्य२ग्रन्थों की तर्फ सें १००० प्रतयों जैन तत्व प्रकाशकी २०००प्रतो (छपरही है) और सिकंद्राबाद के शिवराजजी रूगनाथ मलजी की तर्फसे मदन चरित्र ५७ खंड (१०८ ढाल) की १०००प्रते; और

तिर्थंकर सह श्री (९०९ तिर्थंकरोके नाम की जिनवंदना) की १००० प्रतों, कीमती जी की तर्फसे और बारकस (हैद्राबाद) वाले बुद्धमलजी जवारमलजी मानमलजी दुगडकी तर्फसे और यादगिर (हैद्राबाद) वाले नवलमलज्जी सुरजमलजी तर्फसे जिनदास सुगणी चरित्र ४ खंड ४० ढाल १००० प्रतो और सिंहलकुंवरकी ढाल तथा भुवन सुन्दरीकी ढाल (दोनोकी १ पुस्तक) की १००० प्रतो यों सर्व ६००० पुस्तको छपवाके अमुल्य भेट देने का विचार हुवा हैं. यह सब प्रसाद महाराज श्री काही है. ग्रन्थ कर्ता को तो कोट्यान धन्यवाद हे ही; परंतु जो सन्मार्ग में द्रव्य व्यय कर सुज्ञान का लाभ अमुल्य अपणें स्वधर्मी यों को देते हैं उन्हे भी धन्यवाद हैं. यह अनुकरण सब साधूजी श्रावकजी करेंगे ऐसी नम्र अर्ज कर प्रस्तावनाकी समापती करता हूं.

गुणानुरागी—रामलाल पन्नालाल कीमती.

ध्यानकल्पतरूका शुद्धीपत्र.

पृष्ट	ओली	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ट	ओली	अशुद्ध	शुद्ध
१	८	सुक्कं	सुक्कं	५२	६	हृदय	हृदय
१	९	,,	,,	,,	१३	बहुनही	बहुतही
२	१	सुक्क	सुक्क	,,	१६	मुख	सुख
२	७	प्राप्त	प्राप्त	५३	६	सह	हस
३	२	अठ्ठ	अट्ट	५४	५	स्वमा	स्वभा
४	१९	जिसके	इसके	,,	१०	दर्जन	दर्शन
७	७	वदान्ति	वदन्ती	,,	११	उपयता	उपजता
११	नोट	वत	वृत	,,	१५	उपयागी	उपयोगी
१९	१८	अत्र	आँम	,,	१३	जग्रत	जाग्रत
१६	११	भइको	माइको	५५	१	पमी	५ मी
२३	९	पदर्थो	पदार्थो	५७	११	श्रेष्णी	श्रेणी
,,	,,	तधा	तथा	,,	नोट	मन्थ	ग्रन्थ
२४	६	आर्त	रौद्र	५९	९	सत्य	सत्व
२९	१०	शाख	साग	६४	१६	थोढी	थोडी
४०	८	३	२	६५	११	यव	व
४१	९	चत्रारी	चत्तारी	६६	१	घ्र	शिघ्र
४७	३	बऊल	बहूल	,,	९	प खंडी	पाखंडी
४८	२	कन्ता	कान्ता	६७	नोट	अ फाव	अफोव
४९	१०	त्द्धव	हृदय	६८	९	कर	करना
५०	९	डसके	उसके	,,	१२	र्जित	वर्जित है
,,	१४	सर्पा	सर्प	६९	१८	कानष्ट	कनिष्ट
५१	९	बउदा	बहुधा	७१	१४	रासायन	रसायन
५१	२१	सोसा	सोसो	७२	६	खत्रो	खत्तो
,,	नोट	सा । ली	साफ खाली	,,	नोट	अमन	अपन
,,	,,	उस	उसने	७६	नोट	समाधी	समाध[आगे विस्तार]
५१	१२	अश्रव	आश्रव				

पृष्ट	ओली	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ट	ओली	अशुद्ध	शुद्ध
७७	नोट	दय	दहा	१३९	१९	इत्न	इतना
८५	१२	तज्ञान	प्रातिज्ञान	,,	११	पये	पाये
,,	१७	बच्चरकं	पच्चक्खं	१४०	१२	तमश	तामश
,,	१९	श्रुत	प्राति	१४१	१९	सुजें	मुजे
८८	१०	पातल	पाताळ	१४३	५	मंत्र	मंत्रि
८९	७	सिनाय	सिवाय	१४४	२	कुब्ज	कब्ज
९१	९	कापू	कापूत	१४५	११	वत्क	वक्त
९२	२०	अपज्ञा	अपक्षा	१४७	२०	लवेगे	लेवेंगे
९७	११	अशुवि	अशुची	१४८	२	असुरत्र	असुरत्त
९९	११	४४३	३४३	१५०	११	भोग	भोगवने
१००	२	भूर्त	भर्त	,,	१८	बचार	बेचारे
१०३	१२	स्परशेंद्री	स्पश्र्येंद्री	१५१	७	आपय	अपाय
१०८	५	दें	०	१५३	१९	पुम्तक	पुस्तक
,,	१८	उप्रद्रब	उपद्रव	१५४	९	नामवे	नमावे
१०९	नोट	माहे	मोह	,,	२१	मुख	मुखसे
	३	५ सत्य (सा-	सच्चा भी नहीं	१५६	७	हिंश	हिंशा .
		चाभी नहीं,	झुटाभी नहीं)	१५७	नोट	भवती	भक्ती
		झुटाभी नहीं)	पूसत्य भाषा	१५८	५	आपमें	आपसमें
१२३	११	पक	पक्का	१५९	४	सम्य	सम्प
१२७	११	साविस्तर	साविस्तार	१६०	१	निदा	निन्दा
,,	१४	अज्ञी	अज्ञा	,,	५	दनि	दिन
१३१	११	कलद	कलेश	१६२	१८	और	०
,,	१५	पर्षादा	प्रषदा	१६४		बहुत जगह	
१३५	५	गति	गति रूप ४			उत्तरका अक्ष	
१३६	१४	हो	वह			र नहीं है.	
१३६	२०	द्बो	शब्दो	१६५	७	जुमलीवा	जुगलीया
१३८	२	लीजो	लीजाय	१६६	५	(मिथ्य	(मिथ्या)
,,	११	मोहके	मोहके तर्फ	१६८	५	मूळता	मूळका
१३९	६	स्थपन्न	स्थापन	१६९	४	देवो	देव

पृष्ट	ओली	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ट	आली	अशुद्ध	शुद्ध
१६९	१६	आर्जीका	आजीवका	२२१	५	९	१
१७२	९	शास्त्र	शास्त्र	२२२	४	बृद्धी	बुद्धि
१७२	१७	वच	वचन	२२४	४	उसे	उस
१७३	१८	मानने	मानवेवालेहोवे	२२६		यह नोट	
१७३	१६	गषाइ	कषाइ			२२७में पृष्ट	
१७४	१२	चितक्या	चितक्यों			की हैं	
१७५	९	पितका	पिताका	२२७		यह नोट.	
१७६	१८	फत्तर्शी	पथरीं			२२६ में पृष्ट	
१७७	२	गालिज	गलित			की है.	
१८१	४	और १८१प्र	१८५ १८६ प्र. भेल है.	२२६	नोट	निद	दिन
				२३४	१६	मुन्नल	पुद्गल
१८३	२	शाक्र	शक्त	२३५	८	वित	पिता
१८४	१७	नल	नाल	२४१	१२	अश्रय	आश्रय
१८५	१६	जोज	जोजन	२४१	१८	दानो	दोनो
१८६	१५	,,	,,	२४२	१	जैस	जैसे
१८६	१७	क्षक्षमें	संक्षेपमें	२४४	१	नशमे	नशेमें
१८९	१६	विचर	विचार	२४४	६	अज्ञा	अज्ञान
१९०	६	अज्ञ	आज्ञा	२४६	६	अन्यजमें	अन्य जन्ममें
१९१	७	,,	,,	२४६	८	नशमें	नशेमें
१९४	२	क्रुय	कृत	२४६	११	वैसही	वैसेही
२०२	१४	माइकाती	माइखंती	२४८	१६	सत्या	सत्य
२०७	५	सत्न	सत्र	२५०	३	मिध	मिथ्या
२०८	७	दखये	देखिये		५	क्षत्रा	क्षेत्र
२१०	३	पापी	पापीकी	२५४	६	आकले	अकाले
२१८	१९	व	०	२५६	१	साट२	सात २
२१२	५	पश्च	पश्चा		३	कल	काल
२१२	नोट	७अग्नी	७ लक्ष अग्नी		नोट	सुत्र	सुक्र
२१५	१०	कादपी	कदापी	२५९	६	भिष्ट	भिष्टा
२२०	६	मोरक	मोक्ख	२७०	१	सत्त	सक्का

पृष्ट	ओली	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ट	ओली	अशुद्ध	शुद्ध
२७२	नोंट	डसन	उसन	३१४	९	अनन्द	आनन्द
२७३	१६	निशुद्ध	विशुद्ध	३१५	१०	,,	"
२७४	२१	खिषत	क्षपति	३१६	८	मय	मान
२७८	१७	विभमेर्के	विभर्ममें	३१८	१४	जया	जाय
२७९	नोंट	पागला	तथा पिंगला	३२०	५	कीये	लिये
२८०	१६	विमर्म	विभर्म	३२६	४	चारित्र	चारित्र
२८३	७	त्यान	त्याग	३२६	९	पयः	पाये
२८६	७	चिरूप	चिद्रुप	३२६	नोटे	इरविही	इरीयावही
२८७	१	सोलडढ	साल ऽउ	३२८	६	वह्यमें	वाह्यमें
२९०	७	मिमल	विमल	३२८	२०	पटला	पलटा
२९२	६	पिणउ	पिण्ड	३२९	१	,,	"
२९२	८	सरीमे	सरीरमें	३२९	१२	पटना	पलटा
२९२	९	पिण्उ	पिण्ड	३३०	१७	मिथ्य	मिथ्या
२९६	नोंट	अट	आठ	३३१	५	प्रवतमें	प्रवृतते
२९६		कादंड	दंडाकार	३३२	७	क्रिय	क्रिया
२९८	१	करनेका	करनेकाउपाय	३३५	१२	वह्य	वाह्य
२९९	१४	अवलोकन	अवलोकन	३३५	२	सधन	साधन
३००	नोंट	हहसस्व	सो स्वभाव है	३३७	१०	किसा	किसी
३०१	१	भव	भाव और भव	३३७	३	डेदुड	उदेडे
३०१	८	आस्ति	आस्ती	३३८	१०	जरामी	जराभी
३०२	४	अवक्र	अवक्तव्य	३३८	३	परपशुक	मेरपशूके
३०२	८	स्यत्	स्यात	३४०	९	स्वभासे	स्वभावसे
३०३	१८	प्राप्र	प्राप्त	३४१	१७	क्षमका	क्षमाका
३०५	११	आर	और	३४१	२१	द्ररा	द्वारा
३०६	३	महङ्गल	महभाङ्गल	३४३	७	अपही	आपही
३०६	१०	अत्म	आत्म	३४७	९	परतणी	प्रणती
३०७	७	नजो	तजो	३४७	१४	ठांक	ढांक
३१०	नोंट	लोकालोक	लोकाकाश	३४७	११	प्रेभा	प्रेक्षा
३१३	२	कसयल	कसायले	३५०	१	अपया	अपाया

पृष्ट	ओली	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ट	ओली	अशुद्ध	शुद्ध
३५१	२	,,	,,	३५५	७	अनन्द	आनन्द
३५२	६	अश्रवण	आश्रव	३५५	७	उन्पन्न	उत्पन्न
३५२	९	क्षयिक	क्षायिक	३५७	१६	समग्री	सामग्री
३५२	१०	कार्म	कर्म	३५८	५	पदार्था	पदार्थों
				३५८	९	बनाता	बनता है
३५३	६	इन्द्र	इन्द्री	३५९	२	उत्पन्न	उत्पन्न
३५३	९	असम्दूत	असम्दूत्त				

इन सिवाय औरभी न्हस्व, दीर्घ, पद वाक्य, बिन्दू, अक्षर. और विरमो (चिन्हो) की भी बहूत सी खोटों रहगइ है, तैसेही भाषाकी भी गडबड होगइ है, इस लिये पाठक गणों से नम्र विज्ञप्ती—विनती है कि शुद्ध करके पढीये, और अशुद्धता की तर्फ लक्ष न देते, आशय पे लक्ष दीजिये और गुणही गुणका ग्रहण कीजीये. तो अवश्यही लाभ प्राप्त करोगे.

विज्ञेषु-किमधिकं

अमोलखऋषि

ध्यानकल्पतरूकी अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
मङ्गला चरणम्	१	रौद्रध्यानके पुष्प और फल....	४९
भूमिका	२	उपशाखा-शुभध्यान....	५३
स्कन्ध और शाखा	३	प्रथमशाखा ध्यान मूल	५३
अशुभ ध्यान	४	पंचलब्धी का स्वरूप....	५५
प्रथम शाखा-आर्तध्यान....	५	द्वितीय उपशाखा-शुभ ध्यानविधी	६५
प्रथम प्रतिशाखा आर्तध्यान केभेद....	५	प्रथम पत्र-क्षेत्र........	६[illegible]
प्रथम पत्र-अनिष्ट संयोग....	६	द्वितीय पत्र-द्रव्य	६७
द्वितीयपत्र-इष्ट संयोग....	७	तृतिय पत्र-काल	६९
तृतीय पत्र -रोगोदय....	९	चतुर्थ पत्र-भाव ४....	७१
चतुर्थ पत्र-भोगेच्छा....	११	शुभ ध्यानस्य फल....	७७
द्वितीय-शाखा-आर्तध्यानके लक्षण	१३	तृतिय शाखा धर्मध्यान	८१
प्रथम पत्र-कंदणया....	१४	प्रथम प्रतिशाखा धर्मध्यानके पाये	८२
द्वितीय- पत्र-सोयणया....	१४	प्रथमपत्र आज्ञाविचय	८६
तृतीय- पत्र-तिप्पणया	१५	सुत्रार्थ	८५
चतुर्थ पत्र-विलवणया....	१५	मार्गणा	८७
आर्तध्यानके पुष्पफल....	१६	५महा व्रत	९२
द्वितीय शाखा-रौद्रध्यान....	२१	१२भावना	९४
प्रथम प्रतिशाखा रौद्रध्यानके भेद	२१	पंचइन्द्रीयोपशमता....	१०३
प्रथमपत्र-हिंशानु बन्ध	२२	दयाद्रभाव....	१०६
द्वितिय पत्र-मृषानुबन्ध	३०	बन्ध	११२
तृतिय पत्र-तस्करानुबन्ध	३५	मोक्षगमन....	११५
चतुर्थपत्र-संरक्षण	३९	गतिगमन....	११७
द्वितीय प्रतिशाखा-रौद्रध्यानोंके लक्षण	४३	५७हेतू....	११८
प्रथम पत्र-उषण दोष	४४	५ प्रमाद	१२८
द्वितीय-पत्र बहुल दोष	४६	द्वितीय पत्र-अपाय विचय चैतन्य और	
तृतिय पत्र अज्ञान दोष	४७	कर्मका युद्ध....	१३३
चतुर्थ पत्र-अमरणांत दोष	४८	तृतीय पत्र विपाक विचय १८१ कर्म	

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
विपाकके बोल प्रश्नोत्र	१९१	द्वितीयपत्र-पिण्डस्थध्यान	२९२
चतुर्थ पत्र-संस्थान विचय लोंक स्वरूप	१८१	तृतियपत्र-रूपस्थध्यान	३०४
		चतुर्थपत्र रूपातीत ध्यान....	३०९
द्वितीय प्रतिशाखा-धर्म ध्यानीके लक्षण	१९१	अष्टऋद्धि के १४ भेद	३२१
		चतुर्थशाखा-शुक्ल ध्यान....	३२३
प्रथमपत्र-आज्ञारुची	१९१	शुक्लध्यानकि गुण	३२३
द्वितीयपत्र-निसग्गरूची....	१९३	प्रथमप्रतिशाखा-शुक्लध्यानकेपाये	३२७
तृतियपत्र उपदेशरुची....	१९४	प्रथमपत्र-पृथक्त्ववितर्क....	३२३
चतुर्थपत्र-सूत्ररूची....	१९६	द्वितीपत्र-एकत्व वितर्क....	३२९
तृतिय प्रतिशाखा-धर्मध्यानीके		तृतीयपत्र-सुक्ष्मक्रिया	३३१
आलम्बन	१९७	चतुर्थपत्र-समुछिन्नाक्रिया....	३३१
प्रथमपत्र-वायणा	१९८	द्वितीयप्राती शाखा शुक्लध्यानके-	
द्वितीयपत्र-पुच्छणा....	२०५	लक्षण	३३२
तृतियपत्र-परियट्टणा	२०६	प्रथमपत्र-विवक्त....	३३३
चतुर्थपत्र-धर्मकथा	२०८	द्वितीयपत्र विउत्सर्ग ..	३३५
चतुर्थप्रीतिशाखा धर्मध्यानस्य अनु		तृतीयपत्र-अवास्थित....	३३६
प्रेक्षा....	२२०	चतुर्थपत्र-अमोह....	३३९
प्रथमपत्र-अनित्वानुप्रेक्षा....	२२१	तृतीयप्रतिशाखा शुक्लध्यानके	
द्वितीयपत्र-असरणाणु प्रेक्षा....	२३३	लक्षण....	३४१
तृतीयपत्र-एकत्वानुप्रेक्षा	२४१	प्रथमपत्र-क्षमा....	३४१
चतुर्थपत्र-संसारानुप्रेक्षा	२४८	द्वितीयपत्र-निर्लोभ....	३४४
धर्मध्यानस्य पुष्प फल	२६४	तृतीयपत्र आर्यव....	३४७
उपशाखा शुद्ध ध्यान	२६७	चतुर्थपत्र-मार्दव....	३४८
प्रथम प्रातिशाखा-आत्मा....	२७१	चतुर्थशाखा-शुक्लध्यानीकी अनुप्रेक्षा	३५०
प्रथमपत्र बाहिर आत्मा....	२७२	प्रथमपत्र-अपायानुप्रेक्षा....	३५१
द्वितीयपत्र अंतर-आत्मा	२७५	द्वितीयपत्र अशुभानुप्रेक्षा....	३५२
तृतियपत्र-परमात्मा	२८५	तृतीयपत्र-अनंतवृत्तीयानुप्रेक्षा	३५५
पुष्प फलम्....	२८५	चतुर्थपत्र-विप्रमाणानु प्रेक्षा	३५८
द्वितीयशाखा-उपध्यानचार....	२८५	शुक्लध्यानक पुष्प फलम्	३६०
प्रथमपत्र पदस्थध्यान	२८६	**समाप्ती**	

श्री जिनवरेंद्राय नमः

ध्यानकल्पतरु

मङ्गलाचरणम्.

गाथा — अणुतरं धम्म-मुईरइत्ता, अणुत्तारं झाणवरं झियाइं; सु सुक्क सुक्कं अपगंड सुक्कं, संखिंदु वेगं तव दात्त सुक्कं ॥१॥ अणुत्तरग्गं परमं महेसी, असेस कम्मं स विसोह इत्ता सिद्धि गइ साइ मणंत पत्ते, नणेण सीलण य दंसणेणं ॥२॥

सुयगडांगसूत्र

श्रमण भगवंत श्री महावीर वृधमान स्वामी, प्रधान-श्रेष्ट धर्मके प्रकाशक, सर्वोत्तम उज्वलसे अती उज्वल, दोष-मल रहित, ध्यान को ध्याया. कैसा उज्वल ध्यान ध्याया, तो के यथा द्रष्टांत—जैसा अर्ज्जुन सुवर्ण उज्वल होता है, पाणी के फेण उज्वल होतें हैं, संख और चंद्रमाके कीर्ण उज्वल होतें हैं. ऐसा बल्के इससे भी अधिक उज्वल, सर्व ध्यानो-

में श्रेष्ट, ऐसा सुक्कध्यान ध्याया. उस ध्यानके प्रशा दसे; महा ऋषिस्वर, समस्त कर्मोंका नाश-क्षय कर निर्मळे हुये, जिससे अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत वीर्य, यह अनंत चतुष्टयकों प्राप्त कर; जो आदि सहित और अंतरहित, ऐसी सिद्ध गती, मोक्षगती, लोकके उपर, अग्रभागमें हैं; उसको प्रप्त करी. ऐसे श्रीमहावीर बृधमान स्वामी जीकों मेरा त्रिकर्ण विशुद्ध त्रिकाल नमस्कार होवो!

भूमिका.

श्लोक — ध्याता ध्यानं तथा ध्येयं, फलं चेति चतुष्टयम.
इति सूत्र समा सेन, साविकल्पं निग्रह्यते.

अर्थ—ध्याता कहीये ध्यान करनेवाले. ध्यान कहीये ध्यान अवस्था धारण कर स्थिर बेठना, ध्येय कहीये किसी प्रकारका मनमें विचार करना; और फलं कहीये, उस विचारका उस (ध्याता) कों क्या फल मिलेगा; इन चारोंही बाबतोंका, यथा बुद्धि इस ग्रंथमें दर्शानेका पर्यन्त करूंगा. उसे पाठक गणों, दत्त चितसे पढके. अशुभसेंबच्च, शुभमें प्रवेशकर. इष्टार्थ सिद्ध करने स्मर्थ बनेंगे.

स्कन्ध.

ध्यान शब्दकी धातू "ध्यै" हैं, ध्यैका अर्थ- अंतःकरणमें विचार करना- सोचना ऐसा होताहै. ध्यानके भेद शास्त्रमें इस प्रकार किये हैं.

शाखा.

सूत्र से किंतं झाणे, झाणे चउविहे पन्नंते तंज्जहा, अट्टे झाणे, रुद्दे झाणे, धम्मे झाणे, सुक्के झाणे. उववाइ सूत्र.

अर्थ—शिष्य सविनय प्रश्न करता है, कीगुरु महाराज, ध्यानके भेद कित्ने हैं?

गुरु—हे शिष्य, ध्यानके चार भेद भगवंतने फरमाये हैं, वैसेही में तेरेसे अनुक्रमें कहताहूं. १ आर्त ध्यान, २ रुद्र ध्यान, ३ धर्म ध्यान; और. ४ सुक्ल ध्यान.

अंतःकरणमें विचार दो तरहका होता हैं. १ कभी अशुभ अर्थात् बुरा. और कभी शुभ अर्थात् अच्छा. अशुभ विचारकों अशुभ ध्यान, और शुभ

या शुद्ध विचारको शुभ या शुद्ध ध्यान कहतेंहैं.

उपर कहे सूत्रमें अशुभ ध्यानके दो भेद कियेहैं, आर्त ध्यान और रुद्र ध्यान. तैसे शुभ ध्यानकेभी दो भेद कियेहैं– धर्म ध्यान, और सुक्ल ध्यान. इन चारोंहीका सविस्तार वर्णव, आगे अलग २ शाखा-ओंमें किया जायगा.

"अशुभ ध्यान."

उपर कहे चार ध्यानोंमेंसे, अव्वल अशुभध्यान-का वर्णव करताहूं, क्योंकि मोक्षार्थी, अशुभ ध्यान का स्वरुप समजेंगे, तो उससे बचके, शुभमें प्रवेश करनेको प्रयत्न वंत हो सकेंगे.

प्रथम शाखा "आर्तध्यान"

इस जगत निवासी, सकर्मी जीवोंकों, शुभा-शुभ कर्मोंके संयोगसे, इष्ट (अच्छे) का संयोग (मिलाप), और अनिष्ट (बुरे) का वियोग (नाश) तथा अनिष्टका संयोग, और इष्टका वियोग, अ-नादिसे होताही आया हैं; उससें जो मनमें सक-ल्प विकल्प उत्पन्न होता हैं; उसेही 'आर्त ध्यान' समजना. जिनेश्वर भगवाननें, जिसके मुख्य चार प्रकार कहेहैं.

प्रथम प्रतिशाखा 'आर्त ध्यानके भेद'

सूत्र — अट्टे झाणे चउ विह, पण्णंते, तंज्जहा, अमणुग संप उग संपउत्ते, तस्स विप्प उगसति, समणा एगययावी भवात्ति. मणुण संपउत्ते, तस्स अवीप्प उग साति समणा गएया अभवत्ति, आयंक संप उग संपउत्ते. तस्साविप्पउंग सत्ती समणे गएया वीभवत्ति. परिझ्सीया काम भोग संपउत्ते, तस्स अविप्पउग सात्ति, समणे एगया भवात्ती.

उववाइ सूत्र.

अर्थ—आर्त ध्यान चार प्रकारसे, भगवंतने फरमाया, सो कहतेहैं. १ अमन्योंग (खराब) शब्दादिक का संयोग होनेसे, विचार होवे की- इनका वियोग (नाश) कब होगा; इसकों अनिष्ट संयोग नामें आर्त ध्यान कहना. २ मन्योग (अच्छे) शब्दादिकका, संयोग (प्राप्ती) होनेसें, विचार होवें की— इनका वियोग कदापी न होवो; इसे इष्ट संयोग आर्त ध्यान कहना. ३ ज्वर, कुष्टादि अनेक प्रकारके रोगोंकी प्राप्ती होनेसे, विचार होवे की— इनका शिघ्र नाश होवो. इसे रोगोदय आर्तध्यान कहना. ४ इच्छित काम भोग की प्राप्ती होनेसे

विचार होवे की- इनका वियोग कदापी न होवो. इसे भोगीच्छा आर्त ध्यान कहना.

प्रथम पत्र–"अनिष्ट संयोग".

१ "अनिष्ट संयोग नामें आर्त ध्यान," सो- जीवनें अपने सरीरकों, स्वजन स्नेहीयादि कुटम्ब कों, सुवर्णादि धन्नकों, गौधुमादि (गहूआदि) धान्य (अनाज) गवादि (गायादि) पशु, और घरादिकों अपने सुख दाता मानलिये हैं. इनके नाश करने- वाले, सिंह-सर्प-बिच्छू-षटमल-ज्यूकादि जानवर, शत्रू चोर- नृपादि मनुष्य, नदी-समुद्रादि जलस्थान, अग्नी, वच्छनाग-अफीमादि विष, तीर-तरवारादि शस्त्र, गीरी-कंदरादि, मृतिकास्थान; तथा भूतादि व्यंतर देव; इत्यादि भयंकर वस्तुके नाम श्रवणकर, स्वरूप अवलोकन (देख) कर, या स्मरण होनेसे, तथा प्राप्त होनेसे. मनको सकल्प विकल्प (घबरावट) होवे. तब इनके वियोगकी इच्छा करे की, ये मेरा जीव लेने क्यों मेरे पीछे लगे हैं; मुजे क्यों सता- रहे हैं, हे भगवान? इनका शिघ्र नाश होवे तो बहुतही अच्छा; ऐसा चिंतवन करे उसे तत्वज्ञ पुरु-

षोंने, आर्त ध्यानका प्रथम भेद कहा हैं.

द्वितीय पत्र "इष्ट संयोग".

२ "इष्ट संयोग नामें आर्त ध्यान" सो.

श्लोक

राज्योप भोग शयना सन वाहनेषु,
स्त्रीगंध माल्य वर रत्न विभूषणेषु;
अत्याभिलाष मतिमात्त मुपैती मोहाद,
ध्यानं तदार्तामिति तत्प्रवदन्नि तज्ज्ञः

सागार धर्मामृत

इष्टकारी, प्रियकारी, राज्येश्वर्यता, चक्रवृत, बलदेव, मांडलिक राज, तथा सामान्य राजकी ऋद्धी. भोग भूमी (जुगलीया) के अखंड सौभाग्य सुख, मंत्रीश्वर (प्रधान) श्रेष्ट शैन्यापतीयोंके विलास, नव यौवना (मनुष्य देव संबंधी) स्त्रीयोके संग काम भोगकी, प्रयंका (पलंगा) दी शैय्या, अश्व, गज, रथादि वाहनों (सवारी) की, चुवा, चंदन, पुष्प अतरादि सुर्भीगंध पदार्थोंके सेवनकी, रत्ना रजत (चांदी) सुवर्णादीके अनेक प्रकारके भुषण (गृहणें-दागीने). व रेशमी, जरी जरतारके वस्त्रोंसे सरीरकों

अलंकृत, सुशोभित कर, मनहर रूप बणानेकी. इत्यादि तरह २ के काम भोगों भोगवने की. जो मोह कर्मके उदयसें अभिलाषा होतीहैं. तथा वरोक्त पदार्थोंकी प्राप्ती हुइ हैं. उसका उप भोग लेते, जो अंतः करणमें, सुख, अहलाद उत्पन्न होता है; की मैं कैसे इच्छित सुखका भुक्ता हूं. या उनकी वारम्वार अनुमोदन करनेसे, अहा! वगैरे स्वभाविक उद्गार निकलते, अंतःकरणमें आनंद का अनुभव करते, जो विचार होताहैं, उसे तत्वज्ञनें आर्त ध्यानका दूसरा प्रकार कहाहैं.

॥ पाठांतर ॥ कित्तेक आर्त ध्यानका दूसरा प्रकार "इष्ट वियोग" कहतेहैं, अर्थात् कालज्ञानादी ग्रंथमें, बताये हुये, स्वरादी लक्षणोंसे; या जोतिषादी विद्याके प्रभावसे, सरीरका वियोग स्वल्प (थोडे) कालमें होता जाण, विचार उत्पन्न होय, की—हायरे अब मैं ये सुंदर शरीर, प्यारे कुटुंब स्नेहीयों, और कष्टसे उपार्जन की हुइ लक्ष्मीका, त्याग कर चले जाऊंगा! तथा अपने सहाय्यक स्वजन, मित्रोंके वियोग से मूर्छित होगिर पडे.

विलापात, आत्मप्रहार† या मृत्युका चिंतवन करे, गृह (घर) संपतका किसीने हरण किया, अग्नी से जल (बल) गया, पाणीमें वहगया.—या डूब गया, पृथ्वी गत निधान (धन) विद्रुप* होके निकला. राजा पंचने हरण किया. व्योपारदीमें टोटा पडगया. या नामूनके लिये मदमें छकाहुवा, लग्नादी कार्यमें अधिक व्यय करनेंसे, अशक्तता दारिद्रतादी दुःख प्राप्त होनेंसे, पश्चाताप करे; की हाय! हाय!! अब में क्या करूं वगैरे. इत्यादि अंतःकरणका विचारभी दूसरा आर्त ध्यान हैं. और इन्द्रियोंकों पोषणे, अनेक बाजिंत्र— वारंगणा (नाटकणी)§ पुष्प वटिका‡ अतर,—अबीरादी, षडरस भोजन, वस्त्र, भुषण, सयनाशन, वगैरे, विनाश हुये पदार्थोंका संयोग मिलाने, अनेक पापारंभ कार्यका चिंतवन करे, सोभी आर्त ध्यान.

तृतीय पत्र—“रोगोदय.”

३ “रोगोदय आर्त ध्यान सो”—(१)सब जीव

†सिर छातीयादी कूटना. *गडा हुवा धन्न कोयले पाणी वगैरे द्रष्टी आता हैं. §नाचनेवाली. ‡बगीचा.

आरोग्य-सुखके इच्छक हैं. परन्तु अशुभवेदनी कर्मोदयसे, जो जो रोग-असाताका उदय होता-हैं, उसे भोगवे विन छूटका नहीं. श्रीउत्तराध्ययनजी सुत्रमें फरमायहै की "कड्डाण कम्मान मोख्ख अत्थी" अर्थात् कृत्य कर्मके फल भुक्ते विनछूटका नहीं.⊛ मनुष्यके सरीरपर, साडे तीन करोड रोम गिने जाते हैं; और एकेक रोम (रुम-बाल) के स्थान्में पोणे दो दो रोग कहते हैं. तो विचारीये यह शरीर कित्ने रोगोंका घर हैं. जहांलग सातावेदनिय कर्मका जोर हैं, वहांतक सब रोग दबे (ढके) हुयेहैं. और पापोदय होतें, कुष्ट (कोड), भगंदर, जलंधर, अतीसार, श्वाश, खास, ज्वरादि, अनेक उद्रवीकार रुद्रवीकार से भयंकर रोग उत्पन्न हो, पीडा (दु:ख) देते हैं; तब चित आकुल व्याकुल हो, अनेक प्रकारके सकल्प वि-

---

⊛कृतकर्मो क्षयो नास्ती, कल्प कोटी शतैर्पि;
अवश्य मेव भुक्तव्यं, कृत्कर्म सुमासुभं.

४३२०००००० इत्ने वर्षोंका एक कल्प किया जाता हैं. ऐसे क्रोडों कल्पमेंही किये हुये कर्मका फल भोगवें विन छुटका नहीं होता है !!

कल्प उत्पन्न होतेहैं. सो तीसरा आर्तध्यान. (२)और उन रोगोंका निवारण करने, अनेक औषधोपचार के लिये; अनंत काय, एकेंद्रीसे लगा पचेंद्रीय तक जीवोंका, अनेक तरह, आरंभ, सभारंभ, छेदन भेदन, पचन पाचनादि, क्रिया करनेका, अंतःकरणमें विचार होवे; शिघ्रतासे उनका नाश करने चटपटी लगे; उनकी हानी वृधीसें हर्षशोक होय, हे प्रभू! स्वपनांतरमेंभी ऐसा दुःख मत होवो. इत्यादि अभीलाषा होवे, सो तीसरा आर्त ध्यान.

चतुर्थ पत्र—"भोगिच्छा."

४ "भोगिच्छा आर्तध्यान" सो—१ पांच इन्द्रिय सम्बंधी काम भोग* भोगवणे की इच्छा होय; अर्थात् श्रवणेंद्री (कान) से, राग रागणी, किन्नरीयोंके गायन, और बाजिंत्रोंका मंज्जुल राग, सुननेमें, चक्षूरेंद्री (आँख) सेनृत्य (नाच) षोडश-

*पांच इंद्रियोंमें, कान और आँख यह दो इंद्रियकामी हैं अर्थात् शब्द सुणना और रूप देखना यह दो काम देती हैं. और, घ्राण, रस, स्फर्श्य ये तीन भोगी हैं अर्थात्, गंध, स्वाद, और स्रीयादिका उप भोग लेतीहैं.

श्रृंगारसे विभुषित स्त्री पुरुष, बगीचे, आतसबाजी (दारु) के ख्याल, मेहल मंडपोंकी सजाइ, रोशनाइ, वगैरेकों देखनेंमें, घ्राणेंद्री (नाक) से, अतर पुष्पादी सुगंधमें, रसेंद्री (जिभ्या) सें, षट रस भोजन, अभक्ष भक्षणमें. और शयनासन, वस्त्र भुषण, स्त्रीयादिके विलास भोगमें, आनंद मानना, इनका संयोग सदा ऐसाही बनारहो. तथा में बडा भाग्यशाली हूं, के मुजे इछित सुखमय, सर्व सामग्री प्राप्त हुइहैं, वगैरे खुशी माननी. सो भोगिच्छा आर्त ध्यान.(२)और भोगांतराय कर्मोंदयसे, इच्छित सुख दाता सुसामग्रीयोंकी प्राप्ती नहीं हुइ; अन्य राजेश्वर्य, या इन्द्रादिकको, ऋधी सुखका भोग लेते देख, तथा शास्त्र ग्रन्थ द्वरा श्रवण कर, आपकों प्राप्त होनेकी अंतःकरण मे अभीलाषा करे, की हे प्रभू! एकादा राज्य मुजे मिल जाय, या कोइ देव मेरे स्वाधीन (वस) हो जाय, तो में भी ऐसी मोज मजा भुक्त के मेरा जन्म सफल करूं. जहां तक ऐसे सुख मुजे न मिलें, वहां तक में अधन्य हूं. अपुन्य हूं. वगैरे विचार करे,(३)और तप, संयम, प्रत्याख्यान (पच्चखाणा) दी करणी कर, नियाणा (नि-

श्चयात्मक वांछा)[†] करे, की मेरी करणी के फलसे मुजे राज्य और इन्द्रादिक के वैभव (सुख) की प्राप्ती होवो,(४)और अपणी करणीके प्रभावसे आशीर्वाद दे, अन्य स्वजन मित्रादि कों, धनेंश्वरी सुखी करनेकी अभीलाषा करे,(५)और अपने स्वजन मित्र या पडोसी कों सुखी देख, आपके मनमें झूरणा करे, की सबके बीच मेंही एक दरिद्री कैसे रहगया! वगैरे. इत्यादी विचार अंतःकरण में प्रवृते सो आर्त ध्यानका चौथा प्रकार जाणना.

द्वितीय प्रतिशाखा.'आर्तध्यानके लक्षण.'

सुत्र — अट्ट रसणं झाणस्स, चत्तारि लख्खणा, पन्नंता तंज्जहा, कंदणया, सोयणया, तिप्पणया, विलवणया.

उइवाइ सूत्र.

अस्यार्थः—"आर्त-ध्यानीके चार लक्षण" सो

[†]दशा श्रुतस्कंध सुत्रमें, नियाणें दो प्रकारके फरमाये हैं—
१ भवप्रतेक सो, संपूर्ण भवतक चले ऐसा निदान करे, जैसे नारायण, वासुदेव पदके नियाणेंसे होतेहैं, उनको व्रत प्रत्या-

१ अक्रांद रुदन करे. २ शोक (चिंता) करे. ३ आखोंसे आंश्रू डाले. ४ विलापात करे.

आर्त ध्यान ध्याता कों बाह्य चिन्होसें, पहछाननेके लिये, भगवाननें सूत्रमें, ४ लक्षण फरमाये हैं; सो अनिष्टका संयोग, इष्टका वियोग, रोगादी दुःखकी प्राप्ती, और भोगादी सुखकी अप्राप्ती; यह चार प्रकारके कारण निपजनेसे, सकर्मी जीवों कों कर्मोंकी प्रबलता से स्वभाविकही चार काम होते हैं.

प्रथम पत्र "कंदणया"

१ कंदणया=अक्रांद रुदन करे. की हायरे मेरे सुसंयोगका नाश हो, ऐसेकू संयोगकी प्राप्ती क्यों होती हैं? हा देव! हा प्रभू!! इत्यादि विचार उद्भवनेसे, अरडाट शब्दसे रुदन करे.

द्वितीय पत्र "सोयणया"

२ सोयणया—सोच चिंता करे, कपालपे हाथ

ख्यान संयम न होवे. और २ वस्तु प्रतेक सो किसी वस्तुका प्राप्तीका निदान करे, जैसे द्रोपदीजी, उन्हे वस्तु न मिले वहां तक सम्यक्तव प्राप्त न होवे.

धरे, नीची द्रष्टीकर सुन्नमुन्न हो बेठे, पृथवी खने (खोदे) त्रण तोडे, बावला जैसा बने, तथा मुर्छित हो पडा रहै.

तृतिय पत्र "तिप्पणया"

३ तिप्पणया—*आँखोंसे आश्रूपात करे, बात२ में उस वस्तुका स्मरण होतेही रो देवे. उंड़े निश्वास ड़ाले.

चतुर्थ पत्र "विलवणया"

४ विलवणया—विलापात करे. अंग पछाडे. ऱ्हदयपे, सिरपे, प्रहार करे; बाल तोडे, हाय ओय जुल्म हुवा, गजब हुवा, बडा जबर अनर्थ हुवा, वगैरे भयंकर शब्दोचार करे, और क्लेश टंटे, झगडे, करे, तथा दीन दयामणे शब्दोचार करे. वगैरे सब आर्त ध्यानीके लक्षण जाणना.

---

*श्लेष्माश्रुबाध वैमुक्त, प्रेतोभुक्तं यतोऽवशः
अतो नरो दितव्यांहि, क्रियाः कार्याः स्वशक्तिः.

मरने वालेके पीछे उसके स्वजन स्नेही रुदन करके, अश्रु और श्लेषम डालते हैं. उसे वो मरने वाले खाते हैं, ऐसा मिताक्षर ग्रंथमें कहा हैं.

आर्तध्यानके "पुष्प और फल"

आर्त ध्यानीकों अप्राप्त वस्तुकों प्राप्त करने की अत्यंत उत्कंठा (आशा वांच्छा) रहती हैं. अहोनिश उधरही लक्ष लगा रहता है. जिससे अन्य कामका अनेक तरहसे बीगाडा होता है, हरकत पडती है. धर्म करणी संयम तपादी कर केभी *कुंडरिक की तरह यथा तथ्य लाभ प्राप्त कर सक्के नहीं हैं.

*जंबू द्विपके पुर्व महाविदेहकी, पुष्कलावति विजयकी, पुंडरी राजध्यानीके, पद्मनाभ राजाके कुंडरिक कुवरने दिक्षा धारण करी. पुडरीक कुंवरको राज प्राप्त हूवा. भइको राज्य सूख भोगवते देख कुंडरिक का मन ललचाया. और गुरुका संग छोड महलके पीछेकी आशोक वाडीमें गुप्त आके बेठे. मालीसे खबर मिलतेही पुंडारिक राजा तुर्त भाइके दर्शन करने आये. और मुनीका चित उदास देख पुछनेसे उनने राज वैभवकी परसंस्या करी, मुनीका मन चलित देख, राजा अपने वस्त्र भूषण उतार मुनीकों दिये और मुनीका उतारा हुवा वेश राजा धारण कर गुरुजीके दर्शन करने चले. तीन दिन उपवाससें गुरुजीको भेट, लुक्खम, सुक्खम शुद्ध अहार भोगवनेसें, अत्यंत पीडा(दुःख) हुवा और आयुष पूर्ण कर स्वार्थ सिद्ध विमानमें देवता हुये. पीछेसें कुंडरिक राज वेश धारण कर राज्य सुख भोगनेमें अत्यंत लुब्ध हुये. ताकदबडनके लिये मांस मदिरादि अभक्षका भक्षण करनेसें, अत्यंत असह्य वेदना उत्पन्न हुइ. तीन दिनमें आयुष्य पूर्णकर भोग बिन भोगवेही मरके सातमी नर्क गये.

अखंड पुरे पुंन्य पोते हुये विन तो. इष्ट वस्तु की प्राप्ती होना, और स्थिर रहना होही नहीं सक्ता हैं; जो अप्राप्ती से, या प्राप्त हो के नाश होनेसे, उस वस्तुके लिये झुर २ के मरते हैं; उनका कुच्छभी कार्य न होता हैं. उलटे, नमीराज ऋषिके फरमाये प्रमाणें "कामे पत्थ व माणा, अकामा जंति दुग्गई" अर्थात्—अप्राप्त हुये-अनमिले कामभोगोंकी प्रार्थना (वांच्छा) करता हुवा, कामभोग विन भोगवेइ, वो मरके दुर्गती (खराब गति नर्क तिर्यांचा दी) में जाता हैं. और कदी किंचित् पुन्योदयसे मनुष्य गति पाया तो दुःखी, दरिद्री, हीन, दीन होवे; और जो कदापी, देवता हो जाय तो *अभोगीया, देव हो सदा स्वामीके हुकमाधीन रहके अनेक कष्ट भोगते हैं. मालककी खुशी में अपनी खुशी मनानी पडती हैं. भोगांतराय कर्मोदयसें, प्राप्त हुये पदार्थोंका भी भोग न ले सक्ता हैं; अन्यके भोग

*नोकर देव श्वामीके लिये विमाण बणावें, या उठावें, शंन्याके देवअश्वादि पसूका रूप बनाके स्वारी देवें सो अभोगीया देव.

सुख देख झुरना पडता है. आर्त ध्यान ऐसी प-क्की मोहब्बत करता है, की भवांतरोकी श्रेणियों (भव-भ्रमण) में साथही बना रहता है; प्रीती नहीं तोडता है,(२)और आर्त ध्यानी प्राप्त हुये भोग सुखपे अत्यंत लुब्ध (ग्रधी) होता है. (देवादिक के सुख अनंत वक्त भुक्त के भी ऐसा समजता हैं) जाणें ऐसी वस्तु मुजे कहींभी न मिली थी, ऐसा जाण, उसको क्षिणमात्रभी अलग नहीं करता है. ऐसी अत्यंत अशक्तताके योगसे, इस भवमें सूल सुजाक, गर्मी, चितभ्रमादि अनेक रोगोंसे पीडित हो, औषध पथ्यादीमें संलग्न हो, प्राप्त हुये पदार्थ भोगव नहीं शक्ता है. घरमें रही हुइ सामुग्रीयोंकों देख २ झुरताही रहता है. इस रोगसें कब छुटूं, और इनका भोग लेवूं. ! !

(३)औरभी आर्तध्यानीकों, जो वस्तु प्राप्त हुइ है, उससे दूसरी वस्तु अधिक श्रवण कर, या देख, उसे प्राप्त करनेकी अभीलाषा होती हैं; यों उत्तोत्त वस्तुओं भोगवनेकी अभीलाषही अभी-लाषा में, उसका जन्म पूरा हो जाता है; वृधवस्था

प्राप्र हो जाती है, तो भी इच्छा-त्रष्णा त्रप्त नहीं होती है. भृतृही नें कहाहैं की–"स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा" अर्थात् वय जीर्ण [वृध] होगइ परंतु तृष्णा-वांच्छा जीर्ण न हुइ. क्यों कि इस श्रेष्टी में, एकेक सें अधिक २ पदार्थ पडे हैं, वो सब एकही जीवकों एकही वक्तमें तो प्राप्त होही नहीं शक्ते हैं. प्राप्त हुये विन, तृष्णावंतकी तृष्णा भी शांत नहीं होतीहै. और तृष्णा शांत हुये विन दुःख नहीं मिटता हैं. इस विचार सें निश्चय होता है की, आर्त ध्यान सदा एकांत दुःखही का कारण हैं. जैसा यह इस भवमें दुःख दाता है; इससेभी अधिक परभव में दुःखप्रद समजीये. क्यों कि जो प्राप्त वस्तुपे अत्यंत लुब्धता रखता है, जिससे उसके बज्र (चीकणें) कर्म बंधते हैं. वो कर्म फिर दुर्गतीयों में, ऐसे दुःख दाता होयंगे की, रोते २ भी नहीं छूटेंगे. ऐसा विचार, सम्यक द्रष्टी श्रावक साधू इस आर्तध्यानका त्याग कर, सुखी होनेका उपाय करे.

यह आर्तध्यान सकर्मी जीवोंके साथ अनादी

कालसे लगा है, यह विना संस्कार स्वभाव सेही उत्पन्न होता है. इस ध्यानमें मरणें वालेकी विशेष कर तिर्यंच गतीही होती है. यह ध्यान 'हेय' अर्थात् छोडनें योग्य है.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजके
सम्प्रदायके बाल ब्रह्मचारी मुनी श्री अमोलख
ऋषिजी रचित ध्यानकल्पतरू ग्रन्थ
की प्रथमशाखा आर्तध्यान नामे

समाप्त.

द्वितीय शाखा "रौद्रध्यान"

सुत्र रोद्दे झाणे चउविह पन्नंते तज्जहा, हिंसाणुबंधी, मोसाणुबंधी, तेणाणुबंधी, सार ख्खणाणुबंधी.

अस्यार्थ—रौद्र (भयंकर) ध्यानके चार प्रकार भगवंतने फरमाये, सो कहता हूं. १ हिशानुबंध—हिशक कर्मोंका अनुमोदन (परसंस्या) करे, २ मृषानुबंध—मिथ्या(झूटे)कर्मोंका अनुमोदन करे. ३ त्तस्करानुबंध—चोरीके कर्मोंका अनुमोदन करे. ४ संरक्षणानुबंध—सुख रक्षणके कामोंका अनुमोदन करे.

प्रथम प्रतिशाखा "रौद्रध्यानके भेद."

जैसे मदिरा पान करनेसे, मनुष्यकी बुद्धि विकल होजाती हैं, और वो विशेषत्व. क्रुर कर्मोंमेंही आनंद मानता है, तैसेही जीव अनादी कालसें, कर्म रूप मदिराके नशेमें, मतवाले हुये हुवे. कू क-

मोंमेंही आनंद (मजा) मानते हैं. उन कूकर्मोंके आनंदसें, जो अंतःकरणमें विचार होता है, उसे तत्वज्ञ पुरुषोंने रौद्र-भयानक ध्यान फरमाया हैं. इसके मुख्य चार प्रकार करे हैं.

प्रथम पत्र--"हिंशानुबंध."

१ "हिंशानुबंध रौद्र ध्यान" सो—

संछेदनैर्दमनै ताड़न तापनैश्च,
बन्ध प्रहार दमनैश्च विकृन्तनैश्च;
यस्येह राग मुपयाति नचानु कम्पा,
ध्यानंतु रौद्र मिती तत्प्रवदन्ति तज्ज्ञः १

सागर धर्मामृत.

अस्यार्थम्—छेदन, भेदन, ताडन, तापन,— करना. बन्धन बांधना, प्रहार मारना, दमन करना कूरूप करना, इत्यादि कर्मोंमें जिसका अनुराग (प्रेम) होवे, और यह कर्म देख जिसकों दया नहीं आवे, सो हिंशानुबन्धी रौद्र ध्यान.

(१) 'दुःख किसकों भी प्रिय नहीं हैं' बेचारे जीव कर्माधिनतासे, पराधीनता, निराधारता, अ-

स्मर्थता पाये हैं; हीन, दीन, दुःखी हुये हैं. एकेंद्रीयादी अवस्था प्राप्त हुइ हैं, अहो निश सुखके इच्छक हैं; और यथा शक्त सुख प्राप्तीका उपाय करने खपते हैं, उन बेचारे जीवोंकों, अर्थे (मतलबसें) अनर्थे (विना कारन) दुःख देना, सताना, या उनकों दुःखसे पीडाते हुये देख हर्ष मानना, सो रौद्र ध्यान, एकेन्द्रीयसे लगा पचेन्द्रीय जीव पर्यंत कीसीभी जीवोंको, या जीव युक्त किसीभी पदार्थोंको, स्वयं अपने हाथसें, तथा पर दूसरेके हाथसे, प्राण रहित करते देख, टुकडे २ करते देख, लोहकी श्रांखल बेडीमें बन्धनमें डालते देख, रस्सी सूत शणादिक सें बांधते देख, कोटडी भूंत्रारे (तल घर) करागृह (केदी खाने) में, कब्ज किये देख, करण, नाशीका, पूँछ, सींग, हाथ पांव, चमडी, नख, वगैरे किसीभी अंगोपांग काछेदन भेदन करते देख, कत्तल खानेमें बेचारे जीवोंका, बध करते समय, उनका अक्रांद श्रवण कर, उनके अंगके टुकडे तडफडते देख, वगैरे अनेक तरह, जीवोंको दुःख देते, या बध करते देख, आ-

नंद माने, की बहुत अच्छा हुवा, यह ऐसाहीथा. इसे मारनाही चाहिये; बंधनमें डालनाही चाहिये; फांसी, सूली, देनाही चाहिये; बडा जुलमी था. बचता तो गजब कर डालता, पाप कटा, मरगया, पृथ्वीका भार हलका हुवा! वगैरे २ शब्दोचार करे, आनंद माने, सो हिशानुबन्ध आर्त ध्यान.

(२) औरभी हाहा! यह महेल, मंदिर, बंगला, हाट—दुकान, हवेली, कोट, किल्ला, खाइ, बुरजों, तीरस्थंभ, या मृतिका पाषाणादिकके खिलोणे, मूरती, भंडोपकरण (वरतन) वगैरे, बहुत अच्छे बने, अच्छा रंग, कोरणीयादि कर, सुशोभित किया; शाबास कारीगरकों पूरा शिल्पबेताथा, की जिसने ऐसी मनहर वस्तु बणाइ. ऐसेही कूप बावडी, नल, तलाव, होद, कुंड, झरणा, झारी, लोटा, गिलाश, कळशा, वगैरे बहुतही अच्छे मनहर बने हैं. क्या स्वादिष्ट शीतल सुगंधी पाणी हैं. कैसा उमदा फुवारा छूटता है. कैसा उमदा छिडकाव हुवा हैं. चूला, भट्टी, अंज्जन, मील, दीवा, पिलशोद. हंडी गिलास. झुमर. चीमनी. वगैरे

बहुतही अच्छे सुशोभित हैं, क्या उमदा झगमग रोशनी होरही हैं, क्या रंगी बेरंगी आतशबाजी (दारुके ख्याल) छूट रहे हैं, क्या धूपकी सुगंधी मघमघा रही हैं. क्या शीतल सुगंधी हवा आती है. क्या उमदा पंखा पंखी चल रहे हैं. कैसा झूला घूमता है, क्या मज्जुल बाजित्रोंका नाद है. क्या उंचे२ विचित्राकार वृक्षोंका समोंह सोभ रहा है. यह झाडों काटके प्रशाद, स्थंभ, पाट, वगैरे बनाने योग्य है, यह फल बडे मिष्ट है, भक्षण करने योग्य हैं गुण करता हैं; शाख बडा स्वादिष्ट बना. क्या लीली २ हरीयाली छा रही हैं, इसे देखनेंसें बडा आनंद होता है. क्या मनहर हार तुर्रे बनाये, औषधियां कंद मुलादिक पोष्टिक स्वादिक कैसे अच्छे हैं. यह कीडे, खटमल, डंस, मच्छर, परले के जीव हैं, इनकों जरूरही मारना. जलचर मच्छादि भूचर गवादि, वनचर शुकरादी, खेचर, पक्षी आदी, पचनादी कर भक्षणें योग्य हैं. यह अश्व गजादी की कैसी सजाइ सजी हैं. शैन्य शत्रूका कट्टा करने जैसी हैं, बहुत अच्छे चित्र विचित्र पक्षीयोंको पींजरेमें रखे हैं. अजायब घरकी

अजब छटा हैं. *मुशेसे रोगोत्पती होती है. यह मारने योग्य हैं. सर्प बिच्छूवादि विषारी जीवोंको अवश्य मारना, बडा पुन्य होगा, सिंहकी शिकार क्षत्रीयोकों अवस्य करना चाहीये. केसा सूर सुभट हैं, एक पलक में हजारोंका संहार करता हे. इत्यादी विचारको हिंसानुबन्ध रौद्रध्यान कहना. औरभी अश्वमेध यज्ञ, घोडेको अग्निमें होमनेसे; गौमेधयज्ञ गौका, अजामेध बकरेका, और नरमेध मनुष्य का, अग्निमें होम करने (जलाने) से, बडा धर्म होता है, स्वर्ग मिलता हे. यह विचारभी रौद्रध्यानका हैं. कित्येक पापशास्त्रके अभ्यासी कित्नेक जानवरोंके अंगोपांग मांस; रक्त, हड्डी, चर्म इत्यादी सेवनेसे रोग नास्ती मानते हैं. कित्नेक क्रिडा निमित्त कुत्तेआदी शिकारी जानवरोंसे बेचारे गरीब पशु पक्षीयोंको पकडाके मजा मानतें हैं. कित्नेक बंदर रींछ आदी जीवोंके पास नृत्य गायनादीके

---

* प्लेग रोगके प्रगट होने पहले घरमें मूशे (चुवे-उंदिर) मरके घरके मालिक को चेताते हैं रोगसे बचाने उपकार करते हैं. उसे भूलके उसे मारते हैं यह बडी अज्ञान दशा है.

ख्याल तमाशादेखनेमें मजा मानते हैं. कुर्कट, भेसें, मेंढे या मनुष्यादि की लडाइ देख मजा मानते हैं. सो भी हिंशानुबन्ध नामे रौद्रध्यान है.

कित्नेक जीवोंके संहार के लिये, सत्घनी, (तोप) बंदूक, धनुश्य-बाण, खड्ग, कटार, छुरी, चक्र आदीका संग्रह करते हैं; या शस्त्र देख, जीवों के संहारकी इच्छा करते हैं. कितेक घट्टा, घट्टी, हल्ल,बख्खर, कुदाली, पावडी ऊखल, मुशल, सरोता, दांतरडा, कातर, वगैरेका संग्रह करते हैं. तथा इन को देख संहारकी इच्छा करते हैं. हाथ में आये चलानेंकी इच्छा करते हैं. खाली चलाके देखते हैं, सो भी हिंशानुबन्ध रौद्रध्यान.

औरभी किसीका बुरा चिंतवना, अपनेसे अधिक रूपवान, धनेश्वरी, गुणीजन, पुण्यप्रतापी, बहुल परवारी, सुखी देखके ईर्षा करे, उनको दुःख होनेका विचार करे, की इस के पीछे मुजे कोइ नहीं पूछता है, यह मेरे सुखमें या लाभमें हरक्कत कर्ता है. मुजे हरवक्त दबाता है सताता है, यह कब मरे और पाप कटे, वगैरे विचार करे सो भी

हिंशानुवन्ध रौद्रध्यान.

और पृथव्यादि छेही काय के जीवोंकी हिंशा होवे, ऐसा यज्ञ, होम, पूजा, वगैरेका उपदेश दे, या ग्रन्थ रचे, तैसेही औषधीयों के शास्त्र रचते, दुष्ट (घातक) मंत्रका साधन करते, बिभत्स कथा कादम्बरी वगैरे रचते व पढते वक्त, हिंशक, चोर, जार, दुष्ट, दुर्व्यस्नीकी संगतमें रहते, और निर्दयी क्रोधी, अभीमानी, दगाबाज, लोभी, नास्तिक, इनके मनमें हिंशानुबन्ध रौद्रध्यानका विशेष वास होता है.

तैसेही हिंशासे निपजती हुइ वस्तु, जैसे— १गिरनीमें पीशा आटा, २चीनी सक्कर, ३हड्डी या हाथी दाँत के चूडे, वगैरे, ४कचकडेकी बनी वस्तु, ५पांखोंकी टोपीयो वगैरे, ६चमडेके पूठे वगैरे,

---

१गिरनीके आटेको बरोबर जमाके उपर सक्कर भुरभुरा देखनेंमे हलते चलते बहूत जीव दिखते हैं. २चीनी सक्करमें हड्डीयोंका बूरा विशेष होता है, और गायके रक्तसे शुद्ध करते हैं. ३हाथी दातके लिये ७०००० हाथी फ्रान्स देश में दरसाल मारे जाते हैं. ४काछवेको गरम पानीमें डुबाके मारके उसके चमडेकी जो वस्तु वनाते हैं उसे कचकडे कहते है. ५जीवते पक्षीयोंकी पांखो झडपसे उखाड लेते हैं, वो टोपी वगैरेपे लगाते हैं. ६ जीवते पशूका चमडा निकाल ते हैं कितनेक स्थान चमड़ेके लियेही विषादी प्रयोगसे पशूको मार उसके वहीयोंके पूठे, नोवत नगारे, वगैरे वनते हैं.

७अंग्रेजी दवाइयों, ८ साबन मेणवत्ती, ९रेशमी कपडे, १०खराब केशर, ११चरबीका घृत (घी) वगैरे हिंशक वस्तुका भोगोप भोग करते मनमें जो मजा मानते हैं, वोभी हिंशानुबन्ध रौद्रध्यान गिना जाता है.

ऐसेही बोर, मूले प्रमुखकी भाजी, जुवार बाजरीके भुट्टे, सुला अनाज व औषधी, विना देखे कोईभी सजीव वस्तु भोगवते मजा मानने-से भी, हिंशानुबन्ध रौद्रध्यान गिना जाता हैं, क्यों कि इनमें त्रस जीवोंका विशेष संभव हैं.

महाभारत संग्रामोंके इतीहास कथा पढते सुनते जो उसकी मनमें अनुमोदन होवे, सो भी हिंशानुबन्ध रौद्रध्यान.

७अंग्रेजी दवाइयोंमे जानवरोंके मांसका अर्क व दारूका भेल होता है काडलीवर आइल यह मच्छीका तेल होता है, ऐसी वहुतसी है. ८साबू मेणवत्तीमें चरवीका भेल होता है ९कित्नेक केशरमें मांस के छोंते होते है. १०रेशमी कीडेको गरम पाणीसे मार रेशम लेते हैं. ११कित्नेक घी (घृत) में भी चरबी का भेल आता है. ऐसी अखवारोंमें बहुदा खबरें प्रगट हूइ है, और उसे पढके वरोक्त वस्तु छोडते नहीं हैं उन्हे आर्यकेसे कहना.

इत्यादि हिंशानुबन्ध रौद्रध्यानका बहुत बयान हैं, सबका मतलब इतनाही है की, किसीकों भी दुःख देनेका विचार होवे या दूसरे के बधसे वस्तु बनी उसकी अनुमोदना करे वोही हिंशानुबन्ध रौद्रध्यान.

द्वितीय पत्र--"मृषानुबन्ध."

२ "मृषानुबन्ध रौद्रध्यानः"—

श्लोक असत्य चातुर्य बलेन लोकाद्वितं ग्रहीष्यामि बहु प्रकारं; तथा स्वमतङ्क पुराकराणि, कंन्यादि रत्नानीच बन्धुराणी ॥ १ ॥ असत्य वागवंचनाया निजानंत प्रवर्त्तय त्यत्र जनं वराकम्, सद्धर्म मार्ग दात्तिवर्तनेन मदोद्धतोयः सहि रौद्रधामा ॥ २ ॥

ज्ञानार्णव.

अर्थ—विचार करे कि मैं असत्यतासे चतुर्ता करके, मेरे कर्मोंको प्रगट न होने देते, अनेक प्रकारसें लोकोंकों ठग कर, मेरा मतलब पूरा करूं

मन कल्पित, अनेक शास्त्र दया रहित रचकर, मन माना मत चलावूं, लोकोकों वाक्य चातुरीसे मोहित कर, उनके पाससे सुन्दर, कन्या, रत्न, धन, धान्य गृह, (घर) ग्रहण करूं, और मेरा जीवन सुखे चलावूं. इत्यादि असत्य विचार, जिसके अंतःकरणमें होवे, उसे मदोद्धत मृषानुबन्ध रौद्रध्यानका मंदिर (घर) समजना चाहिये.

मृषा=नही रक्खा, अर्थात 'झूटेने, जक्तमें बुरा पदार्थ कुछ बाकी रक्खा नहीं,' सब उसनेही ग्रहण कर लिया. ऐसा खराब झूटा पना हैं, और छोटे, बडे, सब झूटकों खराब समजते है, क्यों कि झूटा 'कहनेसे, सब चिडते हैं;' तो भी आश्चर्य है की फिर उसे नहीं छोडते हैं, देखिये इस ध्यानकी सत्ता कैसी प्रबल हैं, की खराब काममेही आनंद मानाता हैं. कित्नेक अपनी चातुरी बताते हैं, की, हम कैसे विद्वान है. कैसा परपंच रचा, की—अंग हीन, रुपहीन, इन्द्रियहीन, औरगुणहीन कंन्याको भी कैसे बडे स्थान दिलादी; और नगदी इत्ने रुपे दिला दिये. बुढ्ढेका, रोगिष्टका, नपुंशकका के-

सी युक्तीसे लग्न करादिया, अब वो दोनो भलांइ तावे उम्मर रोवो. अपना तो मतलब हो गया. ऐसेही गाय अश्वादी पशूवोंकों, तोता मैनादी पक्षीकी, खेत, बाग, बावडीयादीकी, झूटी परसंस्या कर, प्रपंच रच, रुपका प्रावृत (पलटा) कर. बुरेके अच्छे बनाकर, ज्यादा कीमत उपजावे, और खुशी होवे, तैसे पुराने वस्त्रोंको, रंगादी प्रयोगसे नवे बना, खोटे भुषणोंको सच्चे बना, या अच्छा माल बताके खोटा दे, हर्ष मानें, कोइ विश्वाससे अपनें स्वजन मित्रको गुप्त धन भूषण थापन रख गया होय, उसे दबा रक्खे मालकको न दे. ऐसेही झूटी गवाइयों खडीकर झूटे खत (रुक्के) बनाके गृह धनादिकका हरण कर खुशी होवें. ऐसे अनेक वेपारके कामोमें, दगाबाजी करे, परपंच रचके दूसरेकों छलनेका विचार करे सो मृषानुवन्ध रौद्रध्यान.

अपना मन माना मिथ्या पंथ चलाने वितराग कथित शास्त्रको छोड. अनेक कल्पित (झूटे) ग्रन्थ, चरित्र. वगैरे बनाके; बिचारे भोले जीवोंकों

भरममें डाले, हिंशामार्ग बता; शुद्ध दया मार्ग छोडा, मनमें आनंद माने, की— मेंने इत्ने ग्राम, इत्ने मनुष्य, मेरे बनाये. ऐसेही, ज्ञानवंत, आचारवंत, शुद्ध जिनेश्वरके मार्गके परुपक, क्षमासील, ब्रम्हचारी वगैरे धर्म दीपकोंकी, महीमां सुणके इर्षा लावे; ❀और उनका अपमान करनें, उनके सिर झूटा कलंक चडावे, निंदाकरे; और अपनी झूटी बातकों दूसरे मान्य करते देख हर्ष माने. कन्यादान, ऋतुदान, ठेहराके कुलीन स्त्रीयोंको भृष्ट करे. धर्म निमित हिंशामें दोष नहीं ऐसा ठहरावे. ब्रम्हचारी नाम धरा, बिभचार सेवन करे, और महातमा वगैरे नामसे बोलाते आनंद माने, सो भी मृषानुबन्ध रौद्रध्यान.

❀मनहरः—सजनकों देखकर दुर्जन करत कोप, ब्रम्हचारी देखकामी कोप करे मनमें. निशके जगैया ताकों देख कोप करे चोर, धर्मवंत देख पापी झाल उठे तनमें; सुरवीर देखकर, कायरकरत कोप; कवीयेंको देख मुढ हांसी करे जनमें. धनके धनीकों देख निर्धन कोप करे, विनाही निमित खाक डारेतिहूं पनमें:—

बधीर (बैरे) अन्धे, लंगडे, आदी अपंगको; कुष्टादी रोगिको, निर्बुधी, इत्यादिकी हांसी करे, इन्हे चिडावे, चिडते देख मजा माने. जुवा–तास (पत्ते). †शतरंज, वगैरे ख्यालोंमें, सहजही झूट बोलाता हैं. निकम्में विवादमें, प्रवादीयोंको दगासे छलनेमें, झूटे पेंच रचनेमें, हस्त चालाकीसे, या इन्द्र-जालसें, अनेक कौतुक बतानेमें, मंत्र जंत्रादीका आडंबर बडा, आपनी प्रतिष्टा (महिमा) सुण खुश होवे. शास्त्रार्थ करते (वाख्यान देते) अपने मरम (हर्ज) की बातकों छिपावे, अर्थको फिरावें, अनर्थ करे. झूटे गप्पेसें प्रषदाकों रींजाके, आनंद माने. दया, सत्य, सीलादी गुण रहित शास्त्र हैं, जिनमें फक्त संग्राम झगडे, या लीला, कितुहल, की कथा होवें, उन्हे श्रवण कर आनंद मानें. इत्यादि सर्व मृषानुबन्ध रौद्रध्यान समजना.

मृषानुबन्धका अर्थ तो बहुतही होता हैं; परंतु सारांस इत्नाही है की झूटे काममे अनंद माने उसहीका नाम मृषानुबन्ध रौद्रध्यान जाणना.

---

†सो रंज करनेवाली.

तृतीय पत्र-"तस्करानुबन्ध".

३ "तस्करानुबन्ध रौद्रध्यान" सो—

श्लोक—यच्चौर्याय शरीरिणा महरहश्चिन्ता समुत्पद्यते,
कृत्वा चौर्यमपिप्रमोद मतुलं कुर्वन्तियत्संततम्;
चौर्येणापि हृतेपरैः परधने यज्जायते संभ्रम-
स्तच्चौर्यप्र भवंवदन्ति निपुणा रौद्रंसुनिन्दास्पदम्

ज्ञानार्णव.

अर्थ—चोरी करनेकी सदा चिन्ता रहे; चोरी करके अति हर्ष माने; अन्यके पास चोरी करा, लाभकी प्राप्ती हुइ देख, खुशी होवे; चोरी कर्ममें, कला कौशल्यता बतानेवालेकी प्रसंस्या करे; इत्यादि विचार करे सो तस्करानुबन्ध रौद्रध्यान अति निंदनिय हैं.

जीव तृष्णा रूप विक्राल जालमें फसे हुये, सर्व जगतकी अन्न, धन्न, लक्ष्मी, कुटंब की ऐश्वर्यता (मालकी) किये चहाते हैं, परंतु इत्ने पुंन्य करके नहीं लाये की, सर्वाधीपती बने? और प्रमादी (आलसी) ओंसे मेहनत करके, द्रव्योपारजन करना तो बने नहीं, तब सीधा द्रव्य मिलाके इच्छा तृप्त करने, पापोदय से उनकों चोरी सिवाय, दूसरा उपायही कौनसा दिखे, इस हेतूसे, वो चौरीयानुबन्ध रौद्र ध्यानमें चडते हैं,

विचार करते हैं की घटासे अच्छादित अभ्रयुक्त अन्धारी रात्रीमें, क्रष्ण वस्त्र धारण कर, गुप्तपने जा, क्षात्रदे, द्रव्य लावूंगा. क्या मगदूरहै कोइ सामने आय, में शस्त्र कलामें ऐसा प्रवीन हूं की-एक झटकेमें, बहुतोंके बटके (टुकडे). ऐसा सटकु की किसकी माने दूध पिलाया हैं, जो मुजे पकडे. में अनेक विद्याका जानहूं, सबको निद्रा ग्रस्त कर सक्ता हूं. बडे २ जंजीर और तालोंको एक कंकरीसे तोड सक्ता हूं. शैन्यको स्थंभन कर सक्ता हूं. अंज्जन सिद्धिसे पाताल का निध्यान, गुप्तद्रव्य, और अंधकारमें प्रकाश तुल्य देख सक्ताहूं- इत्यादि अनेक कलाका धरनहार में हूं. क्या मगदूर कोइ मेंरी बरोबरी कर सके. हजारों सुभट मेरे हुकममें हैं, वो भी मेरे जैसे कलामें पूर, और सूर वीर हैं. मेने बडे २ नरेंद्रोको धुजादीये हैं. अब मे थोडेही कालमें, इश्वरो (मालकों) का संहार कर, सर्व ऋधिसिद्धी का श्वामी बन, निश्चिंत मजा भोगवुंगा. अमुक स्त्री महा रुपवंत हैं, उसकाभी हरण करूं. अमुक भूषण, वस्त्र, पात्र, पशु. मनुष्य, इन सर्व उत्तम पदार्थोंको, मेरे स्वाधीन कर, उनके उपभोगसें मेरी आत्मा त्रप्त करूं, इत्यादि विचार अंतःकरणमें होवे सो तस्करनुबन्ध

रौद्रध्यान.

ऐसेही कित्तेक नामधारी साहुकार, लोकोकों सेठाइ बताने, उत्तम २ वस्त्र, भूषण, तिलक—छापे, माला, कंठी, से शरीर विभुषित कर, माला फिराते, बडे धर्मात्मा बन, ऊंची २ गादी तकीयोंके टेके, दुकान पे विराजमान होते हैं. शीकार आइ के माला हलाते, भगवानका नाम उच्चार ते, मीठे २ बोल. उस भोलेकों, पान बीडी आदी के लालच से भरमा के, ऐसी हुस्यारी से ठगाइ चलाते हैं, की क्या मगदूर कोइ समझतो जाय, मोलमें, बोलमें, तोलमें, मापमें, छापमें, जवावमें ठगाइ चला, वस पहोंचे वहां तक उसे लूटनेमें कसर नहीं रखते हैं. और विश्वास उपजानें गायकी, बच्चेकी तथा भगवानकी, दमडी २ के वास्ते कसम (सोगन) खाजाते हैं, इच्छित लाभ हुये बडे खुशी होतें हैं. अच्छा माल बता खोटा देतें हैं, अच्छा बुरा भेला कर देतें हैं, हिसाबमें, व्याजमें, उनका घर डूबो देतें हैं. ऐसे २ अनेक चोरी कर्म भर बजार में कर साहुकार कहलातें हैं. अपनें चालाकीको हुस्यारी समज बडा हर्ष मानते हैं, सोभी चोरीयानुबन्ध रोद्रध्यान.

ऐसेही कित्तेक साधू✱ओंका, शरीर दुर्बल देख कोइ पूछे महाराज आप तपस्वी हो, तब तपस्वी न होने परही कहे की हां! साधू तो सदा तपस्वी होतेंहैं, सो तपका चोर. ऐसेही शुद्धाचारविन, मलीन, वस्त्रादी धारण कर, आचार वंत बजे, श्वेत बाल होनेसे स्थैवर (बृध) बजे, रूपवंत हो राजऋधी त्यागनेंवाला बजे, क्रूर प्रणामी होके, दांभिक पणेसे, वैरागी बजे वगैरे धर्म ठगाइ कर, आनंद माने सोभी तस्करानुबन्ध रौद्रध्यान.

किसीके मकान, बगीचा, धर्मशाला, वस्त्र, भूषण, बरतन, भोजन, पाणी, अन्न, फल पुष्पादी, त्रण कंकर जैसा निर्माल्य पदार्थ भी उसके मालककी आज्ञा विन, देखके, स्पर्शके, या भोगवके, आनंद माने सोभी चौर्यानुबन्ध रौद्रध्यान.

जो जो अन्यके पदार्थ सुणने में, देखनेमें, व जाणनें में आवे, उनको ग्रहण करनेंकी, अपनें तावें करनें-

---

✱ तव तेणे वय तेणे, रुवे तेणेय जे नरा;
आयार भाव तेणेय, कुव्व देवेइ किंविसा १

अर्थ आचारका, वृतका, रूपका, तपका; भाव का चोर, मरके, किल्विषी (देवमें चंडाल जैसे) देव होतें है.

की भोगवणें की अभीलाषा होवे, वोही तस्करानुबन्ध तीसरा रौद्रध्यान.

चोर चोरी करके वस्तु लाया, उसको सस्ते भावमें लेके मजा माने, चोर को साह्याय देवे. खान पान वस्त्रादी से साता उपजा, उनके पास चोरी करावे, और माल आप लेके आनंद माने. राजका दाण (हांसल) चोरा के खुशी होवे, जिस वस्तु बेंचनें की, अपनें राज में राजानें मनाकी होय, उसे गुप्त लाके बेंचे, और खुश होवे, इत्यादी तस्करानुबन्ध रौद्रध्यान के, अनेक भेद है. सबका मतलब इतनाही है कें मालककी रज़ा(आज्ञा) विन, या उसके मन बिन, जब्बर दस्तीकर जो वस्तू पे अपनी मालकी जमाके आनंद माने; सोही तस्करानुबन्ध रौद्रध्यान.

चतुर्थ पत्र "संरक्षण"

४ "विषय संरक्षण रौद्रध्यान—इस जगतमें सब जीव पापीही पापी है, ऐसाभी नही समजना; तथा सब पुन्यात्मा हैं, ऐसा भी नही समजना. सर्व संसारी जीवोंके पुण्य ओर पाप दोनों आनादी सें लगे हैं. पापकी वृधी होनेसे, दुःख की विशेषता, और पुण्यकी वृधी होनेसे, सुखकी विशेषता होती हैं; ज्यादा होता

हैं सोही दृष्टी आता हैं; तो भी उसका प्रतिपक्षी गुप्त वनाही रहता हैं.

जिनके पुण्यकी अधिकता होतीहै, उनको सुख दाइ मनयोग, सामग्रीयोंका संयोंग मिलता है; वों उसका वियोग कदापी नहीं चहातें है. (यह वर्णव आर्त ध्यानके दूसरे भेदमें हो गया है) परंतु वस्तुका स्वभावही "अध्रुव असा सयंमी" अर्थात् अध्रुव, अशा-श्वतः क्षिण- भांगूर हैं. "समय ३ अनंत हानी" भगवंतने फरमाइ, सो सत्य हैं. वस्तुका स्वभाव क्षिण २ में पलटता २, किसी वक्त वो सर्व वस्तु नष्ट होजाती हैं; उसे नष्ट न होंने देने—अर्थात् बचानेके जो उपाय कियाजाय, उसीका नाम विषय संरक्षण रौद्रध्यान हैं.

राज लक्ष्मी प्राप्त होंनेसे, विचार होयकी रखे मेरे राज्यको, कोइ परचक्रीयादी हरण करे. इस लिये अव्वलही बंदोबस्त करे, चतुरगणी शैन्य (हाथी, घोडे, रथ, पायदल) उमदा २ प्राक्रमीयोंका संग्रह करुं, धोकेके स्थान छावणी डालू, उद्धतोंके संहारका उपाय चिंतवे, शत्रूके राजमें मनुष्य रख खबर लेता रहूं. उमरावादी को इनाम इकरामसें संतुष्ट रखूं की वक्तमें जान झोंकदे. पुक्त, पुस्ती, उंडी, खाई, शत्घनीयादी

शस्त्र युक्त उंच्च बुरजो, पक्का किल्ला बनावूं. धनुष्य बाण खड्गादी, अनेक शस्त्र, वक्तरोंका, संग्रह कर रखू, धनुर्वेदादी शिक्षा ग्रहण कर, शंग्राम विद्यामें प्रवीन बनू. कसरत, और औषधीयादीके सेवनसे, सरीरको पुष्ट महनती रखूं की, वक्तपे हारूं नही. इत्यादि उपायोंसे राज्य रक्षणकी चिंतवणा करे, सो भी विषय संरक्षण रौद्रध्यान.

द्रव्यको जर्मनीयादीकी तीजोरीयोंमे रक्खू, जिस्से अग्नी, चोरादिकका उपद्रव न पहोंचे. मेला गेहला रहूं, की जिससे कुटंब चोरादी धन हरने पीछे न लगे, किसीके साथ मोहब्बत न करुं की, बक्तपें किसीकी प्रार्थनाका भंग करना नही पडे, संकोचसे थोडेही खरचमें गुजरान चलावूं. हलकी वस्तु वापरुं, इत्यादि उपायसे द्रव्यका रक्षण करुं, और स्त्रीयोंको पडदेमें रखूं, खोजाओंका प्रहरा, खान पान वस्त्र भुषणकी मर्यादा, कमी भाषण, और अपनी तर्फसे उन्हे संतोष उपजाके रखू. की--जिससे वो अन्यकी इच्छा न करे, स्वजन मित्रोंको खान, पान, वस्त्र, भुषण, स्थान, सन्मानसे संतोषूं की, जिससे वो वक्तपें पूरा काम देवे, मकानको सुधराइ सफाइसे रखूं. की पडे नही. इत्यादी प्रका-

रसे संपती संततीके रक्षणका विचार करे, सो भी विषय संरक्षण रौद्रध्यान.

ऐसेही येह मेरा सरीर, रत्नोंके करंडीये से भी अधिक प्रियकारी है, इसको. शीत उष्ण वर्षाऋतुमें. यथा योग्य वस्त्र, आहार, पाणी, मकान, से सुख देवूं, दंश, मच्छर, वगैरे क्षुद्र प्राणीयोंके भक्षणसे बचावूं शत्रूओंसे रक्षण करने, शस्त्र सुभटोका बंदोबस्त करूं क्षुधाको इच्छित भोजनसे, त्रषाको शीतोदकसे, वात, पितादी रोगको औषधोपचारसे, मंत्रादीसें- विंत्रादीके उपसर्गसे रक्षण कर, इस सरिरको अखंड सुखी रखू. ऐसा विचार करे. तथा अपना गौरवर्ण–स्तेज (दमकदार) पुष्ट शरीर देख, खुशी होवे; और अभक्षादीसे पोषण करनेकी इच्छा करे. ओर शरीरके, स्वजन सम्बन्धीयोंके संपतीके नाश करनेवाले जो हैं, उनपे दुष्ट प्रणाम लावे, उन्हे–देख क्रोधातूर हो जावें, उनके नाशके लिये अनेक उपायोंकी योजना (विचारना) करे. और अपना शरीर धन वगैरे दूसरेके तावेमें होय, उनको स्वतंत्र- करने अनेक कूयुक्तीयोंका जो विचार होवे. ये सब, विषय संरक्षण नामे रौद्रध्यान समजना.

ऐसे इस ध्यानके अनेक भेद हैं. परंतु सबका

तात्पर्य यह है की इस ध्यानमें विशेष कर. अपणा स्व-रक्षण और अन्यको परिताप उपजानेका विचार बना-रहे. इसलिये इसे रौद्र (भयंकर) ध्यान कहा हैं.

द्वितीय प्रतिशाखा-"रौद्रध्यानीके लक्षण"

सुत्र रोद्दस्सणं झाणस्स चत्तारि लरकणा पन्नं-ता तंज्जहा, उसणदोसे, बहुलदोसे, अ-णाणदोसे, अमरणांतदोसे.

अर्थम्-रौद्रध्यानीके ४ लक्षण, १हिंशादी पापोंका विचार करे, २विशेष (अखंड) विचार करे. ३अज्ञनीयोंके शास्त्रका अभ्यास करे. ४मृत्यू होवे वहां लग पापका पश्चाताप करे नहीं.

रौद्र=भयंकरही जिस ध्यानका नाम, उसका विचार, कृतव्य, और स्वरुप भयंकर होवे, यह तो स्वभाविक हैं. विचार मगजमें रमण कर अकृती धारण कर, उसही कार्यमें प्रवृतने शरीरकी प्रेरना करताहैं.

रौद्र ध्यान (विचार) होनेसे, रौद्र कार्यके विषयमें जो प्रवृती होती हैं. उसके मुख्य चार भेद भगवानने फरमायें हैं.

प्रथम पत्र--"उषण दोष."

१ उषण दोष, सो हिंशा, झूट, चोरी, और विषय संरक्षण, इन ४हीकी पोषणताके लिये, जो जो काम करे सो उषण दोष. जैसें--हिंशाकी पोषणता (वृधी) करने. अनेक, पावडे, कोदली, खुरपें, वगैरे पृथवीको खोदने फोडनेके शास्त्रका संयोग मिलावे. अधूरे होय तो हाथालगा, धार सुधरा पूरे करावें, और पृथ्वी छेदन भेदनके आरंभमें उन्हे लगावे. एही पाणीके आरंभकी बृधीके लिये चडस, रेंहट, मशक या घडा, कलशां, वगैरे वृतनो. कूवा,वावडी,तलाव,नल,फुवारे,होद, आदी स्थान बणवाके पाणीका आरंभ करे करावे, अग्नीके लिये चूले, भट्टी, दीवे, चिलमो, आतसबाजी, वगैरे करावे औरको उस काममें लगावे. हवाके आरंभके लिये, पंखी, पंखा, बाजिंत्र, वगैरे. हरीके आरंभकेलिये बाग, बगीचे, वाडी, इत्यादि लगावे. या पत्र पुष्प फल, त्रणादीका छेदन, भेदन, पचन, पाचन. भक्षण, करे करावे, त्रसके आरंभकेलिये धूम्रादिक प्रयोगसे मच्छर डांस,षटमल आदीकोमारे जाल फासासे जलचर,वनचर, खेचर आदीको कब्जे करे. तरवार भालादी शस्त्रसे छेदन भेदन ताडन तर्जन करे. मनुष्य पस्यूको कठिण

(घाव पडजाय) ऐसे बंधनसे बांधे, कठोर प्रहार करे अहार पाणीकी अंतराय देवे. अंगोपांग छेदन भेदन करे. सत्ता उप्रांत काम लेवे. मेहनत करावे. सदा निर्दय होके, अयत्नासे एकांत स्वार्थ साधने, या विना, कारण अन्यकों संताप उपजाने, वरोक्तादी जो जो कृतव्य करे, उसे रौद्र ध्यानी समजणा-

ऐसेही—झूटका पोषण करने अनेक पाप शास्त्र-काम शास्त्र, कांदम्बरी, पठन करे; झूटे झगडे जीतने अनेक चालाकोंकी संगत, व कायदे—कानूनोंका अभ्यास, करे, झूटे ख्याल कविता बनावे, चकार, मकारादी गालीका उच्चार करे; विभत्स (अयोग्य) शब्द बोले, निडर, निर्लज होके प्रवृते. ऐसेही चोरीकी पुष्टीके, लिये, चोरोंके शस्त्र; कोश, कुदाल, गुप्ती, वगैरे संग्रह करे, चोरी कलाका अभ्यास करे. गोआदि जानवर पाले, चोरोंकी संगतमें रहै, धाडापाडे, चालाकीसे अन्यका माल हरण करे, और विषय संरक्षणके पोषणकेलिये, श्रोतेंद्रीके पोषणके लिये मृदंगादी बणाने जीवते पशू-वोंका चर्म (चमडा) निकलावे. सारंगीयादी बनाने. गवादीकी आंतो (नशो) तोडावे, चक्षू इंद्रीके पोषण को श्रंगार, समुग्री, सजाने, सुवर्ण रत्नोंके अनेक

आगरों (खदानो) मोतीयोंके लिये, बेंद्री सीपोंको चिरावे, सण, कापासादी, पिलावे, कतावे, गिरनीयादी द्वारा वस्त्रादी बनवावे, अनेक श्रंगारसजे, या स्त्रीयादी को श्रंगारके उनके नाटक ख्यालादी देखे. बगीचादी लगावें. घणेंद्रीके पोषणे, यंत्रादी प्रयोगसे अत्रादी निकला वे पुष्पादी सुगंधी द्रव्यका सेवन करे, पुष्पवटिकादी बनाके उपभोगलेवे, रसेंद्री पोषणे, मंदिरा, मंस, भोगवें. कंद, मूल, आदी अभक्ष खावे, पोष्टिक उन्मादिक वस्तुका सेवन करे, रसायन भस्मादी सेवन करे, वंदेजकी गुटिकादी सेवन कर महा कामी बने, स्फर्शादी के पोषणे, अनेक पुष्पादी सेजका सयन, उत्तम वस्त्र भुषणोसे श्रृंगार सज, हार, तुर्रे, अंतर, पुष्पादीसे सरीर सज, चूंचूं करती पगरखीयों पहर, अकड मकड चले, वैस्यादी नृत्यमें अगवानी भागले. गान तानमें गुलतान बन तान तोडे. मशगुल बन जावे, काम्के चोरासी असनोकी तसवीरों का वारंवार अवलोकन करे, इत्यादि तरह पचेंद्रीके पोषणके लिये जो उपायोंकी योजना करे, उसे उसन दोष नामें रौद्रध्यानी समजना.

द्वितीय पत्र-"बहुल दोष."

"बहुल दोष" सो. वरोक्त इन्ही कामोंको

विशेष करे अर्थात ज्यों ज्यों करे त्यों त्यों ज्यादा २ इच्छा बडती जाय. और इच्छा को त्रप्त करन अधिक २कर्ता-जाय, परंतु त्रप्ती आय ही नहीं, उसे बऊल दोष कहना.

तृतीय पत्र--"अज्ञान दोष."

३ "अणाण दोष" सो— रौद्रध्यानका स्वभा-वही है, के वो उत्पन्न होता तुर्त सज्ञानका नाशकर, जीवको अज्ञानी मुढबना देता हैं. सूकार्यसे प्रिती उ-तार, कुकार्यमें संलग्न कर (जोड) देता हैं. सत्साश्त्र श्रवण, सत्संगमें अप्रिती अरुची होती है, और २९ पाप सूत्रोंके* अभ्यासमें प्रिती होवें. विषयमें प्रवृति करावे, ऐसी कवीता, कल्पित ग्रंथो, कोकशास्त्र, वगैरे पढे सुणे, और कूशास्त्रकी, जिसमें हिंशा झूट, चोरी, मैथुन, वगैरे पाप सेवनमें निर्दोषता बताइ होय; उनका तथा वसी-करण,उचाटन,अकर्षण,स्थंभनादी विद्याका अभ्यास करे गालीयों गावे, ठठ्ठा, मस्करी करे. पुरुषोंको स्त्रीयोंके वस्त्र भुषण पेहरायके,नृत्य,गान,कुचेष्टा करावे; दयामय उत्तम

---

* २९ पापसूत्र—१मूमीकंप, २उत्पात, ३स्वपन, ४अंगफरुक-नेका, ५उलका पातका, ७पक्षीयोंके श्वरका [कोक] ७व्यंजन तिलमसका, ८लक्षणासामुद्रिक, इन ८ के अर्थ—पाठ, और कथा-यों ८÷३=२४ और २५ कामकथा, २६ विद्या रोहणायादी २७मंत्र, २८तंत्र, २९अन्यमतीके आचारके.

धर्मको त्याग, हिंशाधर्ममें राचे, कामी, कपटी, लोभी, कन्क कन्ता धारी, स्त्रीके भोगी, धूप पुष्प अतर अबीरादी की सुगंधमें मस्त रहने वाले, सचित अहारी या मांस मदीरा भोगवने वाले, रंगी बे रंगी वस्त्रो और भूषणासे सरीरको श्रृंगारने वाले, रुष्ट हुये नाश करे, और तुष्ट हुये इच्छा पुरे, ऐसे राग द्वेषसे भरे हुये; इत्यादी अनेक दुर्गुण धारीको देव गुरु जानके माने पूजे, भक्ती करे. त्यागी, वैरागी, शांत, दांत, वितरागी देव गुरुका त्याग करे. अपमान करे, इन्द्रीयों और कषायकी पोषणतामें धर्म और आत्माका कल्याण समजे, सच्चे कामोपर अरुची, और कूकामो पर रुची जगे, ये सब अणाण दोष (अज्ञान दोष) नामे रौद्रध्यानीके लक्षण जाणना.

चतुर्थ पत्र "अमरणांत दोष"

४ "अमरणांत दोष सो"—रौद्रध्यानीका वज्र जैसा कठिण हृदय होता है, दुसरेके सुख दुःखकी उसे बिलकुलही दरकार नहीं रहती है, वो फक्त आपनाही सुख चहाता है; अपनेंसे अधिक दूसरेको देख दुःखी होवे, और उसके यश सुखका नाश करनें अनेक उपाय करे. निर्दयता क्रूर प्रणामसे त्रस थावरका बध (घात)

करे. उनको त्रासते तडफते देख खुशी होवे. ज्यादा २ संताप उपजावे. निडर निष्टूर, पाप—अकार्य करता बिलकूल अचकाय नहीं, झूट बोलता डरे नहीं, चोरीसे हटे नहीं. मैथुन क्रियामें अती आशक्त (लुब्ध) परिग्रहकी अत्यंत मुर्च्छा, क्रोध, मान, माया लोभ, की अति प्रबलता. राग द्वेषका घर. महा क्लेशी, चुगलखोर, गुणीके गुणको ढांकनेवाला. उनके सिर खोटा आल (बज्जा) देनेवाला, अपनी वस्तुपे अत्यंत प्रेमी दूसरेकी वस्तुका अत्यंत द्वेषी, दगाबाज, उपर मीठा और मनमें चीठा. कुगुरु, कुदेव, कुधर्मपे श्रधा, प्रतीत, आसता रखनेवाला; इत्यादि अष्टादश (१८) पापमें अनुरक्त, धर्मका नाम मात्र अच्छा नहींलगे, मृत्युके बीछोनेपे पडा (मृत्यु नजीक आयेपर) भी, अपने किये हुये कर्मका बिलकुलही पश्चाताप नहीं होवे, ऐसा कठोर, घर कुटंबमेंही अत्यंत लुब्ध, ऐसे भावसहीत प्राण छोड (मरके) अन्यगतीमें सिधावे सो अमरणांत दोष नामे लक्षण जाणने.

“रौद्रध्यानके पुष्प और फल”

रौद्रध्यानीके सदा क्रूर प्रणाम रहते हैं. मद मत्सरसे पूर्ण हृय भरा होता हैं. अहो निश पापिष्ट

विचारही मनमें रमण करता हैं, जिससे बज्र कर्मोंका बंध सदा होताही रहता हैं. इसकी आतमासें धर्म कर्म बिलकुल नहीं बनता है. जो देखा देख किया भी तो, क्रूर प्रकृतीके सबबसे उसका अच्छा फल नष्ट होजाता हैं. हाथमें कुछ नहीं आता हैं, अर्थात् इसके विचारसे कुछ होता नहीं हैं. होण हार होतब तो हुवाही रहता है. परंतु उसके मलीन प्रणामसे उसके कर्मोंका बन्ध अवस्य पडताहै. और उन कनिष्ट कर्मोंका बदला देने, रौद्रध्यानीकी नर्क गती होती हैं. वहां यहांके किये हुये कर्मोंके फल भुक्तता हैं! परमाधामी (यम) देव, हिंशा करनेवालेकों, जैसी तरह उसने हिंशा करी होय, वैसेही वो मारते हैं. अर्थात् काटनेवाले को काटते हैं. छेदनेवालेका छेदन भेदन करते हैं. सीकारीका तीरोसे सरीर भेदते हैं. सिंह सर्पो, बिच्छू, कीडे, मच्छर वगैर क्षूद्र जीवोंके घातकका, क्षूद्र जीवोंके जैसा रुप धारण कर, उसे चीर फाड खाते हैं. मांस भक्षीको उसका मांस तोडके खिलाते हैं. मदिरा पानीको, उकलता २ सीसा, तरूवा, तांबा पिलाते हैं. विषय लुब्धीको, अग्न मय लोह पुतलीके साथ संभोग कराते हैं. रागीणीयोंके रसीयेके कान, रुप लुब्धकी आंख गंध विलासीका नाक, जिभ्याके लोलपी की जीभ्याका

छेदन भेदन करते हैं. ताते खारे पाणीसें भरी हुइ 'बेतरणी' नदींमे न्हलाते हैं. तरवारकी धारसेभी अती तिक्षण पत्र बाले सामलीं बृक्ष, तले बेठाके हवा चलाते हैं. कुंभी पाकमें पचाते हैं. कसाइयोंकी तरह सरीरके तिल २ जित्ने टूकडे करते हैं. इत्यादि कर्म उदय आते है. तब* सागरो बंध तक रो २ के दुःख भोगवते है. छूटने मुशकल होजाते है. ऐसा ये रोद्रध्यान दोनो भवमें रौद्र (भयंकर) दुःख दाता जाणना.

रौद्रध्यनीके बऊदा कृष्ण लेस्या मय प्रणाम रहते है. ये हिंशा, झूट, चौरी; मैथुन, परिग्रह ये पंच आश्रव. तथा मिथ्यात्व, अवृत, प्रमाद, कषाय, असुभ जोग ये पंच अश्रव, का सेवने वाला, ज्यूंने कर्मके फल भोगवता अशुद्ध प्रणामके योग्य सें पीछा वैसेही कर्मोंका बंध करता है. यों भवांतरकी श्रेणीमें परिभ्रमण कियाही करता है. रौद्रध्यानीका संसारसे छुटका होना बहुतही मुशाकिल है. अनंत संसार रुलता हैं. इस लिये ये रौद्रध्यान 'हेय' त्यागने योग्य हैं.

---

* चार कोशका उंडा और चौरस कुंबमे, देव कुरुक्षेतके जुगलीयोंके बाल अँखमे डालनही खटके ऐसे, बारीक कतरके ठसो ठस भरे और सोसो वर्षमे एकेक रज निकालते वो सारे खाली होजावे, उसे वर्षका एक पल्योपम होता है. और दसकोडा कोडीकुवे खाली होवे. उनेवर्षका एक सणरोपम होता हैं,

"दोनो समुचय"

यह आर्त और रौद्रध्यान, अष्टादश पापसे भरे हुवें, महा मलीन, सतपुरुषोंके निंदनिय, ग्रहनिय, अनाचरणिय है. यह दोनो ध्यान बिना अभ्याससें पुर्व कर्मोंदयसे स्वभाविकही उत्पन्न होते हैं; और कर्मोकी प्रबलता रहती है वहांतक, निरंत्र हृदयमें रमण करते रहते हैं. उंचस्थान प्राप्त हुये बडे २ ज्ञानी ध्यानी, तपी, संयमी, मुनीको यह प्राप्त होके, एक क्षिणमें पाताल गामी बणादेते हैं. ऐसे ये प्रबल है; मोक्षमार्गे मे आर्गल (भागल) समान आडे आके अटकाने वाले है, सद्वर्तीका नाश करनेवाले है. कलंक जैसे काले, काम जैसे विषारी, पापवृक्षके बीज है. अन्य द्रव्यादिकका छोडना सहज है, परंतु इनसे बचना बहुनही मुशकील है. इनका प्राजय (नाश) तो एक प्रबल प्रतापी महा मुनीराज करके, अनंत अक्षय अ-याबाध मोक्षके सुख प्राप्त करते हैं.

परम पुज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजके सम्प्रदायके बाल ब्रह्मचारी मुनी श्री अमोलख ऋषिजी रचित 'ध्यान कल्पतरू' ग्रंथका द्वितीय-शाखा रौद्रध्यान नामे समाप्तं.

उपशाखा-शुभध्यान.

श्लोक

मोक्ष कर्म क्षया देव, ससम्यग्ज्ञानतः स्मृतः
ध्यान साध्यं मतं तद्धि, तस्मात द्धितमात्मनः

अस्यर्थम्—मोक्ष कर्मके क्षय होनेसे होता है. कर्मक्षय सम्यक ज्ञानसे होते हैं, और सम्यक ज्ञान शुभ ध्यानसे होता है; सइ लिये मुमुक्षुओंको ध्यानही आत्म कल्याणका हेतू है.

प्रथम शाखा-"ध्यानमूल."

इस जगत्में दो बातों अनादीसें चली आती है; १अच्छी, और दूसरी उसके प्रतिपक्षकी बुरी (खराब) एकेकसें एकेककी पहचान होती है. जैसे रात्रीसे दिनकी, और दिनसे रात्रीकी; शीतसे उष्णकी और उष्णसे शीतकी; आचारीसे बिभचारीकी, और बिभचारीसे आचारीकी इत्यादी. सर्व पदार्थोंके गुणकी परिक्षा कर, दशवैकालिकजी सूत्रके फरमाणे मुजब

अच्छा मालम पडे उसेही अङ्गीकार करे, स्विकारे.

अशुभ ध्यानमें प्रवृती तो बिना प्रयास स्वभाविक रीतसेही होती हैं. क्यों कि उसका अनादी सम्बंध है. परंतु शुभध्यानमें प्रवृती होनी बहुतही मुशकिल हैं. क्यों कि कोइभी शुभ कार्य सहजमें नहीं बनता हैं, शुभ ध्यानके लिये अब्बल सम्यक्त्वकी जरूर है, क्यों कि सम्यक्त्वी ही शुभ ध्यानमें प्रवेश करने स्मर्थ होते हैं. इस लिये अव्वल ह्यां सम्क्त्वकी दुर्लभता बतातें हैं.

सम्यग दर्शन उपजता हैं सो, अनादी वासादी मिथ्यात्वीके उपयता है. परन्तु सज्ञी-पर्याप्ता-मंदकषाइ भव्य-गुण दोषके विचारयुक्त सकार उपयोगी (ज्ञानी) और जग्रत अवस्था बाला; इन गुणयुक्तको सम्यक दर्शनकी प्राप्ती होती हैं; परं इनसे उलट, असज्ञी अप्रर्याप्ता तीव्रकषायी अभव्य दर्शना उपीयोगी, मोह निद्रासे अचेत और समुर्छिम, इनकों नहीं उपजता हैं; और पंचमी करण लब्धी भी जो उत्कृष्ट करण लब्धी अनिवृती करण, उसके अंत समयमें प्रथम उपशम सम्यक्त्व प्रगट होता हैं.

"पंचलब्धी"

१क्षयोपशमलब्धी, २ विशुद्धलब्धी, ३ देशना लब्धी, ४प्रयोग लब्धी, और पमी करण लब्धी, इन पंच लब्धीयोंकी यथाक्रम प्राप्ती होणेंसेही, सम्यक दर्शनकी प्राप्ती होती हैं. चार लब्धी तो कदाचित भव्य तथा अभव्य के भी होती हैं. परन्तु करण लब्धी तो जो सम्यक्त्व और चारित्र कों अवस्य प्राप्त होनें वालें हैं उन्हेही होवेंगा.

अब "पंचलब्धीका स्वरूप" बतातें हैं

१ जिस वक्त ऐसा जोग बनें की, जो ज्ञानावर्णियादिक अष्ट कर्मकी सर्व अप्रसस्त प्रकृतीकी शक्तीका जो अनुभाग, सो समय २ प्रते अनंत गुण कमी होता, अनुक्रमें उदय आवे; तब क्षयोपशम लब्धीकी प्राप्ती होवे. २क्षयोपशम लब्धीके प्रभाव से जीवके साता वेदनिय आदी, शुभ-प्रकृतीके बन्धका कारण, धर्मानुराग रूप, शुभ प्रणामकी प्राप्ती होय, सो दूसरी विशुद्ध लब्धी.* ३ छे द्रव्य नव पदार्थका श्वरूप, आचार्यादिकके उपदेश से पेछाणें, सो देशना लब्धी.†

* अशुभ कर्मोका रसोंदय घटनेमें क्लेश प्रणाम की हानी होवे, तब विशुद्ध प्रणाम की वृद्धी स्वभावेंही होता है.

† नर्कादी स्थानमें उपदेशक नहीं हैं वहां, पूर्व जन्मके धारे तत्वके संस्कार से सम्यक्त्व होता है.

यह तीन लब्धी कर संयुक्त जीव, समय २ विशुद्धता की वृधी कर, आयू विन सात कर्मकी, अंतः कोटा कोटी सागर मात्र स्थिती रहे; उस वक्त जो पूर्व स्थिती थी, उसे एक कांडक घात (छेद) कर उस कांडके द्रव्यकी, शेष रही हुइ स्थिती, विशेष निक्षेपण करे, और घातिक कर्मका, अनुभाग (रस) सो काष्ट तथा लता रूप रहे, परं शैल (प्रवत) स्थिती रूप नहीं. और अघाती कर्मका अनुभाग, नींब या काँजी रूप रहे. परं हलाहल विष रूप नहीं. पूर्वे जो अनुभाग था उसे अनंत का भाग दे, बहुत भाग अनुभागका छेद, शेष रहा अनुभाग विषय प्राप्ती करें हैं. उस कार्य करनेकी योंग्यताकी प्राप्ती, सो "प्रयोगता लब्धी"* और भी संक्लेश प्रणाम, सज्ञी पचेंन्द्रि पर्याप्ताके जो संभवें, ऐसे उत्कृष्ट स्थिती बन्ध, और उत्कृष्ट स्थिती अनुभाग का सत्व होतें, जीव के प्रथम उपसम सम्यक्त्व नहीं ग्रहण होवे हैं. तथा विशुद्ध क्षपक श्रेणी विषे संभवते, ऐसा जघन्य स्थिती बन्ध, और जघन्य स्थिती अनुभाग प्रदेशका सत्व होतें भी सम्यक्त्व की प्राप्ती नहीं होवें, प्रथम उपशम सम्यक्त्व कें सन्मुख हुवा जो

* यह प्रयोगता लब्धी भव्य अभव्यके सामान्य होवे है.

मिथ्या द्रष्टी, सो विशुद्धताकी बृधी कर, बधता हुवा प्रयोग लब्धीके प्रथम समयसें लगाके, पूर्व स्थिती के संख्यातवे भाग मात्र, अंतः (एक) कोटा कोटी सागर प्रमाण, आयुष्य विन सात कर्मका स्थिती बन्ध करे है, उस अंतः कोटा कोटी सागर स्थिती बन्धके, पल्य के संख्यात वा भाग मात्र कमी होता, स्थिती बन्ध अंतर्मुहूर्त प्रयंत सामान्यता केलिये करे हैं; ऐसे क्रमसे संख्यात स्थिती बंध श्रेणि करप्रथक (७०० तथा ८००) सागर कम होवें हैं, तब दूसरा प्रकृती बन्धाय श्रेणिस्थान होवें, ऐसेही क्रमसें इत्ना स्थिती बन्ध कमी करतें, एकेक स्थान होए. यों बन्धके ३४ *श्रेण्णी स्थान होतें हैं. इससे लगाके प्रथम उपशम सम्यक्त्व तक बंध नहीं होवें, (ह्यांतक चौथी लब्धी) ५ पांचमी करणलब्धी सो भव्य जीवकेही होती हैं, इसके ३ भेद-१ अधःकरण, २अपूर्व करण, ३अ निवृती करण†. इनमें अल्प अंतर महुर्त प्रमाणे काल तो, अनिवृतीकरण का है, इससें संख्यात गुणाकाल, अपूर्व करणका; और इससे संख्यात गुणाकाल, अधःप्रवृती करणका होता है,

* इसका विशेष खुलासा लब्धी सार ग्रन्थमें है.

† करण कषाय की मंदता को कहते हैं.

सो भी अंतर महुर्त प्रमाणें ही हैं.‡ और भी इस अधः प्रवृती करण कालके विषय, अतीतादी त्रिकाल वृती अनेक जीव समंधी, इस करणकी विशुद्धता रूप प्रणाम असंख्यात लोक प्रमाणें हैं, वो प्रणाम अधः प्रवृती करणके, जित्ने समय हैं. उत्नेमें सामान बृधी लिये, समय २ में बृधी होतें हैं, इससे इस करणके नीचेके सम्मयके प्रणामकी संख्या और विशुद्धता, उपर के समय वर्ती किसी जीवके प्रणाम सें मिलें हैं, इससे इसका नाम अधःप्रवृतीक है. इस अधः प्रवृति करण के चार आवश्यक—१समय २ प्रते अनंतगुण विशुद्धता की बृधी. २ स्थिती बंन्ध श्रेणी, अर्थात् पहले जित्ने प्रमाण लिये कर्मका स्थिती बन्ध होताथा, उसे घटाय २ स्थिती बंध करे. ३ साता वेद निय आदी दे प्रसस्त कर्म प्रकृतीका समय २ अनंतगुण बृद्धी पाते; गुड, सक्कर, मिश्री और अमृत, समान चतुस्थान लिये अनुभाग वन्ध है. ५असाता वेदनीआदी अप्रसस्त कर्म प्रकृती, समय २ अनंतगुण कमी होती नींब, कांजी, समान द्वि स्थान लिये, अनुभाग बंध होता है, परन्तु हलाहल जैसा नहीं. यह ४ आवश्यक जाणनें.

‡ अंतर महुर्त के भेद असंख्य हैं.

२ अधः पृवृती करणका अंतर मुहुर्त काल व्य-तीत भये, दूसरा अपूर्व करण होता हैं. अधः करणके प्रणाम सें, अपूर्व करणके परिणाम असंख्यात लोक गुणें हैं, सो बहुत जीवोंकी अपेक्षा सें; परन्तु एक जीव की अपेक्षासें तो एक समय में एकही परिणाम होते है; और एक जीवकी अपेक्षासें तो, जित्ने अंतर महुर्त के समय है, उत्नेही होते हैं. ऐसेही अधःकरण के भी एक समय में एक परिणाम होवें है. और बहोत जीवकी अपेक्षासें असंख्य परिणाम जाणनें. अपूर्वकरणकेभी परिणाम समय २सदश कर बृधमान होते हैं. इस अपूर्व करणके परिणाममें नीचेके समयके परिणाम तुल्य, उपरके समयके प्रणाम नहीं हैं. प्रथम समयकी उत्कृष्ट शुद्धतासें, द्वितीय समयकी जघन्य शुद्धता अनंत गुणी हैं. ऐसे परिणामका अपुर्व पणा हैं. इसलिये इसका अपूर्व करण नाम है.

अपूर्व करणके पहले समय सें लगाके अंतःसमय तक अपनै जघन्यसे अपना उत्कृष्ट, और पूर्व समयके उत्कृष्टसें उत्तर समय के जघन्य, यों कर्मके परिणाम अनंतगुणी विशुद्ध लिये, सर्प की चालवत् जाणना. ह्यां अनुत्कृष्टी नहीं हैं. अपूर्व करणके पहले समयसे लगाके यावत् सम्यक्त्व मोहनी मिश्र मोहनी का

पूर्ण काल जो जिस कालमें गुण संक्रमण कर, मिथ्यात्व को सम्यक्त्व मोहनी, मिश्र मोहनी, रूप प्रगमावें, उस कालके अंत समय पर्यंत. १गुणश्रेणी, २गुणसंक्रमण, ३स्थिती खंड, ४ और अनुभाग खंडन, यह चार आवश्यक होवें. और भी स्थिती बंध श्रेणी है सो अधः करण के प्रथम समय सें लगा. गुण संक्रमण पूर्ण होनेके कालपर्यंत होवें हैं. यद्यपी प्रयोग लब्धीसे ही स्थिती बन्धाके श्रेणी होती है, तथापी प्रयोग लब्धीसे सम्यक्त्व होनेका अनवस्थित पना है, यह नियम नहीं; इसलिये ग्रहण नहीं किया. और भी स्थिती बन्ध श्रेणीका काल, और स्थिती कांड कान्डोत्करणका काल यह दोनी सामान अंतर मुहुर्त मात्र हैं. वहां पूर्व बंधाथा ऐसा सत्तामें कर्म परमाणु रूप द्रव्य उसमेसें निकाले, जो द्रव्य गुण श्रेणीमें दीये, उस गुण श्रेणीके कालमें समय २ में असंख्यात गुणा अनुक्रम लिये पंक्ती बंध जो निर्जरा का होना, सो गुण श्रेणी निर्जरा हैं. २और भी समय २ प्रते गुणाकारका अनुक्रम ते विविक्षित प्रकृती के प्रमाणु पलट कर,अन्य प्रकृती रूप होकै प्रणमें सो गुण संक्रमण. ३पूर्व बन्धीथी वो सत्ता में रही कर्म प्रकृतीकी स्थितीका घटाना सो स्थिती खन्ड हैं ४और पूर्व बन्धे थे, ऐसे सत्तामें रहा

हुवा अशुभ प्रकृतीका अनुभाग घटाना, सो अनुभाग खन्डन. ऐसे चार कार्य अपूर्व करणमें अवश्य होतेंहैं.

अपूर्व करणके प्रथम समय सम्बन्धी, प्रसस्त अप्रसस्त प्रकृतीका जो अनुभाग सत्व हैं, उससे उसके अंत समय विषे, प्रसस्त प्रकृतीका अनंतगुण बृधी होता, और अप्रसस्त प्रकृतीका अनंतगुण कमी होता, अनुभाग सत्य होते हैं; सो समय २ प्रती अनंतगुण विशुद्धता होनेसे, प्रसस्त प्रकृतीका अनंत गुणा अनुभाग कान्डका महातम कर, अप्रसस्त प्रकृतीके अनंतमें भाग अंत समयमें संभवता है.*

ऐसे अपूर्व कर्ण विषय कहे, जो स्थिती कान्डादी कार्य, सो विशेष तों तीसरे अनिवृती करण विषय जाणना. विशेष इत्ना, ह्यां समान समय वर्ती अनेक जीवके सदृस प्रणामही हैं. इस लिये जित्ने अनिबृती करणके अंतर महुर्तके समय हैं, उत्नेही अनिवृती करणके प्रणाम हैं. इससे समय २ प्रते, एकेकही प्रणाम हैं, और जो ह्यां स्थिती खन्डन, अनुभाग खन्डादीकका प्रारंभ औरही प्रमाणे लिया होता हैं, सो अपूर्व करण सम्बंधी जो स्थिती खंडादिक उ-

---

* इन स्थिती खन्डादी होनेका विशेष अर्धीकारभीं है परंतु

सके अंतः समयही समाप्त पना हुवा.*

यहां यह प्रयोजन है की जो अनिवृती करणके अंत समय विषे, दर्शन मोहनी और अन्तान बन्धी चतुष्क, इनकी प्रकृती स्थिती, प्रदेश, अनुभाग, का समस्त पने उदय होनेंकी. अयोग्यता रुप उपसम होनेसे, तत्त्वार्थकी श्रधान रुप सम्यक्त्व होता है वोही उपशमिक सम्यक्त्व है.

यह भाव चौथे गुणस्थान वर्ति जीवके जाणना, यों आगे अप्रत्याख्यानी चतुष्टकका उपशम होनेसे, इच्छा निरुंधन, अल्पारंभ, अल्प परिग्रह, शुद्धवृती, संवेगी, कल्प उग्रह विहारी, उदासीनतादी गुणोंकी अधिकता होती हैं, आगे प्रत्याख्यानीके चतुष्टकका उपशम होनेसे, साधुत्व, संयमत्व, तपवृती, समिती गुप्ती, परम वैराग्यतादी गुणोंकी वृधी होते, शुभ ध्यान करनेकी योग्यताको प्राप्त होता हैं.

अन्तान बन्धीके उपशमसे अप्रत्याख्यानीवाले, अप्रत्याख्यानीके उपशमसे प्रत्याख्यानीवाले, प्रत्याख्यानीके उपशमसे संज्वल कषायके चतुष्क उपशमवाले. और इन अकषाइध्यानके मार्गमें अधिक २ विशुद्धता, सरलता, प्राप्त करते आगे बढे हैं.

यह सम्यक्त्वी, देशवृती, और सर्ववृर्ती, कर्मो-के उपशम क्षयोपशम, व क्षायकताके योग्यसे निश्चय में प्रबृती करसक्ते हैं. और इन सिवाय ज्ञानारणव ग्रन्थमें ध्यानीके ८ लक्षण कहे हैं—

श्लोक — मुमुक्षुर्जन्म निर्विण्णः शान्तचितोवशीस्थिर;
जिताक्ष संवृतोधीरो, ध्याता शास्त्रेप्रशस्यते.

अर्थ १ मुमुक्षु आर्थत् मोक्ष जाने की जिसे अभीलाषा होवेंगा वोही ध्यानका कष्ट सहेगा; आत्म निग्रह करेगा. २ विरक्त-जिनका पुग्दल प्रणित सुखोंसे वृती निर्वृती है. उन्हीके प्रणाम ध्यानमें स्थिरता करेंगे, ३ शांतवृती-जो परिसह उपसर्ग उपनेशांत प्रणाम रखेंगे, वोही ध्यानका यथातथ्य फल प्राप्त कर सकेंगे, ४ स्थिरस्वभावी जो मनादी योगोका कुमार्ग से निग्रह कर, ध्यानमें वृतीको स्थिर करेंगे, वोही ध्यानी हो सकेंगे, ५ स्थिरासनी जिसस्थान ध्यानस्थ हो, वहांसे चल विचल न करे; व ध्यानके कालतक आसन बदलें नहीं; वोही सिद्धासनी कहे जाते है. जितेंद्रिय श्रोतादी पंच इंद्रिययोंको, शब्दादी पंचविषयसें, रागद्वेषकी निर्वृती कर, धर्म मार्गमें संलग्न करेंगे, वोही ध्यान सिद्धीको प्राप्त होवेंगे ७ संवृतातमा जिन्नने आपनी संवर आत्मको संवृत कर, हिंसादी पंचाश्रा-

वसे निर्वारी, अहिंशादी पंचमहाव्रत स्विकार किये, तथा अनादी प्रणति रूप संसर्ग कर, जो अंतःकरणकी वृतीको विकार मार्गमें प्रावृती कराती हैं, उन वृतीयोंको अंतरिक ज्ञान, आत्माकी प्रबल प्रेरणा कर निर्वृताइ, खान पानकी* लोलुपता त्यागी, वोही ध्यान सिद्धी कर सकेंगे. ८ धीर होय—अर्थात् ध्यानस्त हुये फिर, केसाभी कठिण परिसह उपसर्ग आनेसे, विलकुल प्रणामोंको चल विचल नहीं करे. क्यों की ध्यानमें परवेश करते पहले "अप्पाणं वोसी रामी" अर्थात् में इस सरीरकों वोसीराता हूं. इसकी ममत्व छोडता हूं. यह सरीर मेरा नहीं, में इसका नहीं, ऐसा कहके बेठते हैं; तो जब यह सरीर अपनाही नहीं, तो फिर इसका भक्षण करो, दहन करो, या छेदन भेदन करो, कुछभी करो, अपनको क्या फिकर. ऐसा निश्चय होय, तबही ध्यानकी सिद्धीको प्राप्त हो सक्ता

---

* एकदम लुलुप्त घटनी मुशकिल है, इस लिये थोडी लुलुप्ता घटानेका सदा अभ्यास रखना चाहीये, जैसे यह वस्तु नही खाइतो क्या वह बस्त्र नही पहरा तो क्या यह काम अव्वल तों मुशकिल लगेगा परंतु फिर सहज होजायगा यो सर्व वस्तु उपरसे लुलुप्ता घटानेकी यह बहुत सहजकी रीती हैं. यों करनेसे कोइ वक्त निर्ममत्वताको प्राप्त होशक्तें है

है. ध्यान किया सो कर्मका क्षय करने किया, और कर्मका क्षयतो विना उपसर्ग, विना दुःख देखे नहीं होता है. जो परिसह उपसर्ग पडेहै, वो, कर्मका क्षय करनेही पडे है. ऐसे कर्ज चुकाती वक्त, पीछा नहींजहटना. ऐसा द्रढ निश्चयसें धैर्य धारणसेही ध्यान सिद्ध होता हैं. इन आठगुणोंके धारण हारही ध्यान सिद्धीको प्राप्त होतें हें, एसा जाण शुभध्यान करनेवाले मुमुक्षु जनोकों पहले अष्टगुण क्रमसे अभ्याससे प्राप्त करने चाहीये.

द्वितीय उपशाखा-"शुभध्यान विधी."

दुहा

क्षेत्र द्रव्य काल भाव यह, शुभाशुभ यवसु जान; अशुभ तजी शुभ आचरी, ध्या ध्याता धर्म ध्यान.

१ क्षेत्र, २ द्रव्य, ३ काल, और ४ भाव, यह ४ शुभ अच्छे; और ४ अशुद्ध, खोटे. यों ८ भेद होते हैं. जिसमेंसे ४ अशुद्धको त्याग कर, शुद्धका जोग मिलाके. हैं! ध्यान ध्याताओं शुद्ध-धर्मध्यान ध्यावो.

कोइभी काम यथाविधी करनेसे इष्टितार्थ को-

घ सिद्ध करता हैं. इस लिये ह्यां मोक्ष प्राप्त रूप कार्यकी सिद्धी करनेवाला ध्यान हैं. उसके करनेकी विधीका वर्णव करते हैं.

ध्यानमें मनको स्थिर करने क्षेत्र. द्रव्य. काल. भावकी शुद्धीकी बहुतही जरूर हैं. अव्वल क्षेत्रकी शुद्धाशुद्धी बताते हैं.

प्रथम पत्र "क्षेत्र"

१ 'अशुद्ध क्षेत्र'-दुष्टराजाकी मालकीका क्षेत्र, अधर्मी, पखंडी, म्लेछ, कुलिंगी रहते होये; ऐसे क्षेत्रमें रहनेंसे उपसर्ग उपजनेका संभव हैं. जहां पुष्प, फल, पत्र, धूप, दीप. या मदिरा, मांस, ऐसे स्थानमें मन चंचल होनेका संभव हैं. जहां बिभचारी स्त्री पुरुष क्रिडा करें, चित्राभ किये होवें. काम क्रिडाके शास्त्रों का पठन होता होय. नृत्य, गायन, होते होय. बाजिंत्र बजते होय. ऐसे स्थानमें, बीकार उत्पन्न होनेका संभव हैं. जहां युद्ध=मल कुस्तीयां लडाइ झगडे होतें होय. झगडेके शास्त्र पडते होय. पंचायती करतें होय, वहां विखवाद होनेका संभव हैं. जहां अन्यके प्रवेश करनेकी मालिकादिकने मना करी होय, वहां रहनेंसे [illegible]

जुवा खेलते होय, कैदी रहते होय, मद्य मांस (दारू) विकता होय, पारधी रहता होय, सिल्पिक (कारीगर चमार, सोनार, लोहार, रंगारे, इत्यादी) रहते होय. वहां चितविग्रह होनेका संभव है. जहां नपुशक. पशू (तिर्यंच) कुलंछनी, भांड, नट, खट, इत्यादि अयोग्य रहते होय. वहां, अप्रतीत होनेका संभव हैं. इत्यादि अयोग्य स्थान बर्जके ध्यान करे.

२ 'शुभ क्षेत्र'=निर्जन स्थान--जहां विशेष मनुष्यादीकी वस्तीया, आवा गमन न होय. समुद्रके, तथा नदीके तट (किनारे) पर, बृक्षोके समोहमें,* बेलीके मंडपोमें, प्रवतोकी गुफामें, स्मशाणोंकी छत्रीयोंमें, सूखे झाडकी कोचरमें, शुन्य ग्राम या शुन्य गृह (घर) में, वरोक्त (जो अशुद्ध क्षेत्रमें कही उन) बावतोंसे वर्जित, देवालयमें. इत्यादि स्थान फासुक (निर्जीव) होय, वहां ध्यान करने योग्य स्थान हैं. चितमें समाधी (शांती) रहती हैं.

द्वितीय पत्र-"द्रव्य."

३ 'अशुभ द्रव्य'-जहां अस्थि, मांस, रक्त, चर्म'

* अफोव मंडवांमि. झायइ झोवियासवे-उत्तराध्येयन १८
अर्थ-अफाव (नागरवेल) के मंडपमें ध्यान ध्याते है. आश्रवको

मेंद, चरवी, और मृत्यूक जानवरोंके कलेवर, खान, पान, पक्कान, तंबोल, औषधीयों, अतरादी तेल, शैय्या (पलंगादी),आसन,स्त्री पुरुषके शृंगारके वस्त्र, भुषण. कामासन, स्त्रीयादीके चित्र, इत्यादी द्रव्य होय, वहां ध्यानीयोंका चित स्थिर रहना, मनका निग्रह (वस) होना मुशकिल हैं.

४'शुभद्रव्य-शुद्ध' निर्जिव पृथवी-शिल्लापटपे-काष्टासन=पाट बजोट (चौकी) पें. पारलके आसनपे उन, सूत, आदी शुद्ध वस्त्रपें ध्यानस्त होनेसे प्रणाम स्थिर रहनेका संभव है. ध्यान इच्छककों अहार थोडाकर सो भी हलका [तांदुलादी] विशेष घृत माशालेसे वनार्जित, शीतादी कालमें, प्रकृतीयोंको अनुकुल [सुखदाता] वक्तके, और बजनके, प्रमाणयूक्त; निर्जिव, और निर्दोष, शुद्ध, करनेसें चितको स्थिर रख शक्ते हैं.

ध्यान इच्छकको-आसन; मुख्यतो पद्मासन [पालखी घाल दोनो साथलोंपें दोनों पग चडा दोनों हाथ एकस्थान थिकसे कमलके समकर, पेटके पास नीचे रखके स्थिर होय] पर्यांकासन [पालखी घाल बेठे] दंडासन [खडेरहे] ये तीन हैं. और तो वीरासन, लगडासन, अम्बखुजासन, गौदूआसन, वगैरेसे इस व-

तीन अंगलीयों [तर्जनी, मध्यमा, अनामिक*] के नख बेड़े (सन्धीरेखा) को बारे कक गिणनेसे १२÷९=१०८ एकसो आठ होते हैं. सोही उत्तम है.‡ और माला तो मध्यम तथा कनिष्ट गिनते हैं. ध्यानीको ध्यानमें स्थिर होते, नशाग्रद्रष्टी नेत्रोन मेख स्थिर कर. चित्रकी मूर्तीके जैसा स्थिर हो, निश्चल हो. मुख फाडको ढीली छोड, चितको सर्व व्याधी सर्व विकल्पसे मुक्त कर बेठनेसे, ध्यानकी सिद्धी शुलभतासे होनेका संभव हैं.

तृतिय पत्र-"काल"

५ 'अशुभ काल'-† पहला, दूसरा, और तीसरा आरा, माठेरा, (कुछकमी) तथा छट्टा आरा, इनमें धर्मीजनोंके अभावसें ध्यान होनेका कम संभव हैं. और भी अती उष्ण काल, अती शीत काल. अती जीवोत्पतीका काल. दुकाल. विग्रह काल. रोगग्रस्त काल, इत्यादी काल ध्यानमें बिग्रह करनेवाले गिणे जाते हैं.

६ 'शुभ काल'-ध्यानके लिये सर्वोत्तम काल

---

* कनिष्टा (छोटी अंगुली) और अंगुष्ट छोडके.

‡ इसेही नोकरवाली कहते हैं. नकी सूतादीको.

† ये तीन आरा ध्यान साधनेके लिये ही अशुद्ध है, और

तो चौथा आरा गिणा जाता हैं. क्यो की उसमें वज्र बृषभनाराचादी संघेन और ध्यान करनेके अनुकुल जो गत्राइयोंकी विशेषता थी. जिससें महान (मरणांतिक) संकट सहन करभी, अडोल (स्थिर) रहतेथें. इस पंचम कालमें संघेणादिककी नुन्यतासे, उस मुजब ध्यान हो नहीं सक्ता हैं. तो भी सर्वथा नास्ती नही समजना, क्यों कि गुण कारक वस्तु तो हमेशा गुणही करती हैं; चौथे आरेमें सक्करमें ज्यादा मिठास होगा, और अब्बी काल प्रभावसे कमी पडगया होगा. तो भी सक्कर तो मीठीही लगेगी. ऐसेही इस कालमें भी यथा विधी किया हुवा ध्यान, गुणकर्ताही होगा. और भी ध्यान कर्ता पुरुष शीत उष्णादी कालमें अपनी प्रक्रतीके अनुकुल समय विचारे. श्री उत्तराध्येयजी सूत्रमें तो "बीयं ध्यान धीया इह" ऐसा फरमाया हैं, अर्थात् दिनकी और रात्रीकी दूसरी पोरसी (प्रहर) मैं ध्यान धरे, और कित्नेक ग्रन्थोंमें पिछली रात्री (रात्रीका चौथा प्रहर.) ध्यानके लिये उत्तम लिखा हैं.

यह द्रव्य क्षेत्र और कालके विधी विवक्षा अर्थात् शुभ शुभका विचार, फक्त, अपूर्ण ज्ञानी और अस्थिर चितवालोंकें लिये हैं. पूर्ण ज्ञानी और अडोल

उन्हे तो सर्व क्षेत्र-द्रव्य-काल अनुकूलही होता हैं.

चतुर्थ पत्र—"भाव"

७ 'अशुद्ध-भाव' अशुभ या अशुद्ध भावका वरणव, आर्त और रौद्रध्यानमें बताया वोही समजना विषय, कषाय, आश्रव, अशुभयोग, असमाधी, चपलता, विकलता, अधैर्यता, नास्तिकता, कठोरता, राग द्वेष रूप प्रणति. वगैरे सर्व अशुभ जोग गिणे गये हैं. इन से भावोंकी मलीनता होती हैं.

८ शुभ, भाव, ४ प्रकारके हैं. सो—

मैत्री प्रमोदकारूण्य, मध्यस्थानि नियोजयेत्
धर्मध्याने मुपस्कर्तु, तद्धितस्यरसायनं १

अर्थ—१ 'मैत्री भाव' २ प्रमोदभाव, ३ करुणा भाव, ४ और मध्यस्तभाव, इन चारोंही भाव संयुक्त होनेसें, धर्म ध्यानकी रासायन (हूबहू—स्वाद) पैदा होती हैं.

१ मैत्री भाव-"मितिमें सव्व भूएसु, वेर मझं न केणइ" अर्थात्—सर्व जीव मेरे मित्र (दोस्त) हैं,

---

सूत्र—मैत्री करूणा मुदिता पेक्षाणां सुख दुःख पुण्यापुण्य विषयाणां भावना तश्चित प्रसादनम. ३३ योगदर्शन.

अर्थ—सुखी प्राणीयोंमे मित्रता, दुःखीमे दया, धर्मात्मापे हर्ष, और पापीयोंपे मध्यस्त वर्ती. इस तरें वर्तनेसे चित प्रसन्न रहता हैं.

इस लिये मेरा किसीके साथ भी किंचित मात्र वैर विरोध नहीं हैं. इस जगत् वासी सब जीवोंके साथ अपने जीवने. माता-पिता-स्त्री-पुत्र-बन्धू-भग्नीयादि जितने सम्बंध हैं. वो सब एकेक जीवके साथ अनंत २ वक्त कर आया हैं. श्री भगवतीजी तथा जंबूद्विप प्रज्ञातीमे, फरमाया हैं-की- "अणंत खुत्रो" अर्थात संसारमें इस जीवने, अनंत जन्म रमण कर, सर्व जगत् फरसा है. इस अनुसारसे, जगत् वासी सब जीव अपणे मित्र हैं; इस लिये जैसे इस भवके कुटुम्बपे प्रेम रहता हैं, वैसाही सब जीवोंके साथ रक्खे, सुक्ष्म (द्रष्टी न आवे सो) बादर (दिखे सो) त्रस (हले चले सो) स्थावर (स्थिर रहे सो) इन सब प्रकारके जीवोंकों अपणी आत्मा समान जाणे.* सबको सुखी चहावे सो मैत्री भाव.

२ प्रमोद भाव इस जगतमें अनेक सत्पुरुष अनेक २ गुणके धरने वाले हैं. कित्नेक ज्ञानके सागर हैं. बहोत सूत्रोंके पाठी (पढे हुये) सद्वाद शैली कर, जिनागम की रेष श्रोता गणो के ह्रदयमें

---

*यथा आत्मान प्रियप्राण, तथा तस्यापीं देहीनां
इति मत्वन कृतव्यं, घोर प्राणी बधौ बुद्धः
अर्थ--जैसे अपनें प्राण अमनको प्रिय है वैसेही सबही के

ठसानें वाले, सिधान्तकी सन्धी मिलाने वाले, तर्क वितर्क कर गहन विषयको सरल कर, बताने वाले, नय निक्षेपे प्रमाणादी न्यायके पारगामी, कुतर्कीयोंका शांतपणें समाधान करनें वाले. असर कारक सद्वौधसे, धर्मकी उन्नतीके कर्ता, चमत्कारिक कवीत्व शक्ती, व वकृत्व शक्तीके धारक, ऐसे २ अनेक ज्ञान गुणके धारक हैं. कित्नेक, शांत, दांत, स्वभावी; आत्मध्यानी, गुणग्राही, अल्पभाषी, स्थिरासनी, गुणानुरागी, सदा धर्म रूप आराम (बाग) में, अपणी आत्माके रमाने वाले हैं; कित्नेक महान तपस्वी, मासक्षमनादी जब्बर २तपके करनेवाले, उपवास आयंविलादी करनेवाले, षड्रसके, विगयके, त्यागी, एक दो द्रव्यपेही निर्बाह करनेवाले. शीत,ताप, लोच,आदीकाया क्लेस तपके करनेवाले हैं. कित्नेककी ज्ञानाभ्यास की और तपश्चार्या करनेकी शक्ती नहीं हैं तो, स्वधर्मीयोंकी भक्ती करते हैं. अहार, वस्त्र, शैयासन, आदी प्रतीलाभ साता उपजाते हैं, कित्नेक ग्रस्थ तन मन धनसे चारही तीर्थकी भक्तीके करनेवाले, धर्मकी उन्नतीके करने वाले, प्राप्त हुये पदार्थ कों लेखे लगानेवाले है. ऐसे२उत्तमोत्तम अनेक गुणज्ञोके दर्शन कर, परसंस्या श्रवण

नर रत्न उत्पन्न हो धर्मदीपाते हैं. यह महा पुरूषों सदा जयवंत रहो. ऐसा विचार, उन्का सत्कार सन्मान करे. साता उपजावें. दूसरे को उनकी भक्ती करते देख, हर्ष पावे; सो प्रमोद भावना.

३ 'करूणा भाव'- जगतूवासी जीव कर्माधीन हो अनेक कष्ट पाते हैं. कित्नेक अंतराय कर्मकी प्रबलतासे, हीन, दीन, दुःखी होरहें हैं. खान, पान, वस्त्र, गृह, करके रहित हो रहे हैं, कित्नेक वेदनी कर्मकी बृधी होनेसे, कुष्टादि अनेक रोगों करके पिडित हो रहे हैं. कित्नेक काष्ट-खोडा बेंडी आदी बंधनमें पडे हैं, कित्नेके शत्रूओंके ताबेमें पडे हैं, कित्नेक शीत, ताप, क्षुद्या. तृषादी अनेक विपति भोगवते हैं. कित्नेक अन्धे, लूले, लंगडे, बधीर, मुक्के, गुंगे, आदी अंगोपांग रहित हो रहे हैं, कित्नेक पशू, पक्षी, जलचर, बनचर, हो प्राधीनता भोगवते हैं; बध, बंधन, ताडन, तर्जना सहन करते है, हिंशकोंके हाथ कटते है. इत्यादि अनेक जीव, अनेक तरहकी विपति (दुःख) भोगवते हुये; सुखके लिये तरसते हैं. हमें कोइ सुखी करो! जीवत्व दान देवो! दुःख, संकटसे उगारो! वगैरे दीन दयामणी प्रार्थना करते हैं. उन्हेदेख दुःखीहोय, करुणा लावे

योग्य प्रयत्न उपाय करे, उन्हे सुखी; करे सो करुणा भावना.

४ 'मध्यस्त भाव'-इश विश्वमें कित्नेक भारी कर्मे पापिष्ट जीव सद्गुण, सद्कर्मको त्याग, खोटेको स्विकार करतें हैं. सदा क्रोधमें संत्त, मानमें अकडे हुये, मायासे भरे हुये, लोभमें तत्पर रहतें हैं. निर्दयता- से, अनाथ प्राणीयोंका कट्टा करते हैं. मदिरा, मांस कंदमूलआदी अभक्षका भक्षण करते हैं. असत्य, चोरी, मैथुनमें पटूता (चतुरता) बताते हैं. विषय लंपट वैश्या, पर स्त्री गमनमें आनंद मानें, जुगारा (जुवा) दी दु- र्व्यसनमें लुब्ध अष्टादश पापोमें अनुरक्त, देव, गुरु, धर्मके, निमित हिंसा करने वाले, हिंशामें धर्म माननेवाले, कूदेव, कूगुरु, कूधर्मकी प्रतिष्टा बडाने बाले, अच्छेकी निंदा करनेवाले, अपनी २ परशंस्यामें मग्न. इत्यादी पापी जीवोंको देख, राग द्वेष रहित, मध्यस्त प्रणाम- से विचार करे की, आहा! देखो इन बेचारे जीवोंकी कैसी विषम कर्म गती हैं; अत्यंत कष्ट च्यार गती रूप संसारमें सहन करते २, अनंत कष्टसे मुक्त (छुटका) करनेवाली अनंतानंते पुन्योदयसे, मनुष्य जन्मादी उतमोत्तम सामग्रीयों प्राप्त हुइ हैं. इसे, व्यर्थ गमाते हैं? कुमार्गमें लगाते हैं!

र्जन करतें हैं. कंकरकी खरीदमें चिंतामणी रत्न, और विषकी खरीदमें अमृत देते हैं, सुधारके स्थान बीगाडा करते हैं, हे प्रभू ? इन बेचारे अनाथ पामर जीवोंकी इन कुकृतव्यके फल भोगवते, क्या दिशा होयगी? कैसी वींटंबणा पायंगे! तब कैसे पश्चाताप करेंगे? परन्तु इन बेचारे जीवोंका क्या दोष हैं, यह तो सब काम अच्छेके लियेही करते हैं, सुखके लियेही खपते हैं, परन्तु इनके अशुभ कर्म इनको सद्बुद्धी उपजनें नहीं देते है. जैसा २ जिनका भव्य तव्य (होनहार) होय, वैसा २ही बनाव बनारहता है. इत्यादी विचार मध्यस्त पणे उपेक्षा=उदासीनतासें करे सो मध्यस्त भावना.

इन चारही भावनाकों भावते(विचारते) हुये और इसमें कहे मुजब प्रवृतते हुये जीव, राग, द्वेष, विषय, कषाय, क्लेश, मोहादी शत्रुओंका नाश करने सामर्थ (शक्तवंत) होते है. यह भावना भावनेवालेके हृदयमें, उक्त शत्रुकों प्रवेश करनेका अवकाश (फुरसत) ही नहीं मिलशक्ता है*

---

* योग दर्शन ग्रन्थमें पतञ्जली ऋषिने योगके ८ अंग कहे हैं. " यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयो ऽष्टावङ्गानि " १ यम, २ नियम, ३ आसन, ४ प्राणायाम, ५ प्र-

शुभध्यानस्य "फलं."

इस विधीसें किया हुवा ध्यान इस जीवोंको मोक्ष पंथ लगानें वाला है, हृदयके ज्ञान दीपककों प्रदिप्त करने वाला हैं, अतिंद्रीय-मोक्षके सुखको प्राप्त करने वाला हैं. यों ध्यानमें प्रवेश करनेसे ही, अध्यात्म-

---

१ "अहिंसा सत्यास्तेय ब्रम्हचर्या परिग्रहा यमाः

अर्थ—यम के ५ प्रकार किये हैं. १ अहिंसा=सर्व प्राणीयोंके साथ वैर (शत्रुता) और बध (घात) से निर्वृत चितसे सर्वके साथ मैत्रीता होवे. (२) 'सत्य'=मन और इन्द्रियोंसे जैसा जाननें में आवे वैसा बोले. परंतु दुःखदाई न बोले. जिससे वचन सिद्ध होवें. (३) 'अस्तय'=दूसरेकी वस्तु बिन आज्ञा अनुचित रीतसे गुप्त ग्रहण न करे जिससे सर्व इच्छित मिले. (४) 'ब्रह्मचर्य'=कामका उदय न होवें ऐसा आचरण रक्खे जिससे शरीरका और बुद्धीका बल बढे. (५) 'अपरिग्रह'=किसीभी वस्तुपे राग (प्रेम) द्वेष न करे, जिससे जन्मान्तरका त्रीकालका ज्ञान प्राप्त हो.

२ "शौच संतोष तपस्वध्यायेश्वर प्रणि धनानि नियमाः"

अर्थ—नियमकेभी ५ प्रकार हैं (१) शौच*=बाह्यमें तो स्नान

---

* श्लोक—सत्य शौचं तप शौच शौचं मिन्द्री निग्रह,
सर्व प्राण भूत दया शौचं जल, शौचंतु पंचमः॥
अर्थ—सत्य बोलनेसें, तप करनेसे, इन्द्री निग्रहसे, प्राणीयोंकी दया से और जल (पाणी) से सुची होती है.

दिशा शांतीकी प्राप्ती होती है. इन्द्रीयोंके विषय उसके चितको अकर्षण कर सक्के नहीं है. मोह निद्रा स्वभाव से समय २ नष्ट होती, सर्व क्षय जाती है. और ध्यान निद्रा (समाधी)की प्राप्ती होती है. इस तरेसे

दुर्गंध व अशुची से निवृते, और अभ्यंतर§ छ रिपुको अलग रक्खे, जिसस संसर्गी को घृणा न होवें और अभ्यंतर शुचीसे मन निर्मल होवें: (२) संतोष=प्राण रक्षण के लिये अन्न वस्त्रादी जो आवश्यक है उससें अधिक इच्छा न करे. जिससे निर्दोष सुखी होवे. (३) 'तप'=क्षुधा त्रषा, शीत, उष्णादी सहे धर्माचरण सद्गुण आचरण करे, जिससे ऋद्धी सिद्धीकी प्राप्ती होवें. (४) 'स्वध्याय'=शास्त्र पठन या प्रणव (ॐ) का जप करे, जिससे इष्ट देव प्रसन्न हो इच्छित कार्य करें. (५) 'प्रणिधान'=इश्वरमें सब भाव समर्पण करे. जिससे समाधी भावको प्राप्त होवे.

(३) 'स्थिर सुख मानसम्'=जिस आसनसे सुख हो व शरीर और मन स्थिर रहे वोही आसन श्रेष्ट है, जिससे चितकी एकाग्रता हो. (४) 'तास्मिन्सति श्वास प्रश्वास योगति विच्छेद: प्राणायाम'=श्वास और उश्वास को रोकना सो प्रणायाम; इससे आयुष्यकी वृधी होती है. ज्ञानका आवरण दूर हो, आत्म जोती

श्लोक—अशुची करुणा हीनं, अशुची नित्य मैथुनं,
अशुची परद्रव्ये षू अशुची परनिंदा भवेत्.

अर्थ—दया रहित, नित्य मैथुन सेवने वाले, चोरी करने वाले, और निंदक सदा अशुद्ध अशुची है.

§ काम क्रोध मद मोह लोभ मत्सर, इनको हृदयमें प्रवेश नहीं करनें दे.

शुद्ध ध्यानमें प्रवृतते जीवकों महा प्राक्रम प्रगटता है. वितराग दिशाकों प्राप्त होता है. उसवक्त ध्याताको मुक्ती सुखका अनुभव ह्यांही (इस लोकमें) होने लगता हैं. ऐसी प्रबल शक्तीके धारन करनें वाला ये विधी युक्त ध्यान हैं.

यह क्षेत्रादी ८ प्रकारकें शुद्धाशुद्ध ध्यान साधनोंमेंसे अशुद्धको त्याग शुद्धको ग्रहनें वाले ध्यान ध्यानेंकी योग्यताको प्राप्त हो सकेंगे.

प्रदिप्त होती है. (५) 'स्वा ष्या ऽसं प्रयोगे चितस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार'=साधनसे शब्दादी विषयों जो साधारण चितको प्रवृतता है. उसका निरुंधन कर ध्येय पदार्थमें स्थिर करे सो प्रत्याहार, इससे मन स्वाधीन स्वतंत्र हो जाता है. (६) 'देशबंधश्चितस्य धारणा'=फिरते हुये चित (मन) को रोक इष्टमें एकाग्रता करे सो धारणा. (७) 'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम'=धारणा के पश्चात ध्यान होता है. जिसकी धारणा करी उसमें तन्मय—अभिन्न होवे सो ध्यान (८) 'तदेवार्थ मात्र निर्भासं स्वरूप शुन्य मिव समाधिः'=ध्यान पीछे समाधी होती है. समाधीमें भान भूल जाते हैं. " त्रयमेकत्र संयमः=यह तीनही एकत्र होनेसे संयम होता है.

---

* ध्यानमें जिस वस्तुकी चिंतवन करता है. उसका भान रहता है. समाधीमें भान भूल केवल ध्येय दिखता हैं.

परम पूज्य श्री कहान जी ऋषिजो महाराजके सम्प्र-
दायके बालब्रम्हचारी मुनी श्री अमोलख ऋषि
जी रचित ध्यानकल्पतरू की शुभध्यान
नामे उपशाखा समाप्तं.

तृतीयशाखा-"धर्मध्यान"

सुत्र—धम्मे झाणे चउव्विहे
चउप्पडयारो पन्नंत तंज्जहा.

अर्थ—धर्म ध्यानके चार पाये, चार लक्षण, चार आलंबन, और चार अनुप्रेक्षा, यों १६ भेद श्री भगवंतनें फरमाये हैं, सो जैसे हैं वैसे ह्यां कहते हैं.

जैसे पहले अशुभ ध्यानके दो भेद (आर्तध्यान और रौद्रध्यान) किये, तैसे शुभध्यान के भी दोही भेद जाणना. १ धर्मध्यान और २ सुक्लध्यान, इनका वर्णन अब आगे चलेगा.

पहले उपशाखामें शुभध्यान करने की विधी बताइ. अब ह्यां ध्यानस्त हूये पीछे, अच्छा जो विचार करना सो कहते है. अच्छे विचार दो तरह से होते है. १ एकांत कर्मोकी निर्जरा कर, सर्व कर्मेंकों नष्ट कर, मोक्ष रूप फलका देने वाला, उसे सुक्लध्यान कहते है.

इसका बयान आगे किया जायगा. और २ जो विशेष अशूभ कर्मका नाश करने वाला. तथा किंचित शुभ कर्म का भी नाश करने वाला. निर्जरा और पुन्य प्रकृतीका उपराजन करे सो धर्म ध्यान, इसका वरणन ह्यां करता हूं.

प्रथम प्रतिशाखा-धर्मध्यानके 'पाये'

सुत्र आणा विजय, आवाय वीजय,
विवाग वीजय, संठाण वीजय.

अर्थ—धर्म ध्यान के चार पाये, १ आज्ञा विचय, २ अपाय विचय, ३ विपाक विचय, और ४ संठाण विचय.

जैसे तरु (वृक्ष) की चिरस्थाइ के लिये. पाया (जड) की मजबुताइ की जरूर हैं. तैसे ही ध्यानको स्थिर करने के लिये, चार प्रकारके विचार करते हैं. १ श्री भगवंत ने इस जीवके उद्धारके लिये, हेय (छोडने योग्य) ज्ञेय (जाणने योग्य) और उपादेय (आदरने योग्य) क्या क्या हुकम फरमाया; उसका विचार करे सो आज्ञा विचय धर्मध्यान. २ यह जीव अनंत कालसें क्यों दुःखी है, यह दुःख दूर कायसे होते हैं? ऐसा विचार करना सो अपाय विचय धर्म-

ध्यान, ३ कर्म क्या हैं कैसे उत्पन्न होते हैं और क्या क्या फल देते हैं? यह विचार करेसो विपाक विचय धर्म ध्यान. और ४ जिस जगत् में, इस जीवको परिभ्रमण करते अनंत काल वितिक्रंत होगया, उस जगत का कैसा आकार है. यह विचार करेसो संठाण विचय धर्म ध्यान,

इन चारहीका विस्तार से वर्णन आगे कहते है.

प्रथम पत्र 'आज्ञा विचय'

"आज्ञा विचय" धर्म ध्यानके ध्याता ऐसा ध्येय (विचार) करेकी, इस विश्वमें रहे हुये, बहोतसें जीव आत्म कल्याण की इच्छा करते हैं, वो आत्म कल्याण एक श्री जिनेश्वर भगवानकी आज्ञामें, प्रवृत ने (चलने) से ही होता हैं. श्री जिनेश्वर भगवानकी आज्ञामेंही रहके साधू श्रावक जो करणी करतें है, वो करणी ही आत्म कल्याणकि करने वाली हैं. आज्ञासें ज्यादा, कमी, और विप्रित श्रधान करे, वोही मिथ्यात्व की गिनतीमें हैं. इस लिये श्री जिनेश्वर भगवान की आज्ञा क्या है? उसका अव्वल विचार करनेकी, बहुत अवश्यकता (जरूर) है, श्री जिनेश्वर भगवान, सर्व ज्ञाता (केवल ज्ञान) को प्राप्त हो. अधो (नीचा)

मध्य (बिचला) उर्ध (उंचा) तीनही लोकमें. भूत(गया) भविष्य (होनेवाला) और वृतमान (वर्ते सो) इन तीनही कालमें, जीव और पुद्गलकी अनंतानंत पर्यायोंका, जो परावृतन (पलटा) हो रहा है, उनका प्रकाश किया. तबही अपन उनके हुकमसें जगत् के चराचर (चल स्थिर) पदार्थोंके कौविद (जाण) हुये हैं. और अगोचर (बिन देखे) पदार्थोंके गुण और पर्याय इत्ने सुक्ष्म-अग्राही है की अपन तो क्या, परन्तु बडे २ चार ज्ञानके धारी, द्वादशांग के पाठी, महा मुनीवरों केही ग्रहाज (लक्ष) में आनें मुशकिल होते है. जो पदार्थ अपनें समजमें नहीं आते है, तो भी उन्हे अपन शास्त्रादीमें पढके सत्य मानते हैं. यह निश्चय अपनकों श्री तीर्थेश्वर भगवानकी आज्ञाके मानने सेही हुवा है; क्यों कि अपन निश्चयसे समजते हैं कि श्री वितराग देव राग द्वेष रहित हैं, उन्हे किसीकाभी पक्ष नहीं है, की वो कधी अन्यथा (झूट) बोले. श्री सर्वज्ञ प्रभूनें कैवल्य ज्ञानमें जैसा देखा वैसा फरमाया, वो सर्व सत्य हैं.

श्री जिनेश्वर भगवाननें जो जो फरमाया है उसमेका कूछ आवश्यकिय ज्ञान ह्यां श्लोक करके कहते

श्लोक

सुत्रार्थ मार्गणा महावृत भावनाच्च,
पञ्चेंन्द्रियोप शमता ति दयाद्र भाव:;
बन्ध प्रमोक्ष गमना गति हेतु चिन्ता,
ध्यानतु धर्म्य मिति तत्प्रवदान्ति तज्ज्ञ:.

सागर धर्मामृत.

अस्यार्थ—सुत्रोंका अर्थ, जीवोंकी मार्गणा, महावृत, भावना, पांच इन्द्रियों दमनका विचार, दयाद्रभाव, कर्मसे बन्धनका, और छुटनेके उपाय—का विचार, चार गति और ५७ हेतूकी चिंतवना, इत्यादि विचार करे उसे धर्म ध्यानका ध्याता श्री तत्वज्ञ प्रभूनें फरमाया हैं.

ध्यान कर्ताको श्रुतज्ञानकी अव्वल आवश्यकता हैं; इस लिये पहले ह्या श्रुतज्ञान वरणव करते हैं.

"सुत्रार्थ"

गाथा

सुदकेवलं च णाणं, दोणी त्रि सरिसा
णि होति बोहादो. सुदणाणं तुपरो-
रकं, वच्चरकं केवल णाणं.

गोमठसार

अर्थ—श्रुत ज्ञान और केवलज्ञान दोनों बरोबर हैं. फरक इत्नाही की श्रुत ज्ञान तो परोक्ष हैं. और केवल ज्ञान प्रतक्ष हैं. क्यों कि- केवली भगवानने जो जो भाव केवल ज्ञानमें जाणे हैं, वो

सर्थ (प्रकाशे उत्ले) श्रुत ज्ञान करकेही श्रोता गणको समजा सके हैं, और केवलीके बचनसेही नर्क श्वर्ग जावत् मोक्ष तक की रचना छद्मस्त जाणते हैं, वो भी श्रुत ज्ञान ही हैं. "सयंभू रमण समुद्रसेभी अधिक गंभीर; लोकालोक सेभी बडा. सर्व पदार्थोंके अतिरिक्त कोट्यान सूर्यसेभी अधिक प्रकाश कर्ता श्रुत ज्ञान हैं. श्रुतज्ञानको *द्वादशांग, और चार ‡अनुयोग करके तथा †अंग, §उपांग, ‖छेद, %मूल, और अनेक

---

* आचारांग, सुयगडायंग, ठाणायंग, समवायंग, भगवती. ज्ञाता, उपशकदशांग, अंतगडदशांग, अणुत्तरोव वाइदशांग, प्रशन्न व्याकरण, विपाकसूत्र, और द्रष्टीवाद, यह द्वादशांग. ‡ प्रथम चरणानुयोग, जिसमे आचारका कथन जैसे आचारंगादी शास्त्र. द्वितिय गणितानुयोग- गणित (संख्या) के शास्त्र जैसे चंद्रप्रज्ञाप्तीआदि शास्त्र, तृतिय धर्मकथानुयोग सो कथाके शास्त्र जैसे ज्ञाताजी आदि शास्त्र और चथुर्थ द्रव्यानुयोग जो स्ति धर्मआदि षटद्रव्यका विचार तैसे सुयगडायंगजी आदी शास्त्र, यह चार अनुयोग. † आचारांग आदी दुवादशांगके नाम कहे उसमेंसे अभी इस कालमें दृष्टीवादांगका अभाव हैं इस लिये ११हो अंग गिणे जाते हैं. § उपांग १२, उववाइ, रायप्रसेणी, जीवाभिगम पन्नवणा; जम्बूद्विपप्रज्ञाप्ती. चंद्रप्रज्ञाप्ती सूर्यप्रज्ञाप्ती. निरियावलिका, कप्पिया, पुप्फिया, पुप्फचुलिया, वन्हिदशा यह १२ उपांग ‖ विवहार. वेदकल्प नशीत. दशश्रुतस्कंध, यह ४ छेद. % दशवैकालिक उत्तराध्ययन नंदी. अनुयोगद्वार ए ४ मूल

प्रकीर्ण ग्रन्थों करके बिस्तिरत कियागया हैं. अनेक चमत्कारिक विद्याका सागर हैं. यह शब्दों करके अ-वर्णिय हैं. बडे २ विद्वान भी इसका पार नहीं पासक्ते हैं. श्रुत ज्ञानही सच्चा तीर्थ हैं, की जिसमें पापका लेशभी नहीं है. और इसमें स्नान करनेसे, बडे २ पापात्मा पवित्र हो गये है. येही जगत् जंतूओंके उद्धार करने सामर्थ्य है, योगीयोंका तीसरा नेत्र हैं. इत्यादी अनेक गुणों करके प्रतिपूर्ण भरा हुवा श्रुत ज्ञान हैं. इसको अभ्याससें प्राप्त करनेमें धर्मध्यानीकों बिलकूल ही प्रमाद नहीं करना चाहिये.

"मार्गणा."

गइ इंदीए काए, जोए वेए कसाय नाणेय,
संजम दंसण लेसा, भव सम्मे सान्नि आहरे.

तृतीय कर्म ग्रन्थ.

अर्थ—गति, इन्द्री, काया, जोग, वेद, कषाय, ज्ञान, संजम, दर्शण, लेशा, भव्य. सम्यक्त्व, सन्नि असन्नि, अहारिक अनाहारिक. यह १४ मार्गणा. अब आगे जो जो कथन चलताहै, वो सब पिछे कहे हुये श्रुत ज्ञान के पेट में समजना, मार्गणाका ज्ञान अतीही गहन हैं. इसके विचारसे ज्ञान

में अच्छी स्थिरता रहनेका संभव है. इसलिये ह्यां मार्गणा कहते हैं.

१ "गति" गति उसे कहते है की जिसमें गतागत (आवागमन) करे, वह गती ४ है. (१) 'नर्क-गति' जो अधो (नीचे) लोकमें ७ दुःखमय स्थान है. (२) 'तिर्यंच गति' जो एकेंद्री सूक्ष्म तो सर्व लोक व्यापी है और बादर एकेंद्री तथा बेन्द्रीसे पचेन्द्रीय प्रयंत पशू (जानवर) जीव है. (३) 'मनुष्य गति' जो तिरछे लोकमें कर्म भूमी अकर्म भूमी मनुष्य जीव है. (४) 'और देव गति' जो पातल (नीचे) लोकवासी भवन पति, बाणव्यंतर, देव, तिरछे लोकमें चंद्र सूर्यादी जोतषी देव, और उर्द्ध (उचे) लोकवासी, कल्पवासी, १२ स्वर्ग (देवलोक) में रहे वह, कल्पातीत सो ९ ग्रीवेग और 'अनुत्तर विमान वासीदेव. यह चार गति. और पंचमी मोक्षको भी गति कहते हैं परंतु वहां गये पीछे पुनरावृत्ती (आना) नहीं है.

२ "इंद्रिय" इन्द्रिय उसे कहते हैं. जिससे जीवकी जातीकी समज होए. वह इन्द्रिय ५ है (१) 'एकेंद्रीय' जो पृथव्यादिक एक स्पर्स्य इन्द्रियवाले जीव. (२) 'बेंद्रिय' जो किटकादिक स्पर्स्य और [illegible] जीव (३) 'तेंद्रिय' जो यका (ज्यं)

दिक स्पर्स्य रस और घ्राण इन्द्रिय वाले जीव. (४) 'चौरिंद्रि' जो माक्षिकादिक स्पर्स्य, रस, घ्राण, और चक्षू इन्द्रिय वाले जीव. (४) और 'पचेंद्रिय' जो मच्छादि जलचर, (पाणीमें रहे) पशू (पृथवीपे रहे) गायादी स्थलचर, हंसादी पक्षी खेचर, (आकाशमें उडे) तथा नरक मनुष्य और देवता स्पर्स्य, रस, घ्राण, चक्षु और श्रोतेंद्रीवाले जीव. इन सिवाय *अनेंद्री जीव केवली भगवानकों और सिद्ध भगवानको कहते हैं.

३ "काए" काया, सरिरको कहते हैं, वह जीवयुक्त काया ६ हैं- (१) 'पृथ्वी काय' (मट्टी) (२) 'अपकाय' (पाणी) (३) 'तेउकाय' (अग्नी) 'वाउकाय' (वायू-हवा) (४) 'वनास्पति' (सबजी-लीलोत्री) [यह पांच एकेंद्री हैं] और (६) 'त्रसकाय' (हलते चलते बेंद्रीय से लगा पचेंद्रिय पर्यंतके जीव).

४ "जोए" जोग-दूसरेसें सम्बन्ध करे वह जोग ३ हैं. (१) 'मन योग' (अंतःकरणका विचार) (२) 'वचन योग' (शब्दउच्चार)(३) 'कायायोग' (प्रतक्षसरीर)

५ "वेए" वेद विकारका उदय वह वेद ३

---

* केवल ज्ञानीने अनंत कालके शब्दादी विषयको पहलेही जान रखे हैं इस लिये उनके कर्णादी अव्यय रुप हैं उनके विषयसें उन्हें कुछ प्रयोजन नहीं हैं.

(१) स्त्री, (२) पुरुष, (३) नपुंसक.

६ "कसाय" कषाय संसारका कस्स[रस] आके आत्माके प्रदेशपे जमे वह कषाय ४ [१] क्रोध, [गुस्सा] [२] 'मान' [अभीमान] [३] 'माया' [कपट] [४] 'लोभ' [तृष्णा] .

७ "नाणे" ज्ञान—जिससें पदार्थको जाणे वह ज्ञान ८ हैं. [१] 'मति ज्ञान' [बुद्धी] [२] 'श्रुती ज्ञान [शास्त्रस्मबंधी] [३] 'अवधी ज्ञान' [रुपी सर्व पदार्थ जाणे] [४] 'मन पर्यव ज्ञान' [मनकी बात जाणे] [५] 'केवलज्ञान' [सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव जाणे] [यह ५ ज्ञान—सम्यक द्रष्टीकों होते हैं.]

[६] 'मति अज्ञान' [कुबुद्धी] २ 'श्रुती अज्ञान' कुशास्त्राभ्यास ३ 'विभंग ज्ञान' [उलटा जाणे] [यह ३ अज्ञान मित्यात्व द्रष्टीको होते हैं.]

८ "संजम" संयम—कूकर्मोंसे आत्मा का निग्रह करना रोकना वह संमय ७ हैं. १ 'अवृति' (जिस सम्यक द्रष्टी ने मिथ्यात्वसे आत्माको बचाइ) २ देशवृति श्रावक ३ सामाइक देशसें श्रावकका और जाव जीव साधूकी) ४ छे दोपस्थापनिय (दोपसें निवारनेवाला) ५ परिहार 'विशुद्धी' (शुद्ध चारित्र) ६ 'सुक्ष्मसंपराय' (थोडा लोभविगार सब दोष रहित) ७यथा-

ख्यात (सर्वथा दोषरहित)

९ "दंसण" दर्शन—देखे या दरशे सों दर्शन ४ हैं. १ चक्षू दर्शन, (आखोंसे देखे) २ अचक्षुदर्शन आंखविना चार इन्द्रिसे और मनसे दरशे) ३ अवधी दर्शन. (रुपीपदार्थ दुरके देखे) और ५ केवल दर्शन (सर्व द्रव्य. क्षेत्र, काल भाव देखे दर्शे)

१० "लेसा" कर्मसे जीवको लेशे (लेप चडावे- वह लेशा ६ हैं. १ 'कृष्ण लेशा' महा पापी २ नील लेशा' अधर्मी ३ 'कापूलेशा' वक्रस्वभावी, धीठ ४ 'तेजूलेशा न्यायवंत ५ 'पद्मलेशा' धर्मात्मा ६ 'सुक्ललेशा मोक्षार्थी और अलेशी अयोगी केवली व सिद्ध भगवत'

११ "भव" संसारमें जीव दो तरहके हैं; १ भव्य वह मोक्षगामी. और २ 'अभव्य' वह कदापि मोक्ष न जाय. (नो भव्याभव्य सिद्ध भगवंत.)

१२ "सन्नि" संसारमें जीव दो तरहके १ 'सन्नि वह ज्ञान व मन युक्त; मातापिताके संयोगसे उत्पन्न होये सो, मनुष्य तिर्यंच और देवता ओं तथा नेरिये. और २ 'असन्नी' वह पांच स्थावर, तीन विकलेंद्री और समुछिम माता पिता विन हुये मनुष्य, तिर्यंच, पचेंद्री. (नो सन्ना सन्नी सिद्ध भगवंत)

१३ 'सम्मे' यथार्थ पदार्थ की श्रद्धा वह सम्य-

क्त्व ७ हैं. १ 'मिथ्यात्व' बाह्या श्वरूप मिथ्यात्वका. और अन्दर समकित पावे सो. २ 'सास्वादानीय'=लें श मात्र धर्म श्रधके, पडजायसो. ३ 'मिश्र'=श्रधाकी गडबड. ४ 'क्षयोपशमिक'=मोह कर्मकी प्रकृती, कुछ क्षयकरी और कुछ उपशमाइ ढांकी) ५ 'औपशमिक मोहकी प्रकृती उपशमाइ. ६ 'वेदिक' प्रकृती बेदे (यह क्षायिकके पेलह क्षण मात्र होती है) ७ क्षायिक मोहकी प्रकृतिंयों क्षय करे.

१४ "आहारे" आहार करे वह आरिक, और मार्ग वहता (एक सरीर छोड दूसरे सरीरमें जाता) तथा मोक्षादिकके जीव अन–आहारिक.

यह १४ ही मार्गणा तो अर्थकी सागार हैं, परन्तु ग्रन्थ गौरव के लिये ह्यां संक्षेपमें चेताया हैं. ध्यानी इने विस्तारसें चिंतवन करेंगें.

"महाव्रत"

महाव्रत=बडे व्रत, जैसे तालाबके नाले रोकनेंसे, तलावमें पाणी आना बंद हो जाताहै. वैसेही वृत-प्रत्याख्यान (पच्चखाण) करनेसे जगतका पाप बंद हो जात्ता है.

श्रावकके वृतकी अपेज्ञासे बडेसो साधूजीके

पंचमहा-वृत,

ध्यानी जन बहुत करके महावृती होतें हैं. इस लिये उन्हे अपने वृतोंपें. ध्यान देनेकी बहुतही जरूरहै.

१ "सव्वं पाणाइ वायाउ वेरमणं"=अर्थात त्रस, स्थावर, सुक्षम, बादर, सर्व जीवोंकी हिंशासें त्रिविध २* सर्वथा निवृते. (सर्वथा हिंशा त्यागे).

२ "सव्वं मुसं बायाउ वेरमणं"=अर्थात्-क्रोधसे, लोभसे, हंसिसे, और भयसे, सर्वथा त्रिविधे २ मृषा (झूट) बोलनेसे निवृते.

३ "सव्वं अदिन्नं दाणाउ वेरमणं"=अर्थात थोडी, बहुत, हलकी, भारी, सचित (सजीव) और अचित (निर्जीव) इनकी सर्वथा प्रकारे त्रिविध २ चोरीसे निवृते.

४ "सव्वं मेहूणाउ वेरमणं"=अर्थात देवांगना की मनुष्यणी. और तिर्यंचणी, इत्यादी मैथुन सेवनेसे सर्वथा प्रकारे त्रिविधे २ निवृते.

५ "सव्वं परिगाहाउ वेरमणं" थोडा, बहुत, हलका, भारी. सचित, और अचित, इत्यादि परिग्रह सें सर्वथा प्रकारे त्रिविध २ निवृते.

---

* करे नहीं मनसे बचनसे कायासे. करावे नहीं मनसे वचन से कायासे. अच्छा जाने नहीं मनसे, वचनसे, कायासे ये ९ कोटी

[छट्टा, सव्वं राइ भोयणं वेरमणं" अन्न, पाणी, मेवा मिठाइ, और मुखवास (तंबोलादी) इत्यादी अहार रात्रीको सर्वथा प्रकारे त्रिविध २ नहीं भोगवें] ध्यानी इन महावृतोंको इनकी भावना भांगे तणावें सहित चिंतवन करनेसे अपने कृतव्य प्रायण होंगे.

१२ "भावना."

१ "अनित्य भावना"- द्रव्यार्थिक नयसें, अविन्याशी स्वभावका धारक जो आत्मद्रव्य हैं. उससे भिन्न (अलग) रागादी विभाव रुप कर्म हैं. उनके स्वभावसे ग्रहण किये हुये. स्त्री पुत्रादी सचेतनद्रव्य, सुवर्णादी अचेतन द्रव्य, और इन दोनोंसे मिले हुये मिश्र द्रव्य, जो हैं सो सर्व अनित्य, अध्रव, विनाशिक हैं. ऐसी भावना जिनके ह्रदयमें रमती हैं, उनका सर्व अन्यद्रव्योंपरसे ममत्वका अभाव होजाता हैं (जैसे वमन किये हुये पै से ममत्व कमी होता हैं.) वो महात्मा अक्षय, अनंत, सुखका स्थान, जो मोक्ष उसे पाते हैं.

२ "असरण भावना"—इस आत्माकों, ज्ञान दर्शन, चारित्र, तथा अरिहंतादी पंच प्रमेष्ठी छोड, अन्य

तंत्रादि कोइभी, सरण—आश्रय देनेवाले नहीं है. यथा द्रष्टांत—(१) जैसे हिरणके बच्चेको सिंहनें ग्रहण किया. उसे छोडाने सामर्थ दूसरा हिरण नहीं होताहैं. (२) तथा समुद्रमें झाजमेंसे पडे हुये मनुष्यको कोइ आश्रयभूत नहीं होता हैं; तैसे. ऐसा जाननेवाले परद्रव्यसे ममत्व उतार, एके-निजस्वभाव—निजगुणकाही आलंबन करेंगे; वोही निजात्म स्वरूप—सिद्ध अवस्था कों प्राप्त होंगे.

३ “संसार भावना”—इस संसारमें, जित्ने द्रव्य हैं, उन सबको. ज्ञानावरणियादी अष्ट कर्मके योगसे; तथा शरीर पोषणेके लिये. अहार पाणी यादीसे तथा श्रोतादी इन्द्रियोंसे, अपने जीवने अनंतवार ग्रहण किये और छोडे, इसे द्रव्य संसार कहना. तथा (२) असंख्य प्रदेशसें व्याप्त यह लोक हैं, उनमेसें एकेक प्रदेशपे. यह जीव अनंत वक्त जन्मा और मरा, यह क्षेत्र संसार हैं. (३) तथा सर्पणी और उत्सर्पणी काल २० कोटा-कोटी सागरका हैं, उसके एकेक समयमें इस जीवने जन्म मरण किये, यह काल संसार. (४)और क्रोधादी ४ कषायके मनादी त्रियोगके जो प्रकृत्यादी बन्धके भाव हैं, उन्हे अनंत वक्त ग्रहण कर२ के छोडदिये. यह भाव संसार, ऐसे ४ प्रकारके संसारमें

यह जीव अनादि कालसे परिभ्रमण करता थका नहीं. अब इस भ्रमणसें निर्वृत संसारकी घ्रणा लावेगा, वोही मोक्ष पावेंगा.

४ "एकत्व भावना"— इस जीवकों सहजानंद (स्वभावसे होता) सुखकी सामुग्री देनेवाला. अनंत गुणका धारक कैवल्य ज्ञान हैं. वोही आत्माका सहज सरीर हैं; वोही अवीन्याशी हित कर्ता है. और द्रव्य सज्जनादी कोइभी हितकर्ता नहीं हैं. क्यों कि अन्यपदार्थ, मनको विकल्प उपजाते है, और अनेक प्रकारका दुःख देते है. ऐसा जान सर्व बाह्यवस्तुओंसे ममत्व उतार, एक आत्मापेही जो द्रष्टी जमावेगा. वोही आत्म तत्वकी खोज कर निजानंद—सहजानंद सुखको प्राप्त होगा.

५ "अन्यत्व—भावना" जगत्में रहे हुये कित्नेक सजीव पदार्थोंको कुटुम्ब समजते हैं. और कित्नेक अजीवको सहायक मानते हैं. परंतु वो सर्व कर्माधीन और कर्ममय हैं. वो बेचारे आपही सुखी होने सामर्थ्य नहीं हैं; तो अपनेको क्या सुख देगे. वो अपनेही विनाशसे बच नही सक्ते हैं, तो अपनेको क्या बचायंगे. इत्ने काल जो इस जीवने संसारमें दुःख पाया, वो सब उन्हीका प्रशाद

हैं. ऐसा निश्चय करके हे जीव ! अन्य सर्व पदार्थ अलग हैं. और मैं शुद्ध चैतन्य अलग हुं. यह मेरे नहीं मैं इनका नहीं. ऐसा विचारता सर्व द्रव्यसे अलग हो, अपने निज स्वरूपको प्राप्त कर सुखी होवे.

६ "अशुची-भावना," इस सरीरको शुची करने, कित्नेक असंख्य अपकाय(पाणी)के जीवोंका बध करतेहैं, सो भिष्टाके घटको शुची करने जैसा करते हैं. देखीये यह सरीर रुद्र और शुक्रके संयोगसे तो उत्पन्न हुवा हैं. दुग्ध, और भिष्टाके क्षातसे उत्पन्न हुये पदार्थोंके भक्षणसे वृधी पाया, और जिन पदार्थोंकी इस सरीमें वृधी हुइ वोभी अशूची हैं. इस सरीके संयोगसे सुची पदार्थ अशूची होतें हैं. सुर्भिगंधी दुर्गंधी होते हैं. परशंसनिय, निंदनिय होतें हैं. मनहर दुगंछनिय होते हैं. बहूत कालसे सप्रेम संग्रह करके रखे हुये पदार्थ इस सरीरका सम्बध होतेही, उकरडीपे डालने जैसे वन जाते हैं !! और इस सरीरमेंसे निकलते हूये सर्व पदार्थ, घ्रगाको उत्पन्न करते हैं. ऐसे इस सरीरमें प्रेम उत्पन्न करने जैसा कोनसा पदार्थ हैं? परन्तु मोहमधमें छके हुये जीव अशुचीकोंही प्राण प्यारे बनातें हैं. इससे और ज्यादा अज्ञान दिशा कोनसी? उनकेही सरीरके. उनको प्यारे लगते पदार्थ, सरीरसे अलग कर

उनहीके हाथमें देके देखीये. वो कैसा प्यार करते हैं. इत्यादि विचारसे अशुची सरीरपेसें ममत्व त्याग, इस सरीरके अन्दर रहा हुवा जो आत्मा (जीव) परम पवित्र ज्ञानादी रत्नोका धारक हैं. उसें अशुचीमय कराग्रह (केदखाने) से छुडानेके लिये ब्रम्हचार्यादी पवित्र वृतोंको धारण कर, परम पवित्र शिवस्थानका वासी बनावो.

७ "आश्रव-भावना" जैसे सछिद्र नाव पाणीमें डूबती हैं. वैसेही मिथ्यात्व, अवृत, प्रमाद, कषाय, इन पाप रूप पाणी, शुभाशुभ जोग रुप छिद्र करके, आत्मरूप नावमें प्रवेश कर, संसार रुप समुद्रमें आत्माको डुबाता हैं. ऐसा जाण आश्रावको छोडके आत्मा को संसार समुद्रसे तारनेका उपाय करे.

८ "संवर-भावना" अश्रव तत्वमें आत्माकों डूबाने वाले बताये. उनको रोकनेका उपाय, सों संवर सम्यक्त्व, वृत, अप्रमाद, अकषाय, और स्थिरयोग है. इनसे रोक, ज्ञानादी रत्नत्रय रुप अक्षय निधीके साथ संसार समुद्रके किनारे, मोक्ष रुप पट्टन हैं, उसे प्राप्त करे.

९ "निर्जरा-भावना" जीवका स्वभाव तो मोक्षमें जानेकाही है; परंतु अनादी सम्बंधी कर्म रुप वजनसे दबकर जा नहीं सक्ता हैं. जैसे तुम्बेका स्वभाव

तो पाणीके उपरही रहनेका होता हैं; परन्तु उसपे को इ मट्टीके और सनके ८ लेप लगाके, सुकाके, पाणीमें डाले तो तुर्त पातलमें बेठ जाताहै: फिर पाणीके संयोगसे उसके लेप गलने से वो उपर आताहै, तैसेही जीव रुप तुम्बा, अष्ट कर्म रुपये लेपकर, संसारमेंडुबरहाहै; उन लेपोंको गलाने, मुमुक्षुजन द्वादश (१२) प्रकार की तपस्या कर, कर्म लेपको गाल, संसारके अग्र भागमें जो अनंत अक्षय सुख मय मोक्ष स्थानहै, उसे प्राप्त करतेहै.

१० "लोकभावना" अनंतानंत आकाश रुप अलोकके मध्य भागेंम, ४४३ घनाकार राजू* जित्ने क्षेत्र में लोक हैं, लोककें मध्यमें १४ राजू लम्बी और १ राजू चौंडी त्रस नाल हैं. उसमें त्रस और स्थावर जीव भरे हैं, और बाकीका सर्व लोक एक स्थावर जीवहीसे भरा हैं. लोक के उपर अग्र भागमें सिद्ध स्थान हैं. जो जीव कर्म सें मुक्त होतें (छूटते) है; वो सिद्ध स्थान में विराजमान होते हैं. फिर वहां से कदापी चलाय

---

*३,८१,२७,९७० मण लोहेके एक गोलेको एक भार कहते हैं. ऐसे हजार गोलेका एक गोला बना. कोंइ देवता बहुत उपरसें छोडे, वो ६ महीनें, ६ प्रहर, ६ दिन, ६ घडीमें जित्ना क्षेत्र उल्लंघे सो एक राजु क्षेत्र.

मान नहीं होते हैं. सदा निरामय सुखमें लीन रहते हैं. हे आत्मा! उन स्थानको प्राप्त होनेका उपाय कर.

११ "बोध बीज दुर्लभ भावना"—ओर सर्व वस्तु प्राप्त होनी सहज है. परंतू बोध-बीज सम्यक्त्व रत्नकी प्राप्ती होनी बहुतही मुशकिल है; सो विचारीये. बोध बीज की प्राप्ती विशेष कर, मनुष्य जन्ममें ही होती है, "दुल्लाहा खलु माणुसा भवे" अर्थात मनुष्य जन्म मिलना बहुतही मुशकिल हैं. ९८ बोलकी अल्पाबहुतमें पहलेही बोलमे कहा हैं की—"सबसें थोडे गर्भेज मनूष्य" इस बोलकी सिद्धी करते है—३४३ राजूका संपूर्ण लोक जीवोंसे ठसाठस भरा है, बालाग्र जित्नीभी जगा खाली नहीं हैं. उसमें त्रस जीव फक्त १४ राजमें है. जिसमें ७ राजु नीचे नर्क और ७ राजू माठेरा (कुछकम) उपर स्वर्ग जिसके बीचमें १८०० जोजनका जाडा और १ राजू चौडा तिरछा लोक गिना जाता है; जिसमें असंख्य द्विप समुद्र है. उसमें ४५ लाख जोजन मेंही मनुष्य लोक गिना जाताहै. जिसमे. २० लाख जोजन तो समुद्रने रोकेहै. और कुलाचलों (पर्वतो) ने. नदीयोने बनो ने बहुत जगा रोकीहैं मनुष्यके तो फक्त १०१ क्षेत्रहैं.(इत्ने थोडे मनुष्य हैं)जिसमें फक्त १५ क्षेत्र कर्म भूमीके हैं. उसमें. भी आर्य भूमी कम हैं. जैसे भर्त

क्षेत्रके३२००० देशमें फक्त २५॥ देश आर्य हैं. ऐसे अन्य क्षेत्रोंमे भी आर्य भूमीकी नुन्यता है. और १५ क्षेत्रमें से फक्त ५ महा विदेह क्षेत्रमें तो सदा धर्म करणी का जोग रहता हैं. और भरत ऐरावत १० क्षेत्रोंमें दश क्रोडाक्रोडी सागर सरपणी कालमें फक्त १ क्रोडाक्रोडी सागरही धर्म करणीका होता हैं. सो प्राप्त होना बहूत मुशकिक हैं. ये भी मिलगया तो आर्य-क्षेत्र, उत्तम-कुल. दीर्घ आयुष्य. पूर्ण--इन्द्रीय. निरोगी-सरीर. सुखे उपजीविक, सद्गुरु दर्शन. शास्त्र श्रवण--मनन-निध्यासन. होके भी भव्य पणा. सम्यक द्रष्टिपणा. सुल्भबोधी, हलूकर्मी. स्वल्प संसारीपणा वगैरे जोग मिले, तव धर्मपर रुची जगे; और बोध बीज सम्यक्त्वकी प्राप्ती होवे. देखा! कितना दुल्भ बोध बीज मिलता हैं सो, हे भव्य जनो!! अत्यंत पुन्योदयसे अपन बहोत उंचे आये हैं. बोध बीज हाथ लगा हैं (तो अब इसे व्यर्थ न गमाते) आत्म क्षेत्रमें इस बीजको रख, ज्ञान जल (पाणी) से सींचन करो, की जिससे धर्मवृक्षलगे जो मोक्ष पल देवें.

१२ "धर्म भावना"—"धारयेति धर्म्म" पडते जीवको धर (पकड) रखे सो धर्म. "संसारंमी दुःख पउरए" संसार सागर महा दुःखसे भरा हैं. इसमें पडते

जीवको रोकके, मोक्ष स्थानमें पहोंचावे सो धर्म कहा जाता हैं. मोक्षार्थीको धर्मकी बहुत अवश्यकता हैं, वो धर्म कौनसा ? जैन कहे– "धम्मो मंगल मुक्कीठं, अहिंसा संजमोतवो" अर्थात मंगलकाकर्ता, सर्वसें उत्कृष्ट धर्म वोही है की जो- अहिंशा (दया) संयम (इन्द्रीय दमन) और तप करके संयुक्त होए. वेद कहते है- "अहिंशा परमोधर्मः" अर्थात् परमोत्कृष्ट धर्म वोही है की जहां अहिंशा (दया) ने सर्वांग निवास किया हैं. पुराण कहते हैं- "अहिंशा लक्षणो धर्मः अधर्मः प्राणी नां वधः" अर्थात अहिंशा (दया) है सो धर्मका लक्षण और हिंशा हैसो अधर्म हैं. कुरान कहते हैं. "फला तजअल्लुबुतन् कुम मकावरलहय वनात" अर्थात तूं पशू पक्षीकी कबर तेरे पेटमें मतकर. बाइबल कहते हैं– "दाउ शाल्ट नोट कील" (Thou shalt not kill) अर्थात् तूं हिंशा करे मत. इत्यादि सर्व शास्त्रोंमें धर्मका मूल 'दया' ही फरमाया हैं. दयाके दो भेद, १ परदया तो छे काय जीवकी रक्षा करना, और २ स्वदया सो अपनी आत्मांको अनाचीर्ण (कुकर्मों) सें बचाना, की जिससे अपणी आत्मा, आगमिक कालमें, सर्व दुःखसे छूट मोक्षके अनंत अक्षय सुखकी प्राप्ता करे.

यह १२ ही भावना, मुमुक्षु प्राणीयोंकों मोक्ष

गमन करते हुये पंक्तीये निसरणी रुप हैं.

"पञ्चेन्द्री योपशमता."

१ 'श्रोतेंद्री='कानका स्वभव जीव, अजीव, औ र मिश्रके शब्द ग्रहण करनेका हैं, इसके वशमें पड मृगपशु मारा जाता हैं. २ 'चक्षु इन्द्री'=आँखका स्वभाव काला-हरा-लाल- पीला और श्वेत, रुपको ग्रहण करनेका हैं, इसके वशमें पडके पतंग मारा जाता हैं. ३ 'घ्रणेंन्द्री'=नाकका स्वभाव सुर्भिगंध और दुर्भिगंध कों ग्रहण करनेका हैं. इसके वशमें पड भ्रम्रपक्षी मारा जाता हैं. ४ 'रसेंन्द्री'=जिव्हाका स्वभाव-खट्टा-मीट्टा-तीखा-कडू-कषायला, रसकों ग्रहण करनेका हैं. इसके वशमें पड मच्छी मारी जाती हैं. ५ 'स्परशेंद्री'=कायाका स्वभाव हलका-भारी-ठन्डा-उन्हा -लुक्खा-चिकना-कोमल-खरदरा स्पर्श्योंकों ग्रहण करनेका हैं. इसके वशमें पडके हाथी माराजाता है. अब जरा सोचीए, एकेक इन्द्रिके वश्यमें पडे, उनकी अकाल मृत्यू हुइ; तो जो पांचही इन्द्रिके वशमें पडे हैं. उनका क्या हाल होगा? कृतकर्मका बदला दुर्गतिमें जाके अवश्यही भोगवेंगे.

अज्ञानसें जीव दुःखरूप इन्द्रियोंके विषयमें सुख मा

नते है. यह अश्चर्य (तमाशा) भी तो जरा देखीये! [१] जो शब्द सुननेंसे सुखही होयतो गाली सुन संतप्त क्यों होते हैं, क्योंकि उत्पती और ग्रहण करनेका स्थान तो एकही है, और जो गालीयोको दुःख रूप मानते है वो स्नेही स्त्रीयोंकी गाली सुन खुशी क्यों होते है. [२] रूप देखके प्रसन्न होते हैं तो अशुची देख क्यों घ्रणा (दुगंच्छा) करते है. क्योंकि वोभी कोइ वक्त में चित को हरण करने वाला पदार्थ था! तथा आगामिक गालमें रूपान्त्र पाके मजा देनेवाला होजाता है. और सच्चीही अशुचीसे नाखुष होवे तो स्त्री सम्बन्ध अशुची के मथनमे क्यों मजा मानतें है. [३] दुगंध आनेसे नाक क्यों फिराना, क्योंकि वोभी एक तरहकी गंध हैं. रूपांत्र हो मनहर हो जाती हैं. और जो सच्चेही दुर्गंध से नाराज होते हो तो मृत्यु लोककी ५०० जोजन उपर दुगंध जातीहै, उसमें क्यों राचे है. [४] मन्योग-मधुर रस सेही जो सुख पाते है वो तो फिर हकीमसे क्यों कहे के शक्कर खाइ जिससे बुखार आगया, और घृत खाया जिससे खांसी होगइ. जो घृत शक्कर जैसे पदार्थ ही दुःख दाता हैं. तो फिर अन्यका क्या कहे. वैदक कहता है "रसमाणी ते रोगाणी" अर्थात रसका

भोग रोगकाही कारण हैं. फिर इसमें सुख कैसे मा-ने? ५ चित मुनीने ब्रम्हदत्त चक्रवृतसे कहा है-"सव्व आभरण भारा, सव्व काम दुहा वहा" अर्थात सर्व भूषण (गहणें) भार भूत हैं, और सर्व भोग दुःख दाता हैं, सो सच्चही हैं. जैसे सुवर्ण धातू हैं वैसा लोहा भी धातू हैं. राजाकी तर्फसें सुवर्णकी बेडीकी बक्षीस हुइ तो खुश होवे, हमें पांवमें पेहरने सोना मिला. और लोहेकी बेडीकी बक्षीस होनेसें रुदन करते हैं. इस विचारसे जाना जाता है, की भूषणमें सुख दुःख नहीं, माननेमेंही है! ऐसेही सर्व काम भोग दुःख दाता है, उनका नामही विषय भोग है; अर्थात जेहर खाना परन्तु; जैसे विष (जेहर) और विशेष 'य' प्रत्यय हैतो यह जेहरसेभी अधिक घाती है. भगवंतने फरमाया है कि "कामभोगाणुरयणं अनंत संसार" बढणं, अर्थात्— काम भोगमें रक्त रहनेसे, अनंत संसार बढता है. मतलबकी—विषत्तो एकही भवमें मारता है; और विषय भोग अनंत भवतक मारतें है, बडे २ विद्वानोंको और महा ऋषियोंको बावला बनादेता है. ऐसा दुरुधर जेहर है. विषय सुखकी इच्छा कर, भोगवते है, परन्तु क्या २ हानी होती है सो देखो, शक्ती, बुद्धी, तेज; स्तव,इनको नष्ट कर. अत्यंत लब्धतासे. सज्जाक आदी

रोगोंसें, सड, कीडेपड, मरके नर्कमें पोलादकी गर्मागर्म पूतलीके साथ गमन करते अक्रांद करते है. ऐसे दुःखके सागर विषयको सर्व सुख सागर माने वो शाणा कैसा. * इश तमाशेपे लक्ष दे, धर्म ध्यानी पंचन्द्रियके विषय भोगकी अभीलाशा रूप अज्ञानताको दूर कर, निर्विषयी-निर्विकारी-बन सुखी होते हैं.

'दया-द्र भावः'

श्री सुयगड़ांग सूत्रके द्वितीय श्रुतस्कंधके प्रथम अध्ययनमें भगवंतने फरमाया हैं.

सूत्र

तत्थ खलु भगवंता छ जीवनिकाय हेउपणंता तंजहा, पुढ़वी काए जाव तसकाए, से जहाणामए मम अस्सायं दंडेणवा अठीणवा. मुठीणवा, लेलूणवा, कवालेणवा, आउट्टिज्जमाणस्सवा, हम्ममाणस्सवा ताज्जिज्जमाणस्सवा. ताडिज्जमाणस्सवा. परियाविज्जमाणस्सवा. किलाविज्जमाणस्सवा. उद्दविज्जमाणस्सवा; जाव लोमुख्खणणमायमवि हिंशाकारगं दुख्खं भयं प-

---

* सवैया-दीपक देख पतंग जला. और स्वरशद्ब सुण मृग दुःखदाइ; सुगंधलेइ मरा भ्रमरा और, रसके काजमच्छी विरलाइ कामके काज खुता गजराज, यह परपंच महा दुःखदाइ; जो अम-

डिसंवेदेंभि; इच्चेवं जाण सव्वेजीवा, सव्वेसभूता, सव्वे पाणा, सव्वेसत्ता. दंडेनवा जाव कवालेणवा आउटिज्जमाणावा. हम्ममाणावा. तज्जिज्जमाणावा, ताडिज्जमाणावा, परियाविज्जमाणावा. किलविज्जमाणावा. उद्दविज्जमाणावा. जाव लोमुक्खणणमायमवि; हिंशाकारगं दुक्खंभयं पड़िसंवेदेंति. एवं नच्चा सव्वेपाणा जाव सत्ता णहंतव्वा. ण अज्जावेयव्वा. ण परिघेतव्वा; ण परित्तावेयव्वा; ण उद्दवेयव्वा; ॥श्री॥ से बेमी जेय अतिता. जेय पडुपन्ना. जेय आगामिस्सामि. अरिहंता भगवंता. सव्वेते एव माइक्खंति. एवं भासंति. एवंपरूवेंति सव्वे पाणा जाव सव्वे सत्ता ण हंतव्वा ण अज्जावेयव्वा. ण परिघेतव्वा; ण परितावेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा. एसे धम्मे धुवे, णीतिए, सासए. समिच्चलोगं खेयन्नेहिं पवेदेंति.

अर्थ,—द्वादश जातकी प्रषदामें भगवंत श्री तिर्थंकर देवने, निश्चयके साथ फारमाया हैकी; छे जीवकायोंकी हिंशा—कर्मबन्धका कारण है. वो छे जीवकायाके नाम कहतेहे, पृथवी. पाणी, अग्नी, वायू, विनस्पति, और त्रस, इनको दुःख देतें, जैसा दुःख होताहै वो ह्यां द्रष्टांत करके बतातें है. "जैसे ❀ मुजे असाता-

देव दंडेसे, हड्डीसे, मुष्टीसे, पत्थरसे, कंकरसे, मुजे मारते. तर्जना,-ताडना करते, परिताप उपजाते, दुःख दे-देते, उद्वेग उपजाते, या जीव काया रहित करते, जावत् सरीरपेका रोम (बाल) मात्रभी उखाडते. इन हिंशाके कारणोंसे जैसा दुःख और डर मेरेको होता है, ऐसाही जाणो-सब जीव (पचेंद्रीयों) को, सर्व भूत (विनास्पति) को, सर्व प्राणी (बेंन्द्री तेंन्द्री चौरिंन्द्री) को और सर्व सत्व(पृथवी, पाणी, अग्नी, वायु)कों दंडेसे मारतें जावत् कंकरसे मारते, अक्रोश, ताडन, तर्जन करते. परिताप उपजाते, किलामणा (दुःख) देतें— उद्वेग उपजाते. जावत् जीवकाया रहित करते रोम मात्र उखेडतेभी, इन हिंशाके कारणोंसे वो जीव दुःख और डर मेरे जैसाही मानते है—अनुभवते हैं." ऐसा जाणके सब प्राण, भूत, जीव, सत्वको मारना नहीं, दंडसे ताडना नहीं, बलत्कार जब्बर दस्तीकर पकडना नहीं. या किसी काममें लगाना नहीं. सरीरी, मानसीक दुःख उपजाके परिताप देना नहीं. किंचितही उपद्रव करना नहीं; और जीव काया रहितभी करना नहीं. ऐसा उपदेश गयेकालमें जो अनंत तिर्थंकर हुये वृतमान-कालमें जो विद्यमान है और आवते कालमें अ-

नंत तिर्थंकर होयंगे उन सबहीनें ऐसाही फरमाया है, संदेह रहि कहाहै ऐसा परुपा है, ऐसा उपदेश दिया है, की—"सर्व प्राण भूत जीव सत्त्वको, मारन ताडन, तरजन परिताप, करना नहीं, बंधनमें डलना नहीं, सरीरी मानसी दुःख उपजाना नहीं, जावत् जीव काया रहित करना नही, येही धर्म दया मय निश्चल है. नित्य है. शाश्वता (सनातन) हैं. इन बचनको विचारनाकी सब जीव बेचारे कर्मोंके वशमें हो दुःख सागरमें पडे है, उनके दुःखको जाणनेवाले खेदज्ञ. ऐसें श्री तिर्थंकर भगवानने फरमाया हैं. की सबकी दया पालो! रक्षा करो!!

गाथा—कल्लाण कोडिजणणी, दुरंत दुरियाखिग्गठवणी.
संसार भवजलतारणी, एगंत होइमिरिजीवदया-

अर्थ—क्रोडो कल्याणकों जन्म देने वाली. दुरदंत दुरित (पाप) के नाशकी करनेवाली, संत पुरुषोंके स्थान रूप. संसार महा सागर कों तारने नाव स

☞ दीर्घदृष्टीसे महा दयाल श्री तिर्थंकर भगवानके वचनोंकेतर्फ लक्ष दीजीये! खुद भगवानही फ़रमाते हैकी, छ कायकी हिंशा करनेसे उन्हे मेरेही जैसा दुःख होताहै! ऐसे दयाल प्रभूको छेही काया की हिंशा कर खुशी करना चहातें है. यह कित्नी जब्बर माहे दिशा !!

मान. इत्यादि अनेक सूकार्योंकी करनेवाली श्री जीव दयाही हैं.

'दयाही धर्मका मूल है,' सर्व मत मतांतर एक दयाकेही सारेसें चलरहे है. दया-अनुकम्पाही सम्यक्त्वीयो (धर्मात्माओं) का लक्षण है. ऐसी पवित्र दयाको धर्म-ध्यानी आपणी आत्मामें सदा निवास देते है, अर्थात सदा दयार्द्र भाव रखते है.*

दयाल अन्य जीवोंको दुःखीदेख करुणा लाते है. त्रस स्थावर जीवोंको सरीरिक. (रोगादिक) और मानसिक (चिंता)से पीडित देख, करुणा लावे. जैसे अव्वी कोइ दयवंत किसी बधीर (बेरे) कों देख, विचारते हैं की, इस बेचारेके कैसा पापका उदय है, की यह सुण नहीं शक्ता है. बधीर और अन्धा दोनो दुःखसे पिडित देखनेसे विशेष दया आती है. वैसेही किसीको अंगोपांग व अन्न वस्त्र हीन देख, रोग सो-

* श्रेणीक राजारेसुत, हाथी भवदया पाली; मेघराथ दयकाज, माडदीयो मरणो, धर्मरुचीदयाधार, करगयाखेवापार; श्रेणिक पडहवजायो, सूत्रमें निरणो; नेमजीने दया पाली, छोडदी राजलनारी; मेतारजदयापाल मेठ दियोमरणों; तेवीसमां जिनराय, तापसके पासजाय, जीवने वचायदीयो—नवकारकोसरणो; सवैयोंसवायो कीयो घन्नाश्रीनामदीयो; जीवदया धर्मपालो, जो ये [illegible]

गसे पीडाते देख, बहुत दया आती है, तैसेही बेचारे तिर्यंच (पशु) अन्न वस्त्र गृह रहित निराधार है, पराधीनतासे क्षुधा-त्रषा-शीत-तापआदी अनेक दुःख भोगवते है, तिर्यंच पचेंद्रीसे चौरिंद्रीकों दुःख ज्यादा है क्यों कि वो एक इन्द्रि रहित है. चौरिंद्रीसें तेंद्रीमें, तेंद्रीसे, बेंद्री. बेंद्रीसे एकेंद्रीमें और एकेंद्रीसे निगोद (कंदमूलआदी)में दुःख अधिक है. क्यों कि ये एक सरीरमें अनंत जीव एकत्र रहते है.

एक महोर्त (४८ मिनट) में ६५५३६ जन्म मरण करते है. इत्नी वे बसी है की, दुःखसे छूटने का उपाय करनेकी शक्ती दूर रही, परन्तु अपना दुःख दूसरेको दरसाभी नही शक्ते हैं! बेचारे कृतकर्मके फल भुक्तते है. और उनकी घात करनेवाले वैसेही नवे कर्मोंका बंध करते है; वो भोगवते उनके भी ऐसेही हाल होते है. ऐसा ज्ञानसे जाणनेवाले, फक्त एक श्रीजिनेश्वरके अनुयायीयोंजहै. वोही सब जीवोंको अभय देते हैं,* नहीं तो सब स्थान यमशाण सच

☞ * एकेंद्रीकी हिंशासें बेंद्रीकी हिंशामें पाप ज्यादा, बेंद्रीसे तेंद्रीकीमें, तेंद्रीसे चोरिंद्रीकीमें, और चोरिंद्रीसे पचेंद्रीकी हिंशामें पाप ज्यादा, इसका मतलब यह है की, जो उस स्थिती को प्राप्त हुये है वो अनंतानंत पुन्यकी बृधी होनेसे; जैसे गरीबको गाली

रहा हैं. मेरे जब्बर पुन्य है, की श्री जैन धर्मका ज्ञान मुजे प्राप्त हुवा. सुयगडायंग सूत्रमें फरमाया है की। "एयं खु णाणीणो सारं, ज न हिंसइ किंचणं" अर्थात् निश्चय से ज्ञान प्राप्त करनेका सार येही है की, किंचित मात्र जीवकी हिंशा नहींज करना! इस लिये अब मैं, सब जीवोको त्रिजोगकी विशुद्धी से अभय दानका दाता बनू. सबके वैर विरोधसे निवृतूं के फिर मुजे मोक्षमे जाते कोइभी किसी प्रकार की हरकत करनें समर्थ न होय, दयाही मोक्ष का सच्चा हेतू हैं.

"बन्ध"

कर्म बन्धनसे छूटनेसेही जीव को मोक्ष मिलता हैं, इस लिये मुमुक्षू को बन्धका स्वरूप जाणने की आवश्यकता हैं वह बन्ध के कारण सुत्रमें ४ बताये हैं. सो-"पयइ'ठिइ'रस'पएसा" अर्थात् १ प्रकृती बन्ध, २ स्थिती बन्ध, ३ अनुभाग बन्ध, ४ प्रदेश बन्ध,

---

देनेसे कोइ गिनतीमें नहीं लाता है, औरवडेको गाली देनेसे बड संकटमें पड जाता है, तैसे. तथा जिन्नी उच्च स्थितीको प्राप्त हुवे है, उतनेही आत्म कल्याण के नजीक आये. उनको मारनेसे उन के आत्म कल्याण का जब्बर नुकशान करना है, तथा [illegible]

यह ४ बन्धका का स्वरूप मोदक (लड्डू) के द्रष्टांत से कहते हैं.

(१) 'प्रकृतीबन्ध' का स्वभाव-जैसें सूठादिक से निपजें मौदकका स्वभाव होता है की; वायुनामें रोगका नाश करना; तैसे ज्ञानावरणी कर्मका स्वभाव है की; ज्ञानकूं ढकना. २ दर्शनावरणी कर्मका दर्शनको ढकना, ३वेदनीसे निराबाध—सुखकी हानी, ४मोहर्णीसे सम्यक्त्वकी हानी, ५ आयुष्यसे अजरा मर पदकी हानी. ६ नाम कर्मसे अरूपी पदकी हानी, ७ गोत्रकर्मसें अखोडकी हानी, और ८ अंतराय कर्मसें अनंत शक्तीकी हानी होती है.

(२) 'स्थिती बंध'का स्वभाव, जैसे वो मौदक महीनादी काल तक टिकतें हैं. तैसे ज्ञानाबरणी, दर्शनावरणी, वेदनी, अंतराय, यह उत्कृष्ट ३० क्रोडाक्रोड सागर. मोहक ७० क्रोडाक्रोडी सागर आयुष्यकी ३३ सागर और नाम तथा गोत्र कर्मकी उत्कृष्ट तिथी२० क्रोडाक्रोड सागरकी हैं. (३) 'अनुभाग बन्ध' का स्वभाव, जैसे उन मौदकमें कोइ कडूवा होवे, कोइ मीठा होवे. तैसें ज्ञानावरणी, सूर्यको बद्दल ढके जैसा. दर्शनावरणी-आँखका पट्टा बन्धे जैसा. वेदनी-मद्य(सेहत) भरी तरवार चाटे जैसा, मोहनी-मदिरा

के नशेके जैसा. आयूष्यखोडे जैसा. नाम-कुम्भार जैसा गौत्र-चित्रकार जैसा; और अंतराय पहरायत जैसा है. (४) 'प्रदेशबन्ध'का स्वभाव, जैसे वह मोदक कोइ दुगणी, और कोइ तिगुणी सक्करके होते हैं, तैसे कित्नेक कर्मका बन्ध स्थिल (ढीला) और कित्नेका निबड (मजबूत) होता है, कोइ न्हश थोडी स्थितीवाले, और कोइ दीर्ध (लाम्बी) स्थितीवाले. होते हैं.

इन चार बन्धमेंसे, प्रकृती और प्रदेश बंध तो योगोंसे होता है. तथा स्थिती और अनुभाग बन्ध कषायोंसे होता हैं. इन बन्धनसे जीव आनादीसे बन्धा है. किसीको तिव्ररसोदय, और किसीको मंद रसोदय हुवा है. ऐसे जगतवासी जीवोंके देखते हैं की कोइ क्रुर प्रकृती वाले, और कोइ शांत प्रकृतीवाले, कोइ दीर्घायुषी तो कोइ अल्पायुषी, कोइ सूसंयोगी तो कोइ दूसंयोगी, और कोइ सूवर्ण सूसंस्थानी तो कोइ दुवर्ण दुसंस्थानी. इत्यादीके प्रसंगसे अच्छेपे राग और बुरेपे द्वेश नहीं करना, क्यों कि वो बेचारे क्या करें, जैसा २ जिनके बन्धोदय हुवा है. वैसा वैसा संयोग बना है, इसे पलटानेकी उनमें सत्ता है, जो अपन उनको खोडील कहै! इत्यादि विचारसे, स्वस-

समभाव रक्खे; जिससे सदा परमानंदी, परम सुखी बनें रहैं.

"मोक्षगमना"

पहले जो बन्धका वर्णन किया, उस बंधसे मुक्त होवें (छूटे) उसेही मोक्ष कहते हैं. जैसे बन्धनकें योगसे तुम्बा पाणीमें डूबा रहता है और वह बन्धन टूटतेही उस तुम्बेका पाणी उपर आके ठेहरनेका स्वभाव हैं. तैसेही जीव कर्म बन्धनसें छूटतेही, मोक्ष-स्थानमें जा ठेहरनेका स्वभाव हैं.* वह मोक्ष स्थान, लोकके मध्याभागमें जो त्रस नाल १४ राजू लम्बी है उसके उपर अग्रभागमें, एक सिद्ध शिला, ४५ लक्ष योजनकी लम्बीचौडी (गोलपतासे जैसी) मध्यमें ८ जोजन जाडी, कम-होती २ किनारेपे अत्यंत पतली है. श्वेत सुवर्णकी हैं. उसपे एकही जोजन लोक हैं. उस जोजनके उपरके छट्टे विभागमें सिद्ध स्थान मोक्षस्थान हैं. वहां मोक्ष प्राप्त हुये जीवके विशुद्ध निजात्म प्रदेश संस्थित (रहें) हैं. अलोकको लगे हैं. वो सिद्ध भगवंत कैसे हैं.

---

* जैसे पाणीके आधार विन तुम्बा आगे जाता नही हैं. तैसे हा धर्मास्तिके आधार विन जीव मोक्ष (लोकाग्र) के आगे (आ-[illegible]

श्लोक

आत्मो पादानसिद्धं स्वयं मतिशय व द्वीत बाधं विशालं वृद्धी-हास व्यापेतं विषयविरहितं निष्प्रति द्वन्द्व भावम्. अन्यद्रव्या न पेक्षं निरूपं मामितं शाश्वतं सर्वकाल मुत्कृष्टा नन्तसारं परम,सुख मतस्तस्य सिद्धस्य जातम् १

अस्यार्थ—श्री सिद्धप्रमात्मा, निजात्म स्वरूप संस्थित. स्वय अतिशय युक्त, अव्वबाध (सर्व व्याधा निर्मुक्त) हानी बृद्धी रहित. प्रतिपाक्षिकता बर्जित. अनोपम=किसीभी द्रव्यकी औपमारहित. ज्ञानादीकी अपेक्षा अपार. नित्य, सर्व काल उत्तम. परम सारयुक्त इत्यादी अनंत सुख सिद्ध परमात्मा विलसतें हैं.

औरभी सिद्ध परमात्मा अतिन्द्रिय सुखके भुक्ते हैं. क्यों कि इन्द्रि जनित सुखतो फक्त कहने रूपही हैं. परिणाम उनका दुःख रूप इन्द्री के विषय कों पोषणमें दुःखही होता है, सो पहीले बताइ दिया. इस लिये सिद्ध भगवंत अनंत सुख के भुक्ता है.

सिद्ध परमात्मा ज्ञाना वर्णिय कर्मके नष्ट होनेसे, अनंत केवल ज्ञानवंत हुये, दर्शावर्णियके नाश होनेसे अनंत केवल दर्शनवंत हुये. वेदनिय कर्मके नाशसें निराबाध सुखके भुक्ता हुवे. मोहनिय

कर्मके क्षयसे शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्वी हुये. आयुष्य कर्मके नष्ट होनेसे अजरामर हुये. नाम कर्मके नाशसे, अरूपी हुये, गौत्र कर्मके नाशसें खोड (अप लक्षण) रहित हुये. और अंत्राय कर्मके क्षयसे, अनंत दानलब्धी, लाभलब्धी, भोग लब्धी, उपभोग लब्धी और अनंत बलविर्य लब्धी, के धरन हार हुये. ऐसे अनंत गुण सिद्ध भगवंतके हैं. उनका ध्यान ध्यानी करें.

"गति गमना"

पांच गतिमे गमन करनेके २० कारण— १ महारंभ=सदा त्रस स्थावर जीवोंका आरंभ (घमशाण) हो, ऐसा कारखाना चलावे. २ महा परिग्रह=महा अनर्थ सें द्रव्योपारजन करता अचके नहीं. और "चमडी जावो पण दमडी मत जावो" ऐसा लालची. ३ "कुणिमाहारी" मांस मदिरादी अभक्षका भक्षक ४ पंचेंद्रिय बधक=मनुष्य पशुका घातिक. इन चार कर्मोंसे नर्कमें जाय. ५ माया=दगाबाज. ६ मिबड़ माया=मीठा ठग, धुर्त. ७ मच्छरी=गुणोंका द्वेषी. ८ कुड माणे—खोटे तोले मापे रक्खे. इन ४ कर्मोंसे तिर्यंच (पशु) गतिमे जाय. ९ भद्रिक—सरल (दगा

रहित.) १० विनीत--नम्र कोमल स्वभावी मिलापु ११ दयाल--दुःखी देख करुणा करे, यथा शक्त सुख देवे. १२ 'अमच्छरी'--गुणानुरागी शुभउन्नती इच्छक. इन ४ कर्मोंसे मनुष्य गति पावे. १३ 'सराग संयमी' शरीर शिष्य, उपग्रहणपे ममत्व रखने वाले साधू. १४ 'संयमा संयम' श्रावक. १५ 'बालतपस्वी' हिंशा युक्त तप करने वाले (कंद भक्षादी) १६ 'अकाम निर्जरा' परवशम दुःख सहके मरने वाले, इन ४ कामो से देवता होय. १७ ज्ञान–जीवादी ९ पदार्थ जाणें. १८ दर्शन–यथार्थ श्रद्धावंत. १९ चारित्र–शुद्ध संयमी [साधू] और २० तप–ज्ञान युक्त तपश्चर्या करने वाले. इन चार कामोंसे मोक्ष में जावे. इन २० कामों में से धर्म ध्यानी ४ गति के १६ कामोंको छोड मोक्ष गमन जाने के ४ कामोंका साधन करे.

"हेतू"

संसार के हेतू ५७ हैं– २५ कशाय. १५ योग १२ अवृत. ५ मिथ्यात्व. यह ५७ हुये. इनका विस्तार २५ कषाय– १ अंनूतान बन्धी क्रोधः पत्थर की तराड जैसा. (कधी मिले नहीं) २ अंनूतान बन्धी मान=पत्थर के स्थंभ जैसा (कधी नही नमें) ३ अंनू-

तान बन्धी माया= वांशकी जड जैसी (गांठमें गांठ) ४ अनंतानबन्धी लोभ= किरमजी रंग जैसा (जले तो भी न जाय) [ये मिथ्यात्वी नर्क में जाय] ५ अप्रत्याख्यानी क्रोध= धरती की तराड (बर्षाद सें मिले) ६ अप्रत्याख्यानी मान=काष्ट स्थंभ (मेहनत से नमें) ७ अप्रत्याख्यानी माया=मीढाका शृंग (आंटे दिखे) ८अप्रत्या ख्यानी लोभ= *खंज्जरका रंग (क्षार से निकले) ९ [ये देशवृत घाती. तिर्यंच में जाय] प्रत्या ख्यानी क्रोध= रेती की लकीर, हवा से मिले. १० प्रत्याख्यानी मान=बेंत स्थंभ (नमाये नमें) ११ प्रत्याख्यानी माया--चलते बेले का मुत्र (बांक साफ दिखे) प्रत्याख्यानी लोभ-- कादवका रंग (सूखनें से अलग हो) [यह सर्व वृत घातिक मनुष्य होय.]१३ संज्जलका क्रोध--पाणी की लकीर. १४ 'संज्जलकामान--वणस्थंभ १५ संज्वलकी माया=बांशकी छूती. १६'सज्जलका लोभ--पंतगका रंग (यह केवल ज्ञानका घातीक, देवता होय) १७'हांस'- हँसे, १८'रती' खुशी, १९ 'अरती'--उदासी. १० 'भय'--डर. २१'शोक' चिन्ता, २२ दुगंच्छा. २३स्त्रीवेद. २४ पुरुष वेद. २५ नपुंशक वेद, यह पच्चीसही कषाय कर्मके रसको आ-

*१ गाडीके पइडेका ओंगन.

स्थापे जमाती हैं.

१५ जोग—१ सत्यमन, २ असत्यमन, ३ मिश्र मन, [साचा झूटा भेला] ४ व्यवहार मन, ५ सत्य (साचाभी नहीं झूटाभी नहीं ‡) भाषा ६ असत्य भाषा, ७ मिश्र भाषा, ८ व्यवहार भाषा. ९उदारिक-सप्त धातु मय, मनुष्य, तिर्यंच, का सरीर, १०उदारिक मिश्र—उदारिक उत्पन्न होते, या वेक्रय करते वक्त मिश्रता रहें. ११ वेक्रय--शुभाशुभ पुद्गलोंसें बना, नर्क, देव, का सरीर १२ वेक्रय मिश्र वेक्रय उपजे तब, या उत्तर वेक्रय करे तब मिश्रता रहे, १३ अहारिक—पूर्वधारी मुनी संशय निवारने आत्म प्रदेशका पूतला निकाले सो. १४ आरिक मिश्र--पूतला निकालते व समावते वक्त मिश्रता रहे. १५ कारमाण जोग प्रथम सरीरको छोड दूसरे सरीरमे जाती वक्त बलावू रूप साथ रहे सो. यह १५ योग कर्मोंका अकर्षण करते है.

१२ "अवृत" (१-६) पृथवी, पाणी, अग्नी, वायू वनस्पति और त्रस. [इन छे कायका जिवा आरंभ] (७-१२) श्रुत, चक्षू, घ्रण, रस, स्पर्श और मन [इन

‡ जैसे जलता तो तेल बत्ती और कहें दीवा जले जाते तो आप हैं. और कहे ग्राम आया.

छ इंद्रियोंके पोषणे लिये जक्तमें होता है. उन) की अवृत समय २ अपच्चखाणीके अती है. और कर्मका बन्ध करतीहै. देखीये इंद्रीयों पोषणे अनेक पचेंद्रीयका कट्टा कर चमडा लाते है. और बाजिंत्र मंडाते है. धातू गलाके कशाल. भंभा प्रमुख बनाते है. अनेक मनहर स्थान वस्त्र, भुषण. भोजनादी सामुगृही अनेक आरंभ कर निपजाते हैं. मद्रा, मांस अभक्षका अहार, परस्त्री वैश्यागमन, इत्यादी एकेक कर्म के पाप के सामे जो दीर्घद्रष्टी से विचारते हैं तो वेचारे पृथवीयादी जीवोंका घमशाण द्रष्टी पडता हैं. (१) एक वस्त्र निपजाणे. पृथवी का पेट हलसें चीरना. और खेती में खात न्हाख उसमें असंख्य त्रसस्थावर कट्टा. निदाणी प्रमुख अनेक खेती के पाप से झाड होवे. कपास लगे उसे चूट भेलाकरे. फिर गिरनी पे लोडावे, जावत वस्त्र तैयार होवें वहां तक असंख्य त्रस स्थावरों का घमशाण हो जाय. फिर रंगण कर्म वगैरे होवे वहां का पाप विचारीये. ऐसे महा अनर्थ से एक वस्त्र निपजता हैं. तैसेही भुषण को देखीये. धातूर वादी धातू से मट्टी अलग कर, सोनार उसे गला घाट घड उज्वलादी क्रियामें किता आरंभ होता है. ऐसे भोजन मकान वगैरे संसारके अनेक कार्योंको अलग २ स्वर्णी

से उपयोग में आवे वहां तक के पापोंके तर्फ द्रष्ट लगाने से रोमांच होते हैं. ऐसा महा पाप करके यह संसार भरा हैं और एकेक वेपारमें द्रष्ट लगाके देखो कित्ता जुलम निपजता हैं. कित्नेक पापतो अपने जाण में होते है. और कित्नेक महा घोर जगतके पातकोंसे अपन वाकेफ भी नहीं हैं. तो भी उनकी अवृत्त (पापका हिस्सा) अपच्चखाणी सब जीवोंको लग रहा हैं. जैसे घरके किमाड न लगाये तो विना जाणे देखे, और विना मनभी कचरा घरमें घुस जाता है. तैसे विन पच्चखाण किये पाप आत्माको लगता हैं. ऐसा जाण मुमुक्षु जीवोंको बारेही अवृत्त रोकना चाहीये.

५ "मिथ्यात्व"=इस जीवने इस संसारमें अनंत परिभ्रमण किया उसका हेतू मिथ्यात्व ही हैं, यह छूटना बहुतही मुशकिल है. क्योंकि अनादी कालका सोबती हैं. और इसके छूटे बिन मोक्ष नहीं मिले, इसके लिये मुमुक्षु को इन की पहचान जरूरही करना चाहीये. इनके मुख्य ५ भेद हैं.

१ "अभिग्रह मिथ्यात्व"=खोटा पक्ष पक्का धारण करे, अर्थात् जो अज्ञान मद, क्रोध, मान, माया, लोभ, रति, अरति, निद्रा, शोक, झूट, चोरी, मत्सर, भय, हिंशा, प्रेम, क्रिडा, हांस यह १८ दोष युक्त होवे उ-

न्हे सत्‌देव माने, और इन१८ दोष रहित अरिहंत देव हैं उन्हे कूदेव माने. ऐसेही हिंशा, झूट, चोरी, मैथुन, परिग्रह, पचेंद्रीके विषय भोगी चार कषायमें उनमत्त इन दुर्गुण युक्त ज्ञान दर्शक चारित्र तप विर्य[पचाचार] इर्या, भाषा, एषणा अदान निक्षेपना, परिठावणिया (यह सुमती) मन, बचन, काय, की गुप्ती इन सद्गु-णो रहित उनको गुरु माने. हिंशा, झूट, चोरी, मैथुन, परिग्रह कोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, क्लेश, चु-गली निंदा हर्ष; शोक रात्री भोजन मिथ्यात् यह अठा रह कामोंमें धर्म माने, और इससे सुलट जो हैं उसे अ धर्म माने. ऐसे तीनही कुतत्वका पक्का कदाग्रह धार-ण किया पूछे से कहे हमारी पीडीयों से यह धर्म च-ला आता है. इसे हम कदापि नहीं छोडेंगे. ऐसा हठ ग्राही होवे सो अभिग्रह मिथ्यात्वी.

२ "अनाभिग्रह मिथ्यात्व"=सूदेव. कुदेव सु-गुरु कूगुरू, सुधर्म, कुधर्म सबको एकसा (सरीखा) स-मजे के वंदे पूजे सत्यासत्य का निर्णय नहीं करे, कोइ समजाय तो कहेकी अपनको इस झगडेसे क्या मत-लब, सब महजबमें बडे २ विद्वान गुणवान बैठे हैं. तो किसे झूटा कहे सब अच्छे हैं.

३ "अभिनिवेशिक मिथ्यात्व"=कूदेव, गुरु, धर्म

ओर शास्त्रका किसी सत्संग करके यथार्थ समज जाय की यह खोटा है परंतु लोकोंकी कूलगुरूओंकी शरम मे पड उन्हे छोडे नहीं; बिचारे की जो में इसे छोड देवुंगा तो मेरे गुरु और मित्रों स्वजनो मुजे ठपका देंगे, निंदा करेंगे, और इस महजब के तो ह्यां बहुत लोक हैं, मुजे आगेवानी कर रखा है. सबमेर हुकम में चलते है. मेरा मान महात्म खूब बडा है. जो मै इसे छोड, देवूं तो सब बदलके निंदा अपमान करेंगे. इत्यादि विचार सें खोटे को खोटा जाणता हुवा ही छोडे नहीं; अपना जन्म काली धार डुब रहा है, उसका उसे बिलकुल फिकर नहीं ऐसे भारी कर्मी जीवको अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी कहना.

४ "संशय मिथ्यात्व"=कित्नेक अल्पज्ञ जीव, तथा अज्ञानी, किसी पुण्य योग्यसे जैन धर्म तो पागये, जैन के शास्त्र सुणे, क्रिया करे, परंतु कित्नीक गहन बातों नहीं जचनेसे शंका करे की, सुइकी अग्र जित्नी जगामें अनंत जीव, पाणीकी बुंदमें असंख्याते जीव, पूर्व पल्योपम और सागरोपम का आयुष्य, हजारों, लाखो धनुष्यकी अवगहना, नगरीयोंका प्रमाण और वस्ती, चक्रवृतीकी ऋधि और प्राक्रम, लब्धीयों, भूगोल खगोल का हिंशाब तथा अरूपी जीवराशी, सुक्ष्म जीवों,

और मोक्षके सुख तथा आस्तित्व वगैरे २ बातोंमे वैम लावे, के यह असंभव बातों सच्ची कैसे मानी जाय. परंतु यों नहीं विचारे की यह अनंत ज्ञानीके समुद्र जैसे बचन मेरी लोटे जैसी बुद्धीमें कैसे समावे. वितराग पुरुष मिथ्यालाप कदापि न करनेके, केवल ज्ञानमें जैसा द्रष्टी आया वैसा फरमाया. और सच्च है अब्बी १ जो क्रोड औषधी के चूर्ण का राइ जित्ने विभागमें भी क्रोड औषधी का अंश समजते है,यह तो करतबी है, तो कुदरती कंदमूलके टुकडेमें अनंत जीव होवे उसमें क्या अश्चर्य? २ अब्बी भी हाथीका बडा और कुंथवेका छोटा सरीर होता हैं. वैंसे ही गत कालमें मनुष्यादी की ज्यादा अवघेणा और ज्यादा आयुष्य होवे उसमें क्या आश्चर्य? ३ तथा हाथी बहुत दूरसे दिखता है और कूंथवा नजिककाही मुशीबत से दिखता है. उससेभी ज्यादा सुक्षम पृथव्या दिकके जीव होवे और वो द्रष्टी न आवे इसमें क्या आश्चर्य? ४ अब्बी भी अन्यस्थानोंमे बडे २ शेहर हैं तो प्राचीन कालमें १२ योजनके नगर शेहर होवे उसमे क्या आश्चर्य? ५ क्षेत्र फलावट से कोटी घर और मनुष्योंकी वस्तीसें शंका लाते हैं; परंतु कोटी शब्दका अर्थ एक क्रोडही होय ऐसा न समजीये अब्बी भी क

हीं ६ को और कहीं २० को क्रोडी कहते हैं. ऐसे ही उस वक्तभी किसी बडी संख्याकों क्रोडी कहते होंगे. ६ अब्बी भी एकेक मिनिटमें हजारो का व्याज आवे, ऐसे श्रीमंत बेठे हैं. तो उस वक्त इभ पति आदी होवे उसमें क्या हरकत? ७ अब्बी भी लोहेकी शांकल तोडने वाले मनुष्य हैं, तो गत कालमें अनंत बली होवे उसमे क्या अश्चर्य? ८ और पृथ्वी का अंतः किन्ने देखा है, जो केवलीके बचनको उत्थापके अमुक संख्यामें ही द्वीप समुद्र बताते हैं; और जो द्विप समुद्र असंख्य हैं. तो उन्हमें प्रकाश करने वाले चन्द्र सूर्य भी असंख्य हुये चाहीये. ९ आँखसे विन देखे शब्द गन्ध आदी से ग्रही वस्तुकों कबूल करे, तो फिर अरूपी पदार्थ कों बिन देखे क्यों नहीं माने. १० घृत भोगव करके भी उसका स्वाद नहीं कह सक्ते हो, तो मोक्षके सुखका वर्णन मुखसे कैसे हो सके, भोगवे सोही जाने. इत्यादि स्थुल विचारोंसे कित्नेक स्थुल बातोंका निर्णय हो सके, और कित्नेक अग्रह्य बातोंका निर्णय नहीं भी हो सके तो भी सम्यक्त्व द्रष्टी वितरागके बचनोंपे आसता रखते हैं. जैसे जवैरीके कहनेसे लाख रुपैके हीरे को लाखहीका मानते है. और मिथ्यात्वी शंशय में

पड सम्यक्त्व गमा देते है. सो संशयिक मिथ्यात्वी.

५ "अनाभोग मिथ्यात्व"=ऐकांत जड मुढ, न कुछ समजे और न कुछ करे, धर्माधर्म के नामकों भी नहीं पहचाने, जैसे एकेंद्रीयादी जीव अव्यक्तव्य (अजाण) पणें मे है. सो अनाभोग मिथ्यात्वी.

मिथ्याका अर्थ झूटा होता है. अर्थात् सत्यको असत्य. और असत्यको सत्य श्रधे, सोही मिथ्यात्व है इसे बुद्धिको भ्रष्ट बना के आत्म हितका नाश करने वाला जानके ध्यानी त्यागते है.

यह धर्म ध्यानका आज्ञा विचय नामे प्रथम पायेका फक्त एकही गाथा का सविस्तर अर्थ यत्किंचित वरणव किया. इसमें से ज्ञेय (जाणने योग्य) को जाणें. हेय (छोडने योग्य को) छोडे. उपादेय (आदरने योग्यकों) आदरे अङ्गीकार करें.

औरभी भगवानकी आज्ञाका चिंतवन करेकी बहुतसे शास्त्रमें साधुओंके लिये फरमाया है. "संयमेणं तवसा अप्पाणं भाव माणे विहरइ" अर्थात् पांच स्थावर तीन बिकेंद्री; पचेंद्री, और अजीव(वस्त्र पात्र) इनकी यत्ना करे. मनादी त्रीयोग वसमें करे, सबके साथ प्रिती (मैत्री भाव) रक्खे सदा उपयोग युक्त प्रवृते दिनको द्रष्टीसे और रात्री को रजूहरणसें पूंज(झाडे)

के हरेक वस्तु काममें ले. अयोग्य वस्तु यत्नासें एकांत परिठावे (डालदे) यह १७ प्रकारके संयम और असण दो घडी, या जाव जीव अहार त्यागे. २ उणोदरी= उपाधी और कषाय कमी करे. ३ भिक्षाचारीसे उपजीवे. ४ रस (विगय) का परित्याग करे. ५ कायाको लोचादी क्लेश दे, ६ प्रतिसलिनता=इन्द्रीयों कषाय योग, को प्रवृत्ती घटावें ७ लगे पापका प्रायाछित ले शुद्ध होवे ८--१२ विनय वयवच्च, सझाय, ध्यान, का उत्सर्ग करें, यह १२ प्रकारका तप ज्ञान युक्त करके अपणी आत्माको भावते (आत्मामें रमण करते) हुवे विचरे प्रवृत्ते.

और भी भगवानने श्री उत्तराध्येयनजी सूत्र में फरमाया है की "समय गोमय म पम्माय" अर्थात् हे गौतुम तथा मुमुक्षु जीवों अतम साधन मोक्ष प्राप्त करने के उपाय के कार्य में किंचित समय (वक्त) भी प्रमाद मत करो!

"पांच प्रमाद."

गाथा—मद विषय कषाय, निंदा विकहा पंच भणीया.
ए ए पंच पम्माया, जीवा पडुंति संसारे.

१ मद=जाति, कुल, बल, रूप, लाभ, ज्ञान

तप और ऐश्वर्य(मालकी) यह ८ प्रकारकी उत्तमता जीवोंकों पुण्योदयसे होती हैं, और इनका मद अभीमान करके जो संयम-वृत ब्रम्हचार्य परोपकारादी में नहीं लगाते हैं; तथा कुछेक अच्छे कार्यके प्रभावसे यत्किंचित कीर्तीवंत हो, विचारते है की में पण्डित हूं. शुद्धाचारी हूं. वक्ता हूं सब जन मुजे सत्कार सन्मान देते हैं. मै जगत्प्रसिद्ध हूं. सरस्वति कंठा भरण, वादी विजय, वगैरे उपाधियों मुजे मिली है. किबहूमें एक आद्वित्तिय महात्मा हूं. ऐसे विचारसे जो भरा हो. या स्वमुखसे कहता हो, वो ज्ञानादी गुणसे नष्ट हो, भ्रष्ट बनता है. अभीमानी अपने किंचित् सद्गुणको मेरु तुल्य देखता हैं, और अन्यके अपार गुणको तथा अपने अपार दुर्गुणोको राइ तुल्य किंचित समजता है, इस लिये वो अपना उद्धारा नहीं कर सक्ता है. इत्यादी दुर्गुणोंसे मद भरा है. इस लिये इसे मद-मदिरा (दारु) के नाम से बोलाया है.

२ "विषय"=शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श इन पांचहीकी पूर्णता पुण्योदयसे होतीहै. इने जो गुणी गुण उच्चार, साधू दर्शन, तप वगैरे सत्कार्यमें नहीं लगाते; विभत्सशब्दोचार, रूप अवलोकन, गंधग्रहण, अभक्ष भक्षण, और भोग विलाशमें लगाके नष्ट करते हैं.

अमृत समान इन ५गुणोंको विषयमें लगा,विष(जेहर) रूप बना, दोनो भव में दुःखके भुक्ता होते है; इस लिये इसे विषय (जेहर) के नामसे बोलाये है.

३"कषाय"=क्रोध, मान, माया, और लोभ, यह चारही कषाय महा पापका मूल है. इनके वशमें हो जीव आपा (भान) भूल जाता है. आत्मघात, द्रव्य-नाश, यशकी क्खारी, कुलका संहार, अयोग्य कार्य करते बिलकूल अचकाते नहीं है. निबल अनाथ को स्व प्रक्राम से और बलिष्टोको दगासें नष्ट कर महा पापोंसे अपणी आत्माको मलीन कर, दोनो लोकमें दुःखके भुक्ता होते हैं. इस लिये इन्हे कषाय, (कर्म का रस आय) या कसाइ (घातकी) नामसे बोलाते हैं.

४ "निंदा"=इस शह्वके दो अर्थ होतें है. (१) निंदा (निंद्या) इसे दशवैकालिक शास्त्रमें कहा है की, "पीठं मासं न खाइज्जा" अर्थात् किसीके पीछे निंदा (दुर्गूण प्रगट) करना है. उसे मांस भक्षण जैसा बताया है. निंदक ज्ञानी शुद्धाचारी, प्रभावक, धर्मोंन्नत्ती कर्ता, तपस्वी, क्षमाशील, वगैरे के गुणानुवाद श्रवण कर सहन नहीं कर सक्ता हैं, और उन्हे ढांकने उनकी निंदा करता है, अच्छते आल वज्जा देता है. कूतर्कोसें उनकी भक्तीपे भोले लोकोंके भव उतारता है. ऐसी

नीच निंदा ही निंदा पात्र है.* (२) निद्रा (नींद) ये भी सत्कार्यमें विघान करनें वाला जब्बर शत्रू है, इसकी धर्म स्थानमें विशेषता द्रष्टी आती है. कित्नेक मुनीवृत धारण कर, पापी श्रवण (साधु) बनते हैं, अर्थात् विना मेहनतसे अहार, वस्त्र, उपश्रयादी सामग्री के प्राप्त होने से, बे फिकर हो, बहुत काल निद्रामें गुजारते हैं. यह निद्रा प्रमाद भी दोनो भवमें दुःख प्रद हैं.

५ विकहा=देशकथा, राजकथा, स्त्रीकथा, भक्तकथा, यह चार प्रकारकी वी (खोटी) कथा कहीये. और भी चोरोकी धन की, धर्म खंडनकी, वेर विरोधकी, गुणत्रधक, कामोतेजक कलेद कारणी, परपीडा कारणी ग्लानी उत्पन्न करने वाली, इत्यादी अनेक प्रकार की वी कथा हैं. उसमें जो अमुल्य मनुष्य जन्मका आयुष्य क्षय करते हैं, वो अन्याय करते हैं. कित्नेक विद्वानो पर्षादा को खुश करने अनेक कपोल कल्पित बातों. कल्पित विषयिक ढालो. हांस शृंगार,

* सवैया, नर्क निगोदभमें निंदा का करणहार, चंडाल समान ज्यांकी संगत न कामकी; आपकी वडाइ पर हाणीमें मगन मुढ, ताकत पराये छिद्र नीत है हरामकी. वाकी निंदा कान सुण, खुशी नहीं होणा कधीं, पीछे न करेगा नर, तेरी वद नाम की. तिलोक कहत तेरे दोष हैं निंदक माहै, हासे मर जाय. आगे गती यम धाम की.

विभत्सादी रसमें लीन बनाते हैं+ वो फुटी नाव के संगाती भक्त जनो सहित पातालमें बैठते है.

यह पांचही प्रमाद बडे दुरुधर हैं. श्री भगवती जीके ८ में शतकमें फरमाया है की, चार ज्ञानी, चउदे पूर्वी, अहारिक सरीर, ऐसे मुनीराज इन पंच प्रमादकें बसमें पड आयुष्य पूर्ण करे तो अधोगति पावें, ऐसे दुष्ट प्रमादों को जान भगवंत ने फरमाया हैं के "समय मात्र भी इसका सहवास मत करो." क्यों कि इसकी किंचित् संगतही ऐसी असर करती हैं. की फिर प्राणांत होते भी छूटना मुशकिल हैं. इस वक्त जैन जैसे पवित्र धर्मकी दुर्दशा हो रही है, वो इन्हीका प्रताप समजना. जो महात्मा पंच प्रमाद से बचेंगे वो ध्यान सिद्धी प्राप्त कर सकेंगे.

यह आज्ञा विचय ध्यान अपार अर्थ से भरा है परंतु ह्यां इत्ना कहके अब सबका सारांश थोडेमें कहे यह पूरा करुंगा.

गाथा— किं बहुणाइह, जहा २ रागदोसा लहू विलज्जंति
तह २ पयाठियव्वं एसा आणा जिणिंदाणं १

अर्थ—ह्यां विशेष कहनेसे क्या प्रयोजन है !

+ दुहा दश बोगा दश बोगली, दश बोगाका बच्चा; गुरुजी तो गप्पा मारे, सबही जाणे सच्चा.

बस थोडे मेंही समजीये की, जैसे २ राग और द्वेष शिघ्रता (जल्दी) सें कमी होवें. वैसी २ प्रवृत्ती करो! येही श्री जिनेश्वर भगवानकी आज्ञा है.

यह आज्ञा विचय धर्म ध्यानमें प्रवेश करनेसे मिथ्यात्वादी अनादी मलका नाश कर, चैतन्य को पवित्र बनाने जलवत है. आधी, व्याधी, उपाधी रूप ज्वालासे जलते जीवको शांत करने पुष्करावर्त मेंघवत् हैं. अत्यंत ग्हन संसार समुद्रसे तारने सफरी झाजवत् हैं. मोह वनचरो के नाशके लिये केशरीसिंहवत्त बुद्धी वीवेक बढाने को सर्स्वतीवत्. योगीयोंके मनको रमाणे शांत आवास हैं. इत्यादी अनेक गुणोके सागर आज्ञा विचय का चिंतवन धर्म ध्यानी सदा करते हैं.

द्वितीय पत्र-"अपाय विचय"

गाथा

अप्पाणं मेव जुज्झाहिं, किंते जुज्झेण बज्झ उ;
अप्पाणे मेव अप्पाणं, जइता सुहमें हए.

उत्तराध्ययन. ९

अर्थात्-श्री नमीराज ऋषि सकेंद्र से फरमाते है की, सुख इच्छको को अपणी आत्मासें रहे हुये दुर्गुणों का प्राजय करना चाहीये. अन्यके साथ बाह्य (प्रगट) युद्ध करने की क्या जरूर है. ज्ञानादी आत्मा

से कषायादी आत्माके साथ युद्ध करनेसेही आत्मा सुख पाती है.

"अपाय विचय" धर्म ध्यान के ध्याता ऐसा विचारे की, मेरा जीव सदा सुख चाहता है; अनंत भव हुये, सुखके लिये तडफ रहा हूं. अनेक उपाय करते भी अपाय होता हैं, कीहुइ मेहनत निर्फल होती है. इसका क्या कारण? यह मेरे उपाय को नष्ट कर मेरे को प्राप्त होते हुयें, मेरे पास रहे, अनंत अक्षय अव्याबाध सुखकी व्याघात करने वाला शत्रू हे ही कौन ? हां! इत्ना निश्चय तो हुवा की वो शत्रूओं बाहिरका कोइ पदार्थ नहीं हैं. क्योंकि बाहिर होयतो, मुजे दुःख देने आते हुये द्रष्टी आते. मेरे शत्रूओं तो मेरे घरमें ही घर कर बैठे हैं. [ठीक हुवा ढुढनेका प्रयास घटा] आश्चर्य के इत्ने दिन मुजे क्यों नहीं दिखे? पर कहां से दिखे, क्योंकि मै तो आजतक इनको देखने स्व घर छोड पर घरमें भटकता फिरा और वो अन्दर रहे, मेरे उपायोंको नष्ट करते रहें. अच्छा अब तो मेरी भूल शूधारूं. अंदर रहे बाह्य मित्र और अंतरिक शत्रूओंको अच्छी तरह पहचानने बाह्य द्रष्टी बंद करूं. क्योंकि भगवाननें फरमाया है "एक समयमें दो कार्य न होवे" [ऐसा विचार आँख मीच अन्दर अवलोके] अहो! यह

मेरे शत्रू तो बडे जब्बर है. इनोने तो बडा ठाठ पाट जमा रक्खा है.

"मोहकी ऋद्धि"

यह तीन अज्ञान त्रिकोटसे घेरी हुइ प्रकृती कां गूरे और चार गति दवज्जे युक्त 'अविद्या' नगरीके मध्यमें 'असंयम' मेहल की 'अधर्म' सभामें भृष्ट मति सिंहासणपे अति प्रचंड सरीरका धरणहार, मद मेंछका हुवा "मोहो" नामें महाराजा. अनाज्ञा शिरछत्र, और रति अरति दासीयोंके पास हर्ष शोक चमर दुलाते बेठे हैं; यह पाप पोशाकका भलका. अ-वृत मुकटादी भूषणोका चलका और क्रिया खड्ग मन मुखमली म्यानमें झलकताहैं, जडता ढाल पीछे ढल-कतीहैं. यह इसकी मायारूप पटरागणी, चार सज्ञा दासीयोंसे प्रवरी अर्धांगना बनीहै. यह काम देव कुँवर (पुत्र) ज्ञानावरणीयादी ७ मांडलिक म-हाराजा, मिथ्यात्व प्रधान, प्रमाद परोहित, राग द्वेष शंन्यापति, कूरभाव कोटवाल, व्याक्षेप नगर श्रेष्ठ, कुव्यश्न भंडारी. कुसंगदाणी. निंदक पटेल. कूकवीभाट प्रणामदूत. दंभ दुदंत. पाखंड द्वारपाल इत्यादी महा-जनो कर, सभा एक महाभयंकर रूपकों धारण कररही

हैं. नगरमें चौरासी लक्ष चोहटे. अनेक सरीर रूप सदनोमें. विचित्र प्रकृतियों प्रजाका वासहै. प्रजाजनभी विचित्र स्वभावी है; जरा सत्कारसें फुलजाना और जरा अपमानसे रूस जाना. जरा लाभमें हर्ष और जरा नुकशानमे शोक. इत्यादी विचित्रता धरतेहै मानगजाधीश, क्रोध अश्वाधीश, कपटरथाधीश और लोभ पायदलाधीश वगैरे शैन्यभी बिकट हैं हय २ बडा जब्बर शत्रू निकला; मैं इकेला इसका कैसे प्रजाय करूं? और इच्छित सुख वरू; मेरा तो कोइभी नही दिखताहै. हे भगवान! अब क्या करूं?

"चैतन्यकी ऋद्धि"

उसी वक्त, एक नजीकही रहाहुवा. 'विवेक' नामे चैतन्यका परम मित्र, हो हाथ जोड बोला क्यों चैतन्य महाराजा! क्या फिकरमें पडहो? शत्रूओं कों प्रबल देख सुरमें बणो कायरता तजो? [इन बचनोंसे चैतन्य नें विवेकको आपणा हितेच्छु जाण] और जवाब दिया, भाइ! विना शक्ती सुरमाइ क्या कामकी?

विवेक—वहा! महाराजा हो यह क्या शद्बो-

चार करते हो; आपके क्या टोटा हैं! आपकी ऋद्धि तो इस मोहकी ऋद्धिसे सर्व तरह अधिक है. परिवार शैन्य निडर और अप्रबल है. परन्तु आप शत्रूके तावे में हो, इसे दिनमें कभी हमारे तर्फ द्रष्टीही नहीं करी तब हम बेचारे, श्वामीके आदर विन चुपचाप बैठे. आज आपने जरा सुद्रष्टी कर, हमारी तर्फ अवलोकन किया तो सेवक सेवामें उपस्थित हुवा; और अर्ज करता हूं की, आपके परिवारकी खबर लीजीये, सब को संभालके हुशार कीजीये, और फिर आप हुकम दीजीये. की फिर मोह जैसे केइ शत्रूओंको क्षिणमें नष्ट कर आपका इच्छित करें!

इत्ना सुणते ही चैतन्य कों धैर्य आइ, और कहने लगा, प्यारे मित्र! मेरा परिवार मुजे बता.

विवेक—यह देखीये आपका तीन गुप्ती त्रि-कोटे से घेरा हुवा दान, सील, तप भाव दरवज्जे युक्त यह 'अभय' नगरके मध्यमें संयम मेहलकी धर्म शभामें 'सुमति' सिंहासण, जिनाज्ञा छत्र, और सम सम्वेग चमर कर शोभता हैं. शुभ भाव सेठीये पुण्य दुकानों में ऋधी सिद्धी युक्त बैठे. सुक्रिया वैपार कर रहे हैं. और भी वहूत परिवार आपका है. सो शहरमे प्रवेश किये मिलेगा: परन्त हुशारीके साथ प्रवेश करिये. क्यों कि

'मोहनृप' ने अव्वलही प्रहरा चौकी का युक्त बंदोबस्त किया हैं. डरीये नहीं. यह ली जी अति तिक्षण 'ज्ञान खड्ग' इस से सर्व कार्य फते होंगे.

इत्ना सुण चैतन्य श्रधा नगरमें प्रवेश करने प्रवृत्त हुवा, की तुर्त मिथ्यात्वके मिथ्यामोह, मिश्रमोह, सम्यक्त्व मोह और अनतान बंधका चौक यह सातही जुजार सुभट सन्मुख हो बोले. खबर दार चैतन्य राय, आगे बढने देनेका मोहो महाराज का हुकम नहीं हैं.

चैतन्य ज्ञान खड्गले उनके सन्मुख होते ही सातही मोहके भग गये. चैतन्य उत्साहाके साथ नगरमें प्रवेश किया, छटा देख बहुत खुश हुवा. इत्नेमें अवृत के रखे १२ सुभट सन्मुख हो बोले, तुमे संयम मे हलमें पेशने देनेका हुकम नहीं है. चैतन्यने प्रत्याख्यन भालेसे उनको भगा और संयम मेहलमें गये, सुमति सिंहासणपे जिनाज्ञा छत्र धारण कर लज्जा और धैर्य दासिसे सम सम्वेग चमर ढुलाते हुये विराजे, उसी वक्त उनका सब परिवार सहर्ष विनय युक्त हाजिर हुवा, चैतन्य नें सबका यथा योग्य सत्कार किया, तत्व रुची और सुबुद्धी विरहणी पटरागणी योको अंकितमें स्थापन करी, पंच महावृत्तो को मंडलिक पद दिया. सम्य

त्त्व प्रधान, उद्यम-प्रोहित, उपशम शैन्याधीश, शांत-भाव-कोतवाल, शुभ भाव-नगर श्रेष्ट, विज्ञान-भंडारी, पर्मागमसे भंडार भरपुर, सत्संग-दाणी, व्यवहार पटेल. गुणीजन—भाट. सत्य दूत. न्याय-द्वारपाल. मन निग्रह-अश्वाद्विप, मार्दव-गजाद्वीप, आर्जव-रथाद्वीप, और संतोष-पायकाधीप, इत्यादी को यथा योग्य पद पे स्थपन्न कर, चैतन्य माहाराजा आनंद से राजकरने लगे. परन्तु मोह के प्रबल प्रताप रुप छाप उनके ह्रदय में चमक रही थी.

एक दिन सभामें बोले की, मेरे प्यारे मंत्री-सामंत गणो ! में आप के संयोग से बहुत आनंद पायाहू-तथापि जब तक मोह शत्रू नष्ट न होगा. तब तक मूजे पूरा सुख हुवा नही मानता हूं. इस लिये मोह के नष्ट होनेका अव्वल प्रयत्न किया चहाता हूं. इत्न सुणतेही विवेकादी सर्व, नम्रतापुर्वक बोले, नाथ की जीये शिघ्र सजाइ. चलिये अब्बी एक क्षिण में मोह का नाशकर, अपका इष्टितार्थ सिद्ध कर, सर्व सुखी बनीये. चैतन्य का हुकम होतेही सब सुभटो मोहके प्राजय की सजाइ करने लगे.

यह समाचार प्रणाम रूप सुभट द्वारा मोहो नृपने पयेकी, चैतन्यने श्रधा नगरीको संयम मेहल यु-

क तावें में कर, खूब ठाट जमाया हैं. और आपको प्राजय करनेकी तैयारी कर रहा हैं. इत्ना सुणतेही, मोहो क्रोधातुर हो बोला, देखो मेरे प्यारे मित्र सामंतो! अनंत वक्त चैतन्य को मना किया की, तूं यह ढोंग मत कर. परंतु बेहया (निरलज्जा) इत्नी २ फजीती होतेभी नहीं शरमाता है. चलीये उसे जरा स मजा, कैद करें, अपने तावेंमें करें. इत्ना सुणतेही मोहके पाखंड सेवकने कूबोध भेरी वजाके शैन्याकों हुशार करी, सब सेवक चौंक उठे, और अपनी २ सजाइ सजी मद मत वाले अभीमान हाथी, चंचल चपल मन अश्व, रंगी बेरंगी झणणाट करते कपट रथ, और अतिबलिष्ट लोभ पायदलों के समोह से प्रवरे, तमशा वक्तर पेहन, कूक्रिया शस्त्र धार, तीन कूलेश्या रूप काले, नीले, हरे, निशाण फर्राते कूअलाप वाजिंत्रों के झणकारसे गगन गर्जावते, कर्मोदय मोहूर्त में प्रयाण कर. कर्म रोहण मार्गपे आ. मोह महाराजा स परिवार खडे हुये.

मोह की शैन्या देख अध्यवशाय सन्धीपाल. चैतन्य के पास आ के अर्ज करने लगे, की हे स्वामी! हम दोनो पक्ष का भला चहाते, है और चेताते हैं की "मोह नृप वहुत प्राचीन वृध हैं. आप जैसे तरुण महाराजाको, उनका अपमान करना योग्य नहीं है. आप

जानते हो, उनकी शैन्यका प्रबल प्रताप की, तीनही लोकको ताबे कर रक्खा है. उनसे आपकी जीत होनी मुशकिल हैं; वक्तपे ऐसा न हो की, आपकी शैन्य उन में मिल जानेसे आपका अपमान होय, और राज भी जाय! इस लिये आप सन्मुख जाके सन्य कर लीजीये· वृधो की सेवामें अपमान न समजीये.

यह सुण चैतन्य हँस के बोले मै सब समजता हुं. जहां लग सिंह गुफामें निद्रिस्थ रहता है वहां तक ही वनचरो को उन्माद करनेका अवकाश मिलता है. समजे! बहुत कालके उडते धूलेकों, क्षिणिमें मेघ दबा देता है! मेरे विन उस मोहको पहचानने वाला दूसरा हे ही कोन? इत्ने दिन गम्म खाई, यह मेरी भूल हुइ अन्यायीकी पयमाली करनाही हमारा कर्तव्य हैं!! क्या तुम नहीं जानते हो, मै मोहके ताबेमे था, जब मेरी कैसी फजीती करी हैं. उसका क्षिण २ मुजे स्मरण होता है, अब मैं मूर्ख न रहा की, पीछा उसकें ताबेमें हो, फजीती करावूं! इत्ने दिन मेरे परिवारकी मुजे पहचान नहीं थी. पर विवेक मंत्रीश्वरका भला हो· इस दुःखसे छोडने, उनोने मुजे युक्ती और सामुग्री ब ताइ. मै मोहके सन्मुख हो, नष्ट करने तैयार था. अ च्छा हुवा की वो सामे आगया. जरा तुम खडे रहो·

मेरी शैन्याका पराक्रम देखीये. की त्रिलोक पूज्य मोह महाराजा की क्या दुर्दशा होती हैं. इत्ना कह चैतन्य रायने सगुरु सुभटके पाससे, सद्बोध भेरी बजवाके शैन्य सज कराइ. उसी वक्त शांत रसमें भरे हुये मन निग्रह अश्व, वैराग्य मदमें घुमते हुये मार्दव गज, सरलतासे शोभित आर्जव रथ. और सदा त्रप्त संतोष पायदल, चतुरंगणी शैन्य; क्षमा बक्तर, तप रूप अनेक शस्त्रसे सज हो, स्वध्याय रूप नगारे घुर्राते भजन रूप सणणाइयों सणणाते. वैराग्य पंथमें आगे बढते तीन, शुभ लेश्या रूप लाल, पीले और श्वेत, निशाण फर्राते, गुणस्थान रोहण रणांगणमें आ खडे हुये.

दोनो मालिको का हुकम होतेही संग्राम सुरू हुवा, मोहकी तर्फसे 'मिथ्यात्व मंत्रीश्वर' पच्चीस उमराव और अनंत सुभटोंके साथ, चैतन्य का सामना कर, कहने लगे, क्योंरे चैतन्य! तुजे मेरे त्रीलोकव्यापी प्राक्रम का विस्मरण होगया दिखता है. तेरी अनंत वक्त क्ष्वारी करी तोभी बेशरम, लडने तैयार हुवाहै. देख अभी एक क्षिणमें तुजे तिव्र बाणसे पतन कर पातालमें पहोंचाता हूं. कूदेव कुगुरु, कुधर्म, कुशास्त्र, ये मेरे सेवकोंके हाथ फजीती कराता हूं. ऐसा बकबकाट करता, बाण खेंच खडा रहा.

तब चैतन्यसे विवेक बोला देखीये श्वामी यह मोहका मानेता प्रधान मिथ्यात्व है, यह सम्यक्त्व प्रधान जीकी द्रष्टी मात्रसेही मर जायगा. इसके मरनेसे मोहकी सब शैन्य स्थिल होजायगी, और अपनी श्रधा नगरी निर्विघन होजायगी. यह सुन 'सम्यक्त्व' मंत्रश्वर पांच समकित महा जोधें और शैन्य साथ मिथ्यात्वके सन्मुख हों. तत्वातत्व विचार रूप बाण छोडतेही मिथ्यात्वका सपरिवार नाश होगया. चैतन्यकी शैन्यमें जीत नगारा बजा. और मोह तो अति बलिष्ट मंत्रीके वियोगसे अत्यंत खेदित हुये. तब 'अवृत्तराय' मोहसे बोले. आप फिकर न कीजीये. अब्बी मै प्रधानजीका बदला लेता हूं. बिचारा चैतन्य, मेरे आगे क्या करेगा. ऐसा कहे, बारे उमरावोंके साथ चैतन्यके सन्मुख आ कहने लगे. रे! चैतन्य ऐसे तेरे ढोंगोंको मैनें बहुधा नष्ट कियें तो भी तूं सामे होता नहीं शरमाया, आ देख मजा.

तब चैतन्यसे विवेक बोले इसे जीतने स्मर्थ अपने सर्व वृतिराय हैं. वो इसका क्षिणमें नाश कर संयम मेहलको निर्विघन कर देंगे. यह सुण 'सर्व वृत राय' तेरे चारित्र और अनेक शूभ प्रणाम सूभटोंसे प्रवरे. वैराग्य बाणके वृष्टीसे अवृत जी काल धर्म

प्राप्त हुये, चैतन्यकी जीत हुइ, और मोह तो अत्यंत दिलगीर हो कहने लगे की, अबके चैतन्यसे फते पानी मुशकिल हैं. तब 'प्रमाद सिंघजी' हंसते २ बोले. ऐसे ढोंग चैतन्यने केइ वक्त किये है. मैने पूर्वधारी महा मुनीयोंको भी नर्कगामी बना दिये तो इस बिचारे की क्या गिनती! दक्षिणके बद्दल ज्यों वायू बिखेरता है. त्योंमें अब्बी चैतन्यकी सब शैन्य भगा देता हूं, ऐसा गरुर करते, पांच उमराव, और केइ शुभटों से परवरे, चैतन्य सन्मुख हो कहनें लगे. के अब मेरे आगेसे भगके कहां जायगा. तेरे घमंड को अब्बी नष्ट करता हूं. तब विवेक बोले, इनको भगाने उपशम रावजी स्मर्थ हैं, के उपशमराव तुर्त पंच अप्रमादरूप पांच उमराव और केइ सुभटों साथ. प्रमादके सन्मुख हुवे. प्रणाम धारा रूप गोलीकोंके बर्षाद से प्रमादका पतन किया, की चैतन्य ध्यानमें लीन हो सुखी हुवे.

मोह, प्रमाद रावका मृत्यु सुन, होंस हवास भूल गये. तब कामदेव बोले, पिताजी मेरे जैसे प्राक्रमी पुत्र आपके होतें आप फिक्र क्यों करते हो, अब्बी बातही बातमें चैतन्यको कुब्जमें कर लाता हूं.

कुंवर साहेब के पह वचन सुन [illegible]

शक यह तीनही उमराव खडे हो कहने लगे की हम कुँवर साहेबके मदतमें जाते हैं. चैतन्यका घमंड एक क्षिणमें गमाते हैं. तव अश्वाधिप क्रोधजी, खडे हो धमधामायमान होते बोले. किसने जननी का दूध प-चाया की है की, जो मेरे सन्मुख खडा रहे. क्रोध राग-द्वेष, कलह-चंड, भंड विवाद यह सुभटके सामे टिके तब गजाद्विप अभीमानजी बोले, मैनें केइ वक्त चैतन्यको हीन दीन, बना दिया है, क्या अविनय मान मद, दर्प, स्थंभ, उत्कर्ष, गर्व, यह मेरे सुभटोंका प्रा-क्रमी कमी है. तब रथा द्विप कपटजी कहने लगे मै ने चैतन्यको केइ वक्त लेंगे, लुगडे, चुडीयों पहनाइ हैं, अब क्या छोड दूंगा. माया, उपाधी, कृती, गहन, कूड वंचन, यह मेरे सुभट कम प्राक्रमी है क्या.? यों यह तीनही स-परवार, कामदेवके साथ हुये, इनसे काम-देवका ठाठ सबसे अधिक हुवा, अनुराग रणासिंग्घा बजाते. एकदम चैतन्यपे विषय रागरूप बाणोका ब-र्षाद सुरू किया, क्रोधजी ज्वालामय बाण छोडने लगे, अभीमान जी स्थंभन विद्या डाली, दगाजी गुप्तरीत क्षय करने प्रवृत हुये; यह अविमासा एकदम जुलम होता देख, चैतन्यसें विवेक बोले आप घबराइये नहीं; शांती ढालकी ओटमें विराजे रहो. कामदेवको निर्वेद

राय, क्रोधका क्षमाचंद्र, मानका मार्दव सिंह, दगाका अर्जव प्रसाद, एक क्षिणमें नाश कर डालेंगे. इत्ना सुणतेही सर्व राजिंद्रो सजहो १८००० सिलांग रथ के झणझणाट करते सन्मुख हुवे. नवबाड संग्धीन शैन्यके कोटसे घेरे हुये, वैराग्य बाणो की मेघ धारा परे वृष्टी होतेही, कामदेव मृत्यु पाये. उनके तीनही उमराव भग गये. उदर क्षमाचंद्रने क्रोधका, मार्दव सिंहने मानका, और अर्जव प्रसादने दगाका नाश किया. चैतन्यकी शैन्यमें जय २ कार हुवा. चैतन्य निर्विषयी बन शांत सरल हो पर्मानंद भोगवने लगे.

मोह नृप, प्यारे पुत्र और तीनो बलिष्ट उमरावोकी मृत्यु सुन मुर्छा खागये. हाय अहा करने लगे. लाल आँख कर कहने लगे. अब मै खुदही चैतन्य का नाश करूंगा! तब 'लोभ राय' बोले आप जैसे महाराजाको, चैतन्य जैसे बच्चे के साम्हे जाना लाजम नहीं है, मैंने एक उपाय विचारा है, सो यह है की चैतन्य को 'उपशम मोह' नामे [illegible] देनेका लोभ देवो, उसमें गया की उसमें मुग्ध रहे हुवे अपने सुभट उसकी सब शैन्यका नाश कर, आपके ताबेमें कर देंगे. यह सल्ला मोहको पसंद पडी. और कहा जल्दी करो. की तुर्त लोभचंद्र सज हुये. उन्हके साथ हांस, रत्य,

अरत्य, भय, शोक, दुगछा यह उमरावो सपरिवार सज हो चले.

चैतन्यकी आज्ञा ले विवेक चन्द्र धर्म सभामें अपने सर्व मंडलिक और सामंत सुभटोंकी सभा कर कहने लगे. भाइयों! अपना बहुतसा काम फते होगया. और जो कुछ रहा है. वो थोडेमेही पार पडनेंकी आशा है. परन्तु गुप्त चूलची द्वारा खबर मिली है की उपशम किल्लेमें मोहने गुप्त सुभटो बेठा रखे हैं. इस लिये किसीभी लालचसें ललचा, उस किल्लेमें कोइभी प्रवेश मत करना. रस्ते के सर्व उपसर्ग अडग पणे सहे, क्षिण कषाय किल्लेमें प्रवेश करें की, जिससे मोहका एक क्षिणमें प्राजय कर, इच्छित काम फते हो. यह विवेक का बोध सर्वने सहर्ष बधा लिया. और तुर्त स जहो क्षिणमोह किल्लेकी तर्फ प्रयाण किया.

रस्तेमें 'लोभचन्द्र' मिल गये. और मधुरतासे कहने लगे, अब क्यों भगते हो, हमारा सत्यानाश तो तुमनें मिला लिया. अब सब तुमाराही हैं, डरो मत! यह 'उपशम कषाय' किल्ला तुमाराही हैं. इसमें बे फिकर रहो. मोह रायतो बेचारे चुपचाप बेठे हैं. अब तुम्हारा नामही नहीं लवेगे.

इन सब दगोसे विवेक ने अव्वलही वाकेफ

किये थे. इस लिये लोभके मिठे बचनसे कोइ ठगाये नहीं, और आगे चलने लगे. तब लोभचन्द्र असुरत्र हो सपरिवार सामे हुया, अरे दुष्टो! मेरें भाइयोंको मार कहां जाते हो, अब मै तुमें छोडने वाला नहीं!! यों कहे सर्व शैंन्य युक्त चैतन्यकी शैंन्य पर. इच्छा त्रष्णा मुर्च्छा,कांक्षा गृधता आशा इत्यादी बाणोंकी वृष्टी करने लगे, की उसही वक्त चैतन्यने क्षायिक बाणोका प्रहार कर लोभका सपरिवार नाश कर. बे फिकर हो क्षिण कषाय किल्लेमें भराके परमानंद पाये.

लोभचंद्रका सपरिवार नाश कर क्षिण कषाय किल्लेमे चैतन्यने निवास किया है. ऐसी मोह कों खबर होतेही सतंगे ढिले पडगये. जीतनेकी आशातो दूर रही, परंतु इज्जत और जान बचना मुशीबत हो गया. तो भी मानके मरोडे आप खुद चैतन्यका प्राजय करने खडे हुये. सब ज्ञानावरण आदी सात महा मंडलिक राजा, अपने असंख्य दल बलले साथ हुये. सब साथ चैतन्यकी तर्फ चले.

यह चैतन्यको खबर होतेही क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक यथाख्यात चारित्र, यह महा पराक्रमी राजाओंके साथ, करण सत्य, भाव सत्य, योग सत्य, वरक्तसे सज हो वितरागी. अकषायी, शस्त्र ले, संपूर्ण

संबुडता रूप चारो तर्फ बंदोबस्त कर, संपूर्ण भविता त्म रूप मद छक हो. महाज्ञान बार्जित्रोंके झणकार सें, महाध्यान निशाण फर्राते, महा तप तेज कर दीपते, अमोह अविकारी पणे. अपडवाइता द्रढताधार. क्षपक श्रेणि रूप चौगानमें सब परिवारसे परवरे खडे हुवे

चैतन्यको ऐसे ठाठसे सामे खडा देख, मोह मद छक हो बोला, रे चैतन्य! तूं मेरे घरमें बडा हुवा, अनंत काल मेरी सेवामें तुजे हुवें, निमक हरामी! अब मेरे सेही लडने तैयार हुवा, यह तुजे जो ऋधि प्राप्त हुइ हैं. सो सब मेराही पुण्य प्रताप हैं; ऐसी २ ऋद्धि तुजे पहले केइ वक्त मिली, और तूं केइ वक्त मेरा सामना किया. अनंत वक्त तेरी मैने क्ष्वारी करी. तो भी तूं नहीं शरमाय और सब बीती भूल, मेरा सामना कर ता है. लिहाज कर २ शरमा आवतो जरा!!

चैतन्य—हांजी मेरी लाज को गमा, अनंत कालसे मेरी फजीती करनेवाले आपको अब मैने पेछाने, तबही मुजे लिहाज पैदा हुइ. तबही तुमारे सर्व परिवार का नाश कर तुमारे सामे अडग खडा हूं. तुमे भी मरनेका शोक हुवा हैं. जो सबका नाश देखतेही मेरे सामे आये हो, तो संभालिये. इत्ना कहतेही चैतन्यने मोहके मस्तकमें क्षायिक खड्गका प्रहार कर

मोहका नाश किया. उसी वक्त ७ मंडिकोमेंसे ज्ञानावरणिय, दर्शनावर्णिय, और अंतराय इन तीनोका स्वभाविक नाश होगया. उसी वक्त आकाशमें सब देवताओंनें जय २ कार किया. श्रेष्ट द्रव्यकी बृष्टी करी. देव धुंदवी बजने लगी. चैतन्य महाराज को कैवल्य ज्ञान कैवल्य दर्शन रूप महा ऋधी की प्राप्ती हुइ. और तीनही लोकमें चैतन्यकी आण दुवाइ फिर गइ. सर्व जक्तके वंदनिय पूज्यानिय चैतन्य महाराजा हुवे.

विवेक मंत्रीश्वर की सल्लासे, चैतन्य रायका सब काम सिद्ध हुवा जाण, सब परिवारसे संयम मेहल में परमानंद भोग लगे, एक दिन विवेकचन्द्रजी बोले स्वामी आपके इष्टितार्थ सिद्धीसे मै बडा खुश हुवा. हूं. और आप सर्वज्ञ सर्व दर्शी हुये. इस लिये मै आपको किसी प्रकार सल्ला देनेभी असमर्थ हूं, आप जानते ही होके आपके चार शत्रू आपसे मिले हुये हैं. उनकाभी कूछ विचार ?

चैतन्य महाराजा बोले कुछ विचार नही. वो बेचार नीबल होके पडे हैं, और वो जो कुछ करते हैं, सो जग जीव का भला होवे, वैसाही करते हैं. मुजे उनसे कुछ हरकत नही हैं. आयुष्य, नाम, गौत्र, और साता वेद निया, ये सब एक आयुष्य के आधार से टिके हैं.

और आयुष्य तो बेचारा स्वभाव से ही क्षिण २ में क्षय होता हैं, सर्वथा क्षय हुवा की, बाकी के तीनही उस के सात क्षय होजायेंगे; की फिर अपन सीधे शिव पूर में जाके, अजर, अमर, अवीकार हो; अक्षय, अनंत, परमसुख के भुक्ता बनेंगे.

अपाय विचया नामे धर्म ध्यान के दूसरे पाये के ध्याता, अनंतकाल से आपय करने वाले, कर्मशत्रू ओंका नाश करने का विचार, एकाग्रतासे तथा भूत-हो चिंतवनाकरें. और कर्मवृधी के कामोंसे निवृती भाव धारनकर, आत्मा सुख के उपायमें संलग्न बन, मौक्ष मार्ग मे प्रवृतनें सामर्थ्य बने वो कोइ कालमें सुखके भुक्ता जरूरही होवेंगें.

तृतीय पत्र-"विपाक विचय"

हा! हा: क्या आश्चर्य कारक इस जगतका बनाव द्रष्टि आता है. जीव जीव सब एकसे हो, कोइ सुखी तो कोइ दुःखी, ऐसेही, नीच, ऊंच, मूर्ख विद्वान, दारिद्री श्रीमंत, वगैरे विचित्र रचना दिखती है. इसका क्या कारण? जीव अपना आपही तो बूरा न करे! इस लिये बुरे उपाय कराने वाला, जीवके साथ दूसरा भी कोइ है? दूसरा कौन है? (जरा विचार

कर) हां, जो अपाय विचय में विचारसे पेछाना था वोही, अंदर रहा हुवा कर्म रूप शत्रू हैं. वो दो प्रकारके विपाक उत्पन्न करता है. (१) अशुभ कर्म रूप कडुवा और (२) शुभ तर्क रूप मीठा. शुभ कर्मके फल भोगवते जीव मजा मानता है. जिससे अशुभ बंध होता है. और दुःख भोगवता है. यो अशुभका क्षय होते शुभकी वृधी होती है. ऐसा रात्री दिवस की तरह यह सिलसिला अनादी काल से चलाही आता है.

अब शुभाशुभ कर्मों उपराजन करनेकी रीती शास्त्रानुसार विचारनेकी आवश्यकता है. की कौनसे कर्मोंसे जीव सुख पाता है. और कौनसे से दुःख पाता है.

१ प्रश्न--श्रोत इंद्रीकी हीनता कायसे होय? उत्तर--विकथा श्रवण कर खुश होय, सत्य को असत्य और असत्यकों सत्य ठहराय, बधीर (बैरे) की हांसी करे, चीडावे. अन्यको बधीर बनाने उपचार करे, दीन गरीबोंके करुणा मय शब्दो अजीजीपर ध्यान नहीं दिया, सद्बोध शास्त्र श्रवण न करे. इत्यादी कर्मों करनेसे बधीर (बैरा) होवे. कानका रोगिष्ट होवे. तथा चौरिंद्री पना पावें.

२ श्रोत इन्द्रिकी प्रबलताकायसे होय? उ.--शास्त्र और सूकथा श्रवण करे. यथातथ्य (जैसा का वैंसा) श्रधान करे, बधीरोंकी दया करे. यथा शक्त सहाय करे, दीनोकी अर्जपे गौर कर मिष्ट बचनसे संतोषे, गुणीयोके गुण सुण हर्षावे, निंदा श्रवण नहीं करे तो श्रोतेंद्री (कान) निरोग्यता सुन्दरता तिव्रश्रुता पावे, तथा पाचेंद्री पणा पावें.

३ प्र.-.चक्षू इन्द्रिकी हीनता कायसे होय? उ.--स्त्री पुरुषके सुन्दर रूपको देख विषयानुराग धरे, कूरूपा देख दुर्गंच्छा निंदा करे, अन्धोकी हँसी करे, चिडावे, मनुष्य पशूकी आँखोको इजा करे या फोडे. कूशास्त्र व पुस्तक पत्र आदी पढे, नाटकादि अवलोकन करे, नेत्रके विषयमें आशक्त होनेसे या करूर द्रष्टीसे देखनेसे नेत्रकी कुचेष्टा करनेसे अन्धा, काणा, चीवडा वगैरे नेत्रका रोगी होवे, तथा तेंद्री पना पावे.

४ प्र.--चक्षु इन्द्रिकी प्रबलता कायसे पावे.? उ--साधू साध्वीयोंके दर्शनसे हर्षावे, धर्मानूराग धरे, विषय जनक रूप देख तुर्त द्रष्टी फेरले, नेत्रके रोगीयोंकी दया करे, सहायता करे, सत्सास्त्र व पुस्तक पत्रोंका पठन करे, विषयसे नेत्रवशमे करे, तो निरोगी सतेज, मनहर. दीर्घ विषयीं आँखो पावे.

५ प्र--घणेंद्रीकी हीनता कायसे पावे? उ--सुगन्धी पदार्थोंका अनुराग हो. अत्र पुष्पादी सेवन करे, दुगंधका द्वेषी हो, नाशिका हीनकी (गुंगेकी नकटेकी) हांसी करे, दुःख दे. अन्य मनुष्य, पशू, पक्षीयादिका नाशिकाका छेदन भेदन, करावे, तो गूंगा नकटा, या बेंद्री होवे.

६ प्र--घणेन्द्रिकी निरोगता कायसे पावे? उ--परमात्मा साधूया साध्वी, जेष्ट जन गुणी जनके सन्मुख नाक नामवे, (नमस्कार करे) सुगन्धी पदार्थोंमें गृध न बने, नाशीका हीनकी साहयता करे, तो सुशोभित निरोगी, नाशीका पावें.

७ प्र--जिभ्या इन्द्रिकी हीनता कायसे पावे? उ--मदिरा, मांस, कंद, मूल, आदी अभक्ष खावे, षड्रस पदार्थमें अत्यंत लोलुता धरे, रसना पोषणे हरी काया दीका महारंभ करे, असद्बोध कूउपदेश कर हिंशा फेलावे, पाखंड बडावे, मर्म मोसे प्रकाशे, कर्कश कठोर भाषा बोले, झूट बोले, मुक्केकी बोबडेकी हांसी करे, संत सती गुणी जनोकी निंदा करे, अन्यकी रसना (जिभ्या) का छेद भेद करे. श्वासोच्छवास रुंधन करे, तो जिभ्याकी हीनता पावे. बोबडा मुक्का होवे, उसके असुहामण बचन लगे. मुख दुर्गंध निकले, तथा एकें-

द्री पणा पावे.

८ प्र-रस इन्द्रिकी निरोगता कायसें पावे? उ-अभक्ष त्यागे, रस ग्रधी नहो. सद्बोध कर धर्म फेलावे सदा गुणोंकाही उच्चारण करे, सर्वको सुखदाता बोले रसना हीनकी सहायता करे, तो रसनाका निरोगी, मधूर अलापी होवे.

९ प्र-हस्तकी हीनता कायसे पावे? उ-अन्यके हस्त छेदन करे, खोटे तोले मापे वापरे, खोटे लेख लिखे, कूशास्त्र बणावे. चोरी करे, लूले (हस्त रहित की) हांसी करे, दूसरेका छेदन, भेदन, मारताड करे पक्षीयोंकी पांख काटे. तो लूला (हाथ रहित) होवे.

१० प्र-हस्तकी प्रबलता कायसें होय? उ-दान देवे, खोटा लेन देन नहीं करे, खोटे लेख नहीं लिखे, अच्छे धर्मिबृधके लेख लिखे, विनादी वस्तु ग्रहण नहीं करे, हस्त हीनकी सहायता करे, तो निरोगी बलिष्ट हाथ पावे.

११ प्र-पांवकी हीनता कायसे होय? उ-रस्ता छोडके चले, हिंशादी पाप कर्मोंमें आगे बढे, धर्म कार्यमें पीछा हटे, कच्ची मट्टी, पाणी, हरी, कीडीयादीकों पांवसे दाबे, चांपे, अन्य छोटे बडे, जीवोंके पांव तोडे लंगडे पांगले, की हंसी करे' चोरी जारी आदी कू का-

यमें प्रवृते तो पांव हीन लंगडा पांगला होवे.

१२ प्र-पांवकी प्रबलता कायसे पावे? उ--कूरस्ते जावे नहीं, अन्य जातेको बचावे. सजीव पदार्थपे पांव न दे, लंगडे पांगुलेकी सहायता करे, तो निरोगी ब-लिष्ट पांव पावे.

१३ प्र--निर्धन (दरिद्री) कायसे होवें? उ--चोरीसे दगासे, धूर्ताइसे, ठगाइसे, जुलमसे हिंशकारी कूवैपा-रसे द्रव्योपारजन करे, (धन कमावे) धनेश्वरोंपे द्वेष करे, उनको निर्धन बनाना चहावे, मेहनतसे स्वल्प धन कमाया उसे लूटे, घर, अन्न, वस्त्र, सें दुःखी करे, गरीबोंकों वाक्य प्रहार करे, झूटा आल दे फसावे. अ जीवकाका भंग करे, तथा साधू होके धन रक्खे, दूसरेके कमाइमें अंतराय दे, थापण दबावे तो निरधन होवे, और किसीका धन अग्नीमें जलावे तो उसकाभी आग (लाय) में जले, पानीमें डूबावे तो झाजादी पाणीमें डूबे. इत्यादी जिस तरह दूसरे के द्रव्यका नाश करे, वैसेही उसके द्रव्यका नाश होवें.

१४ प्र--धनेश्वरी कायसे होय? उ--निरधनों (दारिद्रियों) की दया करे, उनकी सहायता करे, अन्यकी द्रव्यवृद्धी देख हर्षावें. प्राप्त द्रव्यपे ममत्व कम कर, दान, पुण्य धर्मोन्नती, अनाथोंकी सहाय इत्यादी सूक्ष

रयोंमें द्रव्य लगावे तो धनेश्वरी होवें.

१५ प्र–अपुत्र्या कायसे होवे? उ–पशु, पक्षी, और मनुष्यादीके अनाथ बच्चोंको या यूका (ज्यूं) लीखोंको मारे, अन्डे, फोडे, पुत्रवंतोपें द्वेष करे. गाय, भेंस, आदी बच्चोंको दूध पीते खेंच ले. बेंच दे. बिछोहा पडावे. बीजोंकी मींजी निकाले. तो अपुत्र्य (पुत्र रहित होवे.

१६ प्र–पुत्रवंत कायसे होवें? उ–पशु, पक्षी, मनुष्यादी के अनाथ बच्चोंका रक्षण, पालण कर, जन्म निर्वाह करने जैसे बनावे तो बहुत पुत्रवंत होवे.

१७प्र–कुपुत्र कायसे होवे? उ–अन्यके पुत्रोंको कूबुद्धी दे के माता पिता का अविनय करावें पितापुत्र का झगडा देख खुश होवे. फूट पडावे. अपने माता पिता को संताप देवे, तथा ऋण और थापण डूबावे, तो उसके कपूत (अविनीत) पुत्र होवें.

१८ प्र–सूपूत्र कायसे होवें? उ–आप माता पिता की भक्ती करें, अन्यको करनेका बोध करें. * पुत्रोंको धर्म मार्गमें लगावें, सूपुत्र देख हर्षाये तो सूपुत्र्या होवें.

---

* उववाइजी सूत्रमें फरमाया है की माता पिता की भक्ता करनेसे १४ हजार वर्षके आयुष्य वाला देव होवे.

१९ प्र--कू भारज्या कायसे मिले? स्त्री भरतार के आपमें क्लेश करावें, उनके झगडे देख हर्षावे. स्त्रीको भरमावे, विभचारणी बनावे, सतीयोंकी निंदा करे कलंक चडावे. अन्यकी अच्छी स्त्री देख दुःखी होवे, तो कूस्त्री मिले.

२० प्र--सूभारजा कायसे मिले? आप सीलवंत रहे विभचारणीके प्रसंगमें वृत न भांगे,विभचारणीको सुधारे सतीयोंकी परसंस्या और सहायता करे. स्त्री भरतार का विरोध मिटावे तो अच्छी स्त्रीका संयोग मिले.

२१ प्र--अपमानी(मानहीन)कायसे होय? उ--अन्य का मान खंडन करे, माता पिता गुरू आदी बृधोंका विनय न करे. गरीब, निर्बुद्धियोका निरादर करे, शत्रूओंका अपमान सुन खुश होय, अपने मुखसे अपनी परसंस्या करे. अपने गुणका अहंकार करे, गुणवंतोका द्वेष करे, गुणवंतोको वंदना न करे. दूसरेको मना करे, स्वछंद चले, तो अपमानी होवें.

२२ प्र--सन्मान कायसे पावे? उ--तिर्थंकर, साधू साध्वी, श्रावक, श्राविका, सम्यकद्रष्टी, ज्ञानी, गुणी, धर्मदीपक, इत्यादी महाजनोके गुणग्रामकरे, गुणदीपावें. जेष्टोकाविनय भक्तीकरे, कीर्तीसुणहर्षावें, वंदनाकरे करावे. गुणीजनहो गुणोंको छिपावें, सदानम्ररहे, तो.

सर्व स्थान सन्मान पावें.

२३ प्र--क्लेशी कुटम्ब कायसे मिले? कुटम्बमें झगडा करावे. क्लेश देख हर्ष पावे तो, क्लेशी कुटम्ब मिले.

२४ प्र--अच्छा कुटम्ब कायसे मिले? कुटम्बमें सम्य करावे. निरद्रव्य कुटम्बोकी सहायता करे. कुटम्बमें संप देख हर्षावे तो सुखदाइ कुटम्ब मिले.

२५ प्र--रोगिष्ट कायसे होवे? उ--रोगीयोंको संतापे, निंदा करे, हँसी करे, औषध दानकी अंतराय दे, रोग बढाने अशाता उपजानेका उपाय करे, साधूवोके वस्त्र मलीन देख दुगंछा करे तो रोगीष्ट (रोगीला) होवे.

२६ प्र--निरोगी कायसे होवें? उ--दीन दुःखी यों को रोगीष्ट देख दयालावें, सुख उपजावें. साधू साध्वी को, औषध दानदे, से निरोगी होवे.

२७ प्र--क्रूर स्वभावी कायसे होवे? उ--कू संगतसे खुश रहे, सत्यसंगसे अलग रहें, बात २ में संतसहो, तथा नर्क गतीसे आय हो सो. क्रूर स्वभावी होवे.

२८ प्र--मिळापू कायसे होवे? उ--साधू के दर्शन से प्रसन्नहो, कूसंगत्यागे, कूबचन सुन धैर्य धरे, प्राप्त वस्तुपें संतोष धरे. तथा देवगतीसे आय हो. सो सू-स्वभावी (मिलपू) होवे.

२९ प्र--पापात्मा कायसे होवे? उ--लोकोकों धर्म

से भृष्ट करे, सत्धर्मकी निंदा करे, कू धर्म की महीमा करे. अधर्मीयोंकी संगत करनेसे पापात्मा होवे.

३० प्र--धर्मात्मा कायसे होवे? उ--अधर्मीयों को धर्मी बनावे, धर्मोन्नती तन धनसे करनेसे.

३१ प्र--निर्बल कायसे होवे? उ--दिन,गरीबों का सताये. अन्न वस्त्रकी अंतरायदे, निर्बलको दबावे, झगडाकरे. बध. बंधनकरे, अपने बलका अभीमान करे तो निर्बल होवे.

३२ प्र--बलवंत कायसे होवे? उ--दीन, अनाथ जीवोंकी दया कर साता उपजावें. संकटमें सहाय करे, अन्न वस्त्रादी प्रदान करे. तो बलवंत होवे.

३३ प्र--कायर कायसे होवे? उ--अन्य जीवकों भय उपजावें, धस्का पाडे, इज्जतलूंटे, राज, पंच, चोर, सर्प, विष, अग्नी, पाणी, देव. भुत इन भयंकर वस्तुओं के नामलें, दूसरे कों भय भीतकरे, पशुओं को त्रासदायक बनावे व चमकावें, उन्हे देखहर्षावे, सो कायर होवें.

३४ प्र--सुरवीर कायसे होवे? उ--दीन, दुःखी, अपराधीको अभयदानदे, भयसे बचावें उपद्रव मिटावे, सो सूरवीर होवे.

३५ प्र--कृपण कायसे होवे? उ--इत्ते द्रव्य (धन-

होतें) दान नदे, दूसरे कों देतां मना करे. देतेको देख दुःखीहोवें, दानकी निंदा करें अत्यंतत्रष्णवंता, सो कृपण होवे.

३६ प्र--दातार कायसे होवे? उ--गरीबी(दारिद्रता) होतेभी दान दे, दूसरेको देते देख खुश होवे, समर्थ हो दीन. दुःखीकी सहायता करे, सदा दान देनेकी अभीलाषा रक्खे धर्मोन्नती सुन हर्षाय, सो श्रीमंत हो, दातार होवे,

३७ प्र--मूर्ख कायसे होवे? उ--विद्वानो पंडितोकी हँसी, मस्करी, निंदा, अविनय, अशातना करे, ज्ञान प्रसारकी अंतराय दे, ज्ञानके उपकरण पूस्तकादी नाश करे, ज्ञानपे अरूची करे. ज्ञान चोरे, सत्य शास्त्र को झूटे बनावे, और झूटेको सच्चे बनावे. तो मूर्ख होवे.

३८ प्र--पण्डित कायसे होवे? उ--विद्यादान दे, विद्याप्रसार में धन, तन, का व्यय, करे, विद्वानोंकी महिमा करे, धर्म पुस्तकोका मुफतमें प्रसार करे, सो पंण्डित होवे.

३९ प्र--पराधीन कायसे होवे? उ--अन्यको बंदीखानमें डाले, बहुत मेहनत करा थोडी मजूरी देवे. कर्जदारोका घर लुटे. इज्जत ले. कुटम्ब को, नौकरो को, अहार की अंतराय दे, जबरदस्तीसे काम करावे,

पशु पक्षीको बाडेमें, पिंजरेमें, रोक रक्खे, दूसरेको पराधीन देख खुशी होवे. दूसरेकी स्वाधीनता नष्ट करे सो पराधीन होवे.

४० प्र--स्वाधीन कायसे होवे? उ--कुटम्बको, नोकरोको संताप न दे; अहार, वस्त्र, स्थानकी साता दे, शक्ती उप्रांत काम नहीं कराय. मनुष्य, पशू, पक्षी, आदीको बंदीखानेसें छोडावे, स्वाधीन करे, अपणा स्वछंदा रोकके गुरूके च्छंदे, (हुकममें) चले, सो स्वाधीन स्वतंत्र होवे.

४१ प्र-- कुरूप कायसे होवे? उ--आप रूपवंत हो अभीमान करे, दूसरे सुरूपवंतोंकी निंदा करे, कुरूपोंकी हाँसी अपमान करे, आल चडाय श्रृंगार बहुत सजे, सो कूरूपी होवे.

४२ प्र--सुरूप कायसे पावे? उ-सुन्दर होके भी अभीमान न करे, सुरूपणी स्त्रियादिको बिकार द्रष्टीसे नहीं देखे, कुरूपोंका निरादर न करे, सील पाले सो सूरूप होय.

४३ प्र--धन विलस क्यों नहीं सके? उ-अन्यको खान पान वस्त्र भूषणकी अंतराय दे. आप और समर्थ हो अच्छे भोग भोगवें, आश्रितोंको त्रसाय, अन्यको भोगोपभोग भोगवते देख आप दुःखी होय, वो धन प्राप्त होके भी भोगव नहीं सके.

४४ प्र--सुख विलासी कायसे होय? उ--आपको प्राप्त हुये भोगोप भोग भोगवे नहीं. अपने भोगकी वस्तू दान पुण्यमें तथा स्वधर्मीयोंको दे के पोषे, सो इच्छित भोग भोगवे.

४५ प्र--क्रोधी कायसे होय? उ--आप क्रोध करे, क्रोधीयोंकी परसंस्या करे, मनुष्य, पशु, देवता ओंके जुधकी बातों सुन हर्षावे. शिकार खेले, क्षमवंत को संताप उपजावे, निंदा करे, हाँसी करे सो क्रोधी होवे.

४६ प्र--धूर्त कायसे होय? उ--धर्म करणीमें, दान, पुण्यमें जप, तप, में कपट करे थोडा कर बहुत बतावे पोमावे, सो दगाबाज, धूर्त होवे.

४६ प्र--सरल कायसे होय? उ--सरल भावसे करणी करे, करके पोमावे नहीं, सो सरल स्वभावी होवे.

४८ प्र--चोर कायसे होय? उ--चोर कर्मको अच्छा जाने, चोरको सहाय दे. चोरकी वस्तु ले, चोरकी कला बतावे, चोरकी परसंस्या करे, सो चोर होवे.

४९ प्र--साहूकार कायसे होय? उ--अदत्तवृत्त धारण करे, चोरका परिचय वर्जे, सो साहूकार होवे.

५० प्र--कसाइ कायसे होय? उ--हिंशाकी परसंस्या करे, हिंशा करनेकी कला बतावें. हिंशा के शस्त्र बनावे, दया की निंदा करे, सो हिंशक कषाइ होवें.

५१ प्र--दयाल कायसे होय? उ--हिंशक की संगत वर्जे, हिंशक को उपदेश दे दयावंत बनावे, आजीवका दे हिंशा कर्म छोडावे. सो दयावंत होवे.

५२ प्र--अनाचारी कायसें होवे? विकल भाव रक्खे, अशुद्ध, अभक्ष वस्तु भोगवे, आचारवंतकी निंदा करे, अनाचार सेवनमें आनंद माने. अनाचारीयोंका सहवास करे, अनाचारको भला जाने, सो अनाचारी होवे.

५३ प्र--शुद्धाचारी कायसे होय? अनाचारीयोंको शुद्धाचारी बनावें. अनाचारकी ग्लानी करे, शुद्धाचारीकी सेवा परसंस्या करे, अभक्षको त्यागे. नितीमें प्रवृते, तो शुद्धाचारी होवे.

५४ प्र--भाइयोंमें विरोध क्रायसे होवें? उ--हाथी, घोडे, भेंसे, मेंढे, कुत्ते, मुर्गे, वगैरें जानवरोकों आपस में लडावे. या लढाइ देख हर्षावे, तो भाइयोंमें विरोध (लडाइ) होवे.

५५ प्र--भाययोंमें संप कायसे रहे? मनुष्यों पशूवोके झगडे मिटावे, संप करावे, संप देखके खुश होवें संप रहने उद्यम करे, सो भाइयोंमें स्नेह होवे.

५६ प्र--अंत्तरद्वीपेमे किस कर्मसे उपजे? उ--मिथ्यात्वी साधू आदी कों दान देवें, उत्तम साधू ओंको

कपटसे, फलकी इच्छासे दान देवें, दान दे अभीमान करें, सो अंतरद्विपमें मिथ्यात्वी जुगलिया मनुष्य होवें.

५७ प्र-जुगलिया (भोग भूमीये) मनुष्य कायसें होवे? उ-शुद्धाचारी साधूओं को हुल्लास भावसें शुद्ध आहार, स्थान, वस्त्र, पात्र, देवे, दूसरेके पाससे दिलावे. अन्य को देते देख खुशहोवें सो अकर्म भूमी मे समद्रष्टी जुगलिया होवें.

५८ प्र-अनार्य देशमें जन्म कीस कर्मसे लेवे? उ-खोटा आलचडावें, म्लेच्छो की सुख संपदा अच्छी लगे, म्लेच्छ वेश धारे, म्लेच्छ कामों की परसंस्या करें, आर्यदेश छोड अनार्यमें रहे, सो आनार्य देश में जन्मलें.

५९ प्र-आर्य देशमें कायसे जन्में? उ-आर्यों की चाल चलन पसंदकरे. अनार्य रिवाज कामें छोडे, अनार्य कों आर्य बनावें, मुनी (साधू) की परसंस्या करे, आर्यों को यथा शक्त सहायता करे, तो आर्य देशमें जन्मलेवे.

६० प्र-हम्माल कायसे होवे? मनुष्य, पशु ओं पे गजा (शक्ती) उप्रांत बजन लादे बेगारमें पकडे, जबरी सें काम लेवें, थोडाकहे बहुत वजन भरें, ज्यादा उठाया देख हर्षावे, तो हम्माल, पोठीया, बेल, घोडे

वगैरे होवें.

६१ प्र--कू कवी (भाट चारण) कायसे होवे? उ--कू कथा का प्रेमीबने, लोकीक (मिथ्य) शास्त्रका दान दिया, धर्म कथाका नाम रख विकार उत्पन्न होवें ऐसी कथाकरे, विषय पोषक कवीता रचे, विषय जनराग रागणी सुणे, उनपे प्रेम करे, सो कू, कवी भाट चारण होवें.

६२ प्र--सूकवी कायसे होवे? उ--जिनराज मुनीराजके गुग कीर्तन सुग हर्षलावे, शास्त्रकर्ता गणधरो की आचार्यों की परसंस्या करें. ज्ञानवृधीमें धन लगावें, धर्म कवीयों को सहाय्यदे, धर्मकवीता की गुप्त रहस्यों से हर्षावे सो, विद्वान कवी होवें.

६३ प्र--दीर्घ (लम्बा) आयुष्य कायसे पावे? उ--मरते जीवोंको द्रव्य दे छोडावे. उन्हे खान, पान, स्थानका सहाय दे, बंदीवान छुडावे, संसारमें उदासीनता धरे, दया भाव रख्खे, दीन अनाथोंको सहाय देवें, तो दीर्घ आयूष वाला होवें.

६४ प्र--ओछा आयुष्य कायसे पावे? उ--जीव घात करे, गर्व गलावे, आजीवका का भंग करे, ज्यूं खटमलादी मारे, शुद्ध लेने वाले साधूको अशुद्ध आहार प्रमुख देवें, अग्नी विष शस्त्रादी से जीव मारे, सो अ-

ल्पआयुष पावें.

६५ प्र--सदा चिंता कायसे रहें? उ--बहुत जीवकों चिंता उत्पन्न होवे, वैसी बात करें, अन्यको उदास देख खुशी होवे. सो सदा चिंता करने वाला होवें.

६६ प्र--निश्चिंत कायसे रहें? उ--दूसरे की चिंता का भंग करे, धर्मात्माकों देख खुश होवे, दुःख पीडितको संतोष उपजावे. सो सदा निश्चिंत रहें.

६७ प्र--दास कायसे होवें? उ--नौकरोंको बहुत सतावें, बहुत काम लेवें, परिवारका शैन्याका, अभीमान करे, सो बहुत जनोंका दास होवें.

६८ प्र--मालिक कायसे होवें? उ--धर्मी जनोंकी तपस्वियोंकी वयावच्च करे, धर्मात्मा दुःखी जनोका पोषण करे, अन्यके पास धर्मात्माकी सेवा भक्ती करावे, करते देख खुशी होवे, सो बहुतोंका मालिक होवें.

६९ प्र--नपुशक कायसे होवें? उ--नपुशक के नृत्य गायन, ठठ्ठे देख खुशी होवे. पुरुषको स्त्रीका रूप बना के नृत्य करावें, बैल, घोडे, आदी पशू या मनुष्यका लिंग छेदन करे, नपूंशक से विषय सेवन करे, आप नपूंशक जैसी चेष्टा करे, स्त्री पुरुषके संयोग्य मिलाने की दलाली करें, बेंद्री, तेंद्री, चौरिंद्रीकी हिंशा करे, सो नपूंशक होवें.

७० प्र--स्त्री कायसे होवें? उ-स्त्रीयोंके विषयमें अत्यंत लूब्ध होवें, पुरुष हो स्त्रीका रूप बनावें, स्त्रीयोंकी तरह चेष्टा करे या दगाबाजी करे, सो स्त्री होवें.

७१ प्र-निगोदमें कायसे जाय? उ-देव, गुरु, धर्मकी निंदा करनेसे. कंद मूलता भक्षण करनेसे.

७२ प्र--एकेंद्री कायसे होय? उ-पृथवी, पाणी, अग्नी हवा, वनस्पती, कंद-मूल, वृक्ष, घास, फुल, पत्र, का छेदन, भेदन, करे सो एकेंद्री होवें.

७३ प्र-विक्लेंद्री कायसें होवे? उ--निर्दयपणें, त्रसकी घात करें, अनाज (दाणे) बहुत दिन संग्रह कर रक्खें, त्रस जीव (कीडे) की उत्पाति होवें ऐसी वस्तु का संग्रह कर, उन्हकी घात करें, मच्छर, खटमल, निवारने धूम्रादिक उपचार कर उन्हे मारे, बोर प्रमुख त्रस जीव उत्पन्न होवें, ऐसे फलोंका भक्षण करे, मोरी, गटार में पैशाब करेसो मरके विक्लेंद्री (बेन्द्री, तेन्द्री, चौरिन्द्री) होवे.

७४ प्र--कलंग (अंगोपंग रहित) कायसे होवे? उ--जीवोंकें हाथा, पांव, कान, नाक, अंगुली, यादी अंगोपांगका छेदन भेदन, करे, कान कतरे, बींदे, कंगूरा करे, ऐसा करते देख हर्षावे सो कलंग (अंगोपांग रहित) होवें.

७५ प्र--पूर्ण अंग कायसे होवे? दूसरेके अंगोपांग का छेदन होता देख रक्षण करें, अपंगीकी करूणा करे, उसे सुधारने उपचार करे, आजीवीका चलावे. सहाय देवो तो पूर्णांगी (संपूर्ण अंगवाला) होवें.

७६ प्र--नीच जात कायसे पावे? उ--अपणी उंच्च जाति कुलका अभीमान करें, उच्च की निंदा करें, नीचका द्वेष करें, नीच कामें करे, सो नीच जाती पावे.

७७ प्र--उंच जात कायसे पावे? उ--सत्पुरुषोंके गुण की परसंस्या करे, वंदना नमस्कार करे, अपणें दुर्गुण प्रगट करें, चार तीर्थकी भक्ती करें, यह मनुष्य जन्म पाय तो राजादिक कुलमें जन्में और तिर्यंच होय तो राज्यका मानेता हो सुख भोगवे.

७८ प्र--उंच चातीका दास क्यों बने? उ--उच्च कर्म कर अभीमान करें, गुरुकी आज्ञाका भंग करें, उंच हो दीनोके शिर आल चडावे, उंच्च हो नीच काम करे. सो उंच हो नीच (दासके) कर्म करे.

७९ प्र--प्रदेश फिरके आजीका क्यों करें? उ--भिक्षूकोंको लालच दे, वारंवार फिराय फिर दान दे. नोकरोंकी नोकरी त्रसाय २ दी, धर्म नामसे निकला धन बहुत दिन घरमें रक्खे, काशीदको भटकावे, सो प्रदेश फिर अजीवीका करें.

८० प्र-सुखे अजीव का कायसे मिले? उ-धर्मा-त्मा कों स्वस्थान रहे, अहार, वस्त्रादी पहोंचावे सहा-य दे, उनके पास धर्म वृद्धी करावे. आप स्थिर चित्त सें धर्म ध्यान करे, स्थिर स्वभावीकी कीर्ती करे, सो घर बेठे सुखे अजीवीका कमावे.

८१ प्र-दगाकर अजीवका क्यों चलावे? कपट भावसे दीन जनोंको दान दे. मुनीको भक्ती रहित दान दे, चोरादिक कु कर्मियोंसे आजीवीका चलावे, उनकीं परसंस्या करे, सत्यवृती निर्वाह करने वालेपे कलंक चडावे. सो महा मुशीबत सें दगाकर अजीवी का चलावे.

८२ प्र-सच्चावटसे आजीवका कौन करे? उ-सरल भावसें, विनय सहित, धर्मात्मा कों अहार देवें, दीन की रक्षा करें, निर्दोष आजीवका न मिलनेसे क्षुधादी परिसह सहे परंतु कू वेपार नहीं करे, सो सरलपणे सुखे अजीवीका उपारजन करे.

८३ उ-मनुष्य पशु बजारमें क्योंविके? उ-मनुष्य व पशू कों बेंचे (मोलदेवें) कंन्या विक्रय पुत्र विक्रय करें या मोल दिलाने की दलाली करें सो मनुष्य हो दास (गुलाम) पणे या पशू हो विके वेंचाय.

८४ प्र-सामुदानी कर्म कायसे बन्धे? उ-मनुष्य या पशु

का बध होता होय. वहां देखने बहुत जन खडे रहें, मनमें आय की इसे किती वेग मारे अपन अपने घरजांवें, उनके. तथा बहुत मतांतरी यों एकत्र हो सत्य-देव गुरु धर्म की निंदा करे, उन्हके सामुदानी कर्म बंधते हैं. वो पाणी मे डूब. आगमें जळ, या मारी प्लेगा दी के सपाटे में आ एकदम बहुत मनुष्य मारे जाते हैं.

८५ प्र--एक दम बहुत जीव स्वर्ग में कैसे जावे? उ-- धर्म मौत्सव. दिक्षा औत्सव. कैवल औत्सव धर्म सभा वायखनादिकमें बहुत जन मिल हर्षावें. वैराग्य भाव लावें. उसकी परसंस्या करे. सो एक दम बहुत जीव स्वर्ग या मोक्ष जावें.

८६ प्र--कोइ बिना काम द्वेष करे इसका क्या सबब ? उ-- परभव में किसी को दुःख दिया होय, उस का नुकशान किया होय तो वो बिना दोष ही द्वेष धर ता हैं.

८७ प्र--विना स्नेही स्नेह जगे सो क्या सबब ? उ-- दुःख छोडाया होय. साता उपजाइ हो वन में पहाडमें या सग्रामसें, निराधार हुये को आधार देनेसे. वो पीछा अचिंत्य दुःख में आके सहाय करे. विना कारण प्रेम करे.

८८ प्र--व्यंतरादी व्याधी से मुक्त न होवे सो क्या

कारण ? उ--वेद (हकीम) हो. अनेक जीवों के साथ विश्वास घात करे, जानता हुवा खराब औषध दे. रोग बढाय. और जोतषी हो ग्रह, नक्षेत्र भूत व्यादी आदी डर बताय. दूसरे कों लूटे. देव देवी की मानता कराय; तथा विष शास्त्र अग्नी से आप घात करे सो अत्यंत उपचार करतेंही रोग बिमारी और व्यंतरादी व्याधीसे छूटें नहीं.

८९ प्र--धनेश्वरीका धन धर्म काममें नहीं लगे उसका क्या कारण? उ--अन्यको कूशिक्षा दे, उसका, द्रव्य, वैश्या नृत्यादी कूव्यसन में खरचाय, अन्यका नुकसान सुन खुशी होवें. जुगार सट्टेके वैपारादीमें द्रव्य गमाय, वो धनेश्वरी होके कूमार्गमें धनका व्यय कर सके, परंतु धर्म काममें धन नहीं लगा सके.

९० प्र--गर्भमेंही मृत्यु क्यों पावे? उ--शोकोका या स्वता पोता का औषधोपचार या मंत्रादीसे गर्भ गलावे, पाडे, पडावे, सो गर्भमेंही मृत्यु पावे.

९१ प्र--हित शिक्षा खराब क्यों लगे? उ--अन्यको कूशिक्षा दे कूमार्ग चलावे. गुरूके पिताके, हित वचनही सुने, शिक्षककी हँसी करे, उसे हित शिक्षा अहित कारी हो प्रगमें.

९२ प्र--जाती स्मर्ण और अवधी ज्ञान कायसे होय?

उ--तप संयम पाला हो ज्ञानीयोंकी वयावच्च करी हो, ज्ञान की महिमा, बहुमान किया हो उन्हे जाति स्म रण, अबधीज्ञान, उपजे.

९३ प्र--वृत-पच्चखाण क्यों नहीं कर सके? उ-अन्यके वृत भंग कराय. शुद्धवृत्तीके दोष लगाया, अन्यके वृत भंगा देख खुशी हो. पोते वृत ले प्रणामोंमें सक ल्प बिकल्प करे, वार २ वृत भांगे, उससे वृत पच्चखा ण न हो.

९४ प्र--कसाइयों के हाथसे कटे सो कोनसा पाप? उ--कषाइयों से वैपार करे. कषाइयों कों जानवर दिया. कषाइके कृत्य करें, दगासें घात करे, बनचरों-की सिकार करें, मांस खाय, सो पशु हो गषाइयोंके हाथसे कटे.

९५ प्र--पाप कर धर्म माननेका क्या सबब? उ-- भ्रष्टाचारीकी संगत करे. पाप कार्यमे धर्म कहे, सत्य देव, गुरू, धर्मकी निंदा करे, वो पापमेंही धर्म मानने.

९६ प्र--बिभ चारी क्यों होवे ? उ--वैश्या के की-शव कमाय. या वैश्या का संग करे. कुसीलीये की प-रसंस्या करें तिर्यंच तिर्यंचणी का संयोग मिलावें, सं-योग देख हर्षाय सो बिभचारी होवें.

९७ प्र--सीलवंत काय से होवें ? उ--शीलपाले.

शीलवंत की महिमा, करें सीलवंत की सहायता करें. कुशीलीयों का संग छोडे. सो शीलवान होवें *

९८ प्र--ऋद्धिवंत कायसे होवे? उ-सूपात्रमें दानसे

९९ प्र--मांगनेसे ही वस्तू क्यों नहीं मिले ? उ-धनवंत हो दान नदेवे आश्रितो को त्रसानेसे.

१०० प्र-भिक्यारी कौन होवे? उ-छिद्री और निंदक.

१०१ स्त्रीयों क्यों मरें ? उ--बहुत स्त्रीयों का पति हो उन्हे मारेन से.

१०२ प्र--भ्रमित चित्त क्या रहे? उ--मदिरा भांग, अफीमादी कैफी वस्तु सेवन करनेसे.

१०३ प्र--दहाज्वर कायसे होवे ? मनुष्य पशुपे ज्यादा बजन लादनेसे.

१०४ प्र--बाल विध्वा क्यों होवें? उ--पतिकी घात कर बिभचार सेवनेसे. पतिका आपमान करनेसे.

१०५ प्र--मृत्यु बांझा क्यो होवे? उ--पशु पक्षी के बच्चे, अन्डे मारनेसे. या लीखों फोडनेसे.

१०६ प्र--ज्यादा पुत्री क्यों होवे? पाणी पीतें पशु ओंको रोकके मारनेसे. बहु पुत्रीयेकी निंदा करनेसे.

१०७ प्र--विध्वा पुत्री क्यों होवे? उ--धर्म का धन खाय तो. धर्म के उप करण चोराय तो.

---

* यह ९७ बोल सुदृष्ट तरंगणी दिगाम्बर ग्रन्थमें के है.

१०८ प्र--मैंद कायसे होवें? उ-मदिरा मांसके भोगवनेसे. मैंद वालेकी हँसी करनेसे.

१०९ प्र--अपच्छाका रोग कायसे होवे? उ--साधू को खराब अहार देनेसे.

११० प्र--क्षयनरोग कायसे होवे? हड्डीका वैपार करे, सेहत (मद्य) झाडे तो.

१११ प्र--कूरूप बेडोल मुख कायसे होवे? उ--दानेश्वरीकी निंदा करनेसे. मुखका बहुत श्रृंगार करनेसे.

११२ प्र--छोड कायसे रहे? उ--गर्भपात करनेसे.

११३ प्र--स्थानभ्रष्ट कायसे होवे? रस्ते परके झाड काटनेसे. आश्रितों का आसारा छोडानेसे.

११४ प्र--श्वेत कुष्ट कायसे होवे? गौवध, कंन्या विक्रय, करनेसे तथा साधू हो व्रत भंग करनेसे.

११५ प्र--पुत्र वियोग कायसे होवे? उ--गाय, भेंस के बच्चेको दूध न पानेसे. पशु पक्षीके पुत्र मारनेसे.

११६ प्र--बचपणमें मात पिता क्यों मरे? सरण आयेकी घात करनेसे. मात पितका अपमान करनेसे.

११७ प्र--जलौंद्र कायसे होवे? अभक्ष भक्षणेसे.

११८ प्र--दांत कायसै दुखे? अत्यंत रसनाकी लुब्धतासे. अभक्ष भक्षणेसे.

११९ प्र- लम्बे दांत क्यों होवें? उ--घरोघर निंदा

करनेसे चहाडी चूगली करनेसे.

१२० प्र–मुत्र कच्छ फत्तरी कायसे होवें? उ–रा-णीयों या परस्त्रीयों से गमन करनेसे.

१२१ प्र–गुंगा कायसे होवें? उ–झूटी साक्षी दे गुरु कों गाळी देनेसे,

१२२ प्र–सूलरोग कायसे होवें? उ–पशु पक्षी कों बाणों से मारनेसे सूल काँटे आर चूबानेसे.

१२३ प्र–उत्तम जाती का भीख क्यों मांगे? उ–माता, पिता, गुरु कों मारें या अपमाम करनेसे.

१२४ प्र–गुंबडे मस्से ज्यादा क्यों होवें? उ–पशू पक्षी को पत्थर सें मारनेंसे

१२५ प्र–चमडी फटे तथा दाद क्यों होवे? उ–सांप, बिच्छू, गो खटमल ज्यूं लीख को मारे तो.

१२६ प्र–सदा बीमार क्यों रहे? उ–धर्मादा का खाके धर्म न करेतो.

१२७ प्र–पीनस रोग क्यो होवे? उ–चीडीयो, मयुर, तोते आदी पक्षी मारनेंसे.

१२८ प्र–कुष्ट रोग कायसे होवे? साधूको संताप देनेसे.

१२९ प्र–सरीर कायसे धूजे? उ-रस्ते चलते, वृक्ष त्रण, तोडेतो.

१३० प्र--अर्धांगरोग क्यों होवे? स्त्रीयोंकी हित्यासे

१३१ प्र--नासूर कायसें होवे? पशु पक्षी मनुष्य की नाकमे नाथ डालनेसे.

१३२ प्र--गलिज कुष्टी कायसे होवे ? उ--पशु पक्षी मनुष्य कों फासीदे मारनेसे.

१३३ प्र--हरस (मस्सा) कायसे होवे? उ-नदी तलाव का पाणी सोशनेसे. और जलचर जीव मारनेसे.

१३४ प्र--रातअन्ध कायसे होवे ? उ--त्री सध्या (फजर दोप्रहर शाम) को भोजन कारनेसे.

१३५ प्र--रांधन वायू कायसे होवे ? उ--घोडे. ऊट. बेल बकरे गाडे आदी भाडे देनेसे.

१३६ भगंदर कायसे होवे? उ--अन्डेका रस पीनेसे.

१३७ प्र--उल्लू (घुघु) कायसे होवे ? उ--रात्री भोजन करनेसे. तथा त्रिन देखी वस्तु खानेसे.

१३८ प्र--सिंह सर्प कायसे होवे ? उ--क्रोध. क्लेशमें संतप्त हो आत्मघात करनेसे.

१३९ प्र-- गध्धा कुत्रा कायसे होवे? उ--अभीमान करके वशहो अकार्य कर मरनेसे.

१४० प्र--बिल्ली कायसे होवें? उ--दगा करनेसे.

१४१ प्र--नवल सर्प कायसे होवे? लोभ करनेसे.

१४२ प्र--बाला (नारू) कायसे निकले? बिना छा-

णा पाणी पीवे, जीवाणीका जत्न न करेतो.

१४३ प्र-मनुष्य कायसे होवे? क्षमा दया, नम्रतासे

१४४ प्र-स्त्री मरके पुरुष कायसे होवे? उ-सत्य, शील, संतोष विनय आदी गुण धारन करनेसे.

१४५ प्र-देवता कौन होवे? उ-साधू, श्रावक, तापस और अकाम (मन विन) निर्जरा करनेसे.

१४६ प्र-लक्ष्मी स्थिर कायसे रहे? उ-दान देके पश्चाताप नहीं करे तो.

१४७ प्र-काणा कायसे होवे? उ-वीज, फल, फुल छेदे, हार गजरे वगैरे बनानेसे.

१४८ प्र-गलित कुष्टि कायसे होवे? सुवर्ण चांदी लोहा तांबा वगैरे की खानो खोदनेसे.

१४९ प्र-यश करते अपयश क्यों होवे? उ-सचित औषधी करनेसे. अन्यकृत उपकार न माननेसे.

१५० आँखमें बामणी कायसे होवे? निमक(लुण के आगर खोदनेसे.

१५१ प्र-कांख मंजरी कायसे होवे? सम्यक द्रष्टी हो मिथ्यात्वी का अनार्योंका काम करनेसे.

१५२ रुंड मुंड सरीर कायसे होवे? उ-न्यायाधिश हो कठण दंड देनेसे.

१५३ प्र-कंठमाल कायसे होवे? उ-मच्छीका

अहार करनेसें.

१५४ निरोगी दिखे, और रोगिष्ट होवे सो क्या कारण? उ--लांच ले झूटा न्याय करनेसे.

१५५ प्र-संयोग मिल वियोग क्यों होवे? उ--कृ-त्घनता, मित्र द्रोहो और विश्वास घात करनेसे.

१५६ प्र--डरकण स्वभाव कायसे होवे? उ-कठोर दंडी कोटवाल होवे सो.तथा अन्यको डरावे सो.

१५७ प्र--खुजली कायसे चले? उ-तेंद्री ज्यू लीख खटमल पिस्सू उदाइ दी मारनेसे.

१५८ प्र--ज्यूंवो ज्यादा क्यों पडे? उ--मच्छ अहा-री करनेसे. ज्यूंया अग्नी आदीमें डाल मारे तो.

१५९ प्र--तपस्या क्यों नहीं बने? उ--तप जपका अभीमान करे तो. तप करते अंत्राय देवे तो.

१६० प्र--असुहा मणी भाषा क्यों लगे? उ-वाक्य चातुरीका अभीमान करे तो. कठोर बचन बोले तो.

१६१ प्र--अपयशी क्यों होवे? उ--सासू, नणंद, देराणी, जेठाणी, भाइ भो जाइ का ईर्षा करे तो.

१६२ प्र--तरुणपणे स्त्री क्यों मरे? उ-भोगकी तिव्र अभीलाषा रखे. अमर्याद विषय सेवे तो.

१६४ प्र--छमुछिम मनुष्य कौन होवे? उ--नील, गुलीके कुंड करे छमुछमकी घात करे सो.

१६५ प्र--भूख ज्यादा क्यों लगे? उ--खेतीके कर्म करनेसे. ससक्त आश्रितोंको भूखे मारनेसे.

१६६ प्र--मृगी झोला क्यों आवे? लोहारकी धमण धमे, मृगी, आने वालेको सतावेतो.

१६७ प्र--बोलते वगासी क्यों आवे? उ--रंगार के कर्म करनेसे. तोतले को चीडानेसे.

१६८ प्र--बोलते थुक क्यों उडे? उ--गोबर सडानेसे.

१६९ प्र--झाज कायसे डूबे? उ-पाखानेमें झाडे जावें. मुत्रमें मुत्र करे, सर्व रात्र मुत्रका संग्रह करनेसे.

१७० प्र--खोजा क्यों होवें? उ--बहुत बन कटाइ करनेसे. खोजोंके साथ क्रिडा करनेसे.

१७१ प्र--योवन अवस्थामें दाँत पडजाय श्वेत बाल होवेसो क्या कारण? कोमल वनस्पति का छेदन, भेदन, चटनी कचुमर करनेसे.

१७२ प्र--भरा नीगल (गुम्बडा) कायसे होवे? उ-फलोको चीर मसाला भरनेसे.

१७३ प्र--सरीरमें कीडें कायसे पडे? उ--दूसरेपे घोडेका पिशाब छिटकनेसे. सडी वस्तु खानेसे.

१७४ प्र--साथही सोले रोग कायसे होवे? उ--ग्रामोंको उजाड करे लूटे धाडा, पाडनेसे.

१७५ प्र--पाले हुवे मनुष्य क्यों वदले? रसोइका

वैपार करनेसे. अच्छी वस्तु दिखा खोटी खिलानेसे.

१७६ प्र--१२ वर्ष का छोड कायसे रहे? उ--पेशा-व भेला कर सर्व रात्री रखनेसे.

१७७ प्र--२४ बर्षका छोड कायसे रहे? उ--तिब्र भाव विषय सेवनेसे. गर्भ गलानेसे.

१७८ प्र--सदा सरीर क्यों जले? उ-फूलोंका मर्दन करनेसे. बहोत अत्तर उगटणे लगानेसे.

१७९ प्र--वंझा स्त्री कायसे होवे? उ--फूलका अत्तर निकालनेसे. मनुष्य पशुके बच्चे मारनेसे.

१८० प्र—मृतबांझा कायसे होवे? उ-उगती विनास्पति, कूंपल चूंटनेसे.

१८१ प्र—बहुत स्त्री होके भी पुत्र क्यों न होवे? उ—बहुत विनास्पतीका रस निकालनेसे.

१८२ प्र—हलालखोर कायसे होवे? उ-जलचर जीव बहुत मारनेसे. कसाईके कर्म करनेसे.

१८३ प्र—सशक्त धर्म क्यों नहीं बने? उ—ममइ (मनुष्यका रक्त) बहुत निकाला होवेसो.

१८४ प्र—सरीर भारी कायसे होवे? उ-आसा सराप दारू बहुत पिया होयतो.

१८५ प्र—साधुके सिर आल देवे, शुद्ध आहार लेने वाले साधू को अशुद्ध देवे. तो गर्भमें आडा आवे.

१८६ प्र—नर्क तिर्यंच गतिमें अकाम निर्जरा कर मनुष्य हुवा वो पहले दुःखी हो पीछे सुख पावे, कूलीन के सिर कलंक आवे. शक्त सजा पावे, फिर इन्साफ होनेसें निदोंष ठेहरे छुट जावे.

१८७ प्र—मोक्ष कायसे मिले? उ—ज्ञान दर्शन चारित्र और तपकी सम्यक प्रकारे आराधन पालन स्फर्शन करनेसे. इति

इत्यादी कर्म बन्ध करनेके, और भुक्तनेके, अनेक कारण शास्त्र ग्रन्थमें बतायें हैं. कित्नेक कर्म, इस भवके किये इसही भवमें भोगवते हैं. और कित्नेक आगे के जन्ममे भोगवते हैं. अनंत ज्ञानी सर्वज्ञ भगवंतने संसारी जीवोंकी कर्म विपाकसे होती हुइ दिशा को अवलोकन करी, परन्तु वाणी द्वारा सम्पूर्ण वर्णन कर सके नहीं, क्यों कि सम्पूर्ण विश्व अनंत जीवों कर भरा हैं. और एकेक जीवके अनंत कर्म वर्गणाके पुद्गल लगे है. और एकेक वर्गणाके वर्णादी पर्यायकी अनंत व्याख्या होती हैं. ऐसा अपरम्पार विपाक विचय का वर्णन, भाषा द्वारा कदापि न होसके, तथा

+ ९१ के उपरके बोल गौतम प्रच्छा और धर्म ज्ञान प्रकाशके अनुसारसें कुछ बढाके लिखे हैं.

पि धर्म ध्यानी, ज्ञानी की अज्ञानुसार, विपाक विचय का यथा शक्त विचार करते हुये कर्मों की विचित्रता सें वाकेफ होतें हैं; वो कर्म बन्ध के कारण सें बचके. कर्मक्षय करनेकें मार्गमें प्रवृतन हो, अनंत अध्यात्मिक सुख प्राप्त करतें हैं.

चतुर्थ पत्र "संस्थान-विचय"

संस्थान नाम आकार का हैं. सोजगत का, तथा जगत में रहे हुये पदार्थोंका, आकार का विचार करे. सो संस्थान विचय धर्म ध्यान. अनंत अकाश (पोलार) रुप अनंत क्षेत्र है. की जिसका अंतः पारही नहीं. उसे अलोक कहतें हैं, इस अलोक के मध्य भाग में, ३४३ राजू घनाकार लम्बी चौडी जित्नी जगा में, जीवाजीव व रुपी अरुपी पदार्थ रुप एक पिंड हैं, उसे 'लोक' कहतें हैं, यह लोक नीचे सातमी नर्क के तले ७ राजू का चौडा हैं, और उपर सात राजू आवें वहां मूल से घटता २, मध्य लोक के स्थान एक राजू का चौढा हैं, और वहां से उपर चढते चौडास में बढते २, चार राजु (पांचमें देवलोक तक) आवे, वहां ५ राजू का चौडा है, और चौडास मे घटते २ तीन

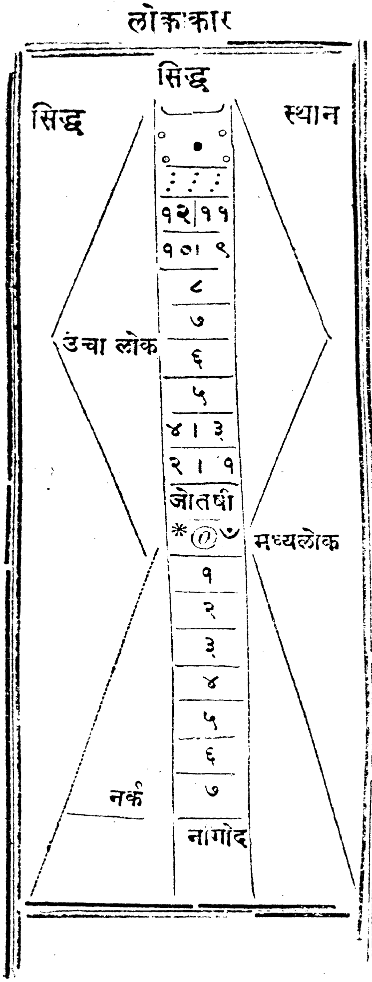

राजू लोकाग्र (मोक्षस्थान) आवे वहां एक राजूका चौडा है. नीचे उलटा उसपे सुलटा और उसपे एक उलटा यों तीन दीवे रखे, तथा पांव पसार कम्मरकों हाथ लगा मनुष्य खडा रहे, इत्यादी संस्थान (आकार) मय लोक हैं. ऐसा कथन भगवति आदी शास्त्रमें लिखा है, इस लोकके मध्य भागमें एक निसरणी जैसी एक राजू चौडी और सातमी नर्कसे मोक्ष तक १४ राजू लम्बी त्रस नाल हैं. उसके अन्दर त्रस और स्थावर दोनों प्रकारके जीव हैं. बाकीके सर्व लोकमें एक स्थावरही जीव भरे है, त्रस नलके नीचेका विभाग सात राजू जिस्नी (उलटे दीवे जैसी) जगामें सात नर्कस्थान है, वहां पापकी अधिकता होती है, वो जीव उपजके कृत कर्मके असुभ फल दुःखी हो भूक्ते है. मध्यमें दोनों दीवेकी संधी मिलती है, वहां गोळाकार

१८०० जोजन उंची जगा हैं. उसे मध्य (तिरछा) लोक कहते है. वहां मध्यमें तो एक लक्ष जोजन का उंचा और नीचे दश हजार जोजनका चौडा उपर एक हजार जौजन चौडा (मलस्थंभ जैसा) मेरु पर्वत है, उसके चारही तर्फ फिरता (चूडी जैसा) एक लक्ष जोजनका लम्बा चौडा (गोळ) 'जंबुद्विप' हैं, उसके बाहिर चारही तर्फ (चूडी जैसा) फिरता दो लक्ष जोजनका चौडा 'लवण समुद्र' है. उसके चारही तर्फ वैसाही फिरता चार लक्ष जौजन चौडा 'धातकी खंडद्विप' हैं. उसके चौगिर्दा ८ लक्ष जोजन चौडा 'कालोदधी समुद्र है' उसके चौगिर्दा १६ लक्ष जोजन चौडा 'पुष्कराद्वीप' हैं.‡ यों एकेककों चौगिरदा फिरते और चौडासमें एकेकसें दुगणे, असंख्यात द्विप, और असंख्यात समुद्र, सब चूडी (बंगडी) के संस्थानमें हैं. मेरु पर्वतके जड में समभूमी हैं, वहांसे ७९० योजन उपर तारा मंडल, वहां से १० जोज उपर * सूर्य का

‡ पुष्कर द्विपके मध्य भागमें गोळाकार (चुड़ा जैसा) मानुक्षेत्र पर्वत हैं. उसके अन्दरही मनुष्य की वस्ती हैं जंबुद्विप धातकी खंड द्विप और आधा पुष्करार्ध द्विप यों अढ़ाइ द्विप कहते हैं.

* चन्द्रमां का विमान सामान्य पणे १८०० कोश चौडा हैं सूर्यका १६०० कोश चौडा. और ग्रह. नक्षेत्र. तारा के विमान जघन्य १२५ कोश. उत्कष्ट ५०० कोश चोडे है और १६ [illegible]

विमान, वहां से ८० जोजन उपर चन्द्रमाका विमान हैं. और उपर २० जोजन के अन्दर सब जोतषीयों के विमान आगये हैं. अढाइ द्विप के अन्दर के जोतषी के विमान आधे कबीठके संस्थान हैं. और बाहिर के इंट जैसे है. आगे उपर (मृदंग के संस्थान) सात राजू मठेरा कुछ कम लोक है, उसे उंचा लोक कहते है. वहां १२ देवलोक, ९ लोकांतिक ९ ग्रीवेक ५ अनुत्र विमान आगये है. इनमें सर्व विमान– ८४९७०२३ है. कित्नेक चौखूणे-कित्नेक तीखूणे और कित्नेक गोळाकार है. वहां पुण्य की अधिकता होती है वो जीव उपज के कृत कर्म के शूभ फल सुख मय भुक्तते है. सर्वार्थसिद्ध विमान के उपर १२ जोजन सिद्ध सिल्ला है सो चित्ते छत्र के जैसी ४५ लक्ष जोजन की लम्बी चोडी (गोळ) है. उसके उपर एक जोज के छट्टे भाग में अनंत सिद्ध भगवंत. अरूपी अवस्था में अलोक सें अड (लग) के विराज मान हैं. यह संक्षमें लोक का और लोक में रहे स्थुल पदार्थों के संस्थानका वरणन किया.

जीवके ६ संस्थात-१ जिसका चारही तर्फ बरो-

तथा १७ लाख ९० हज़ार कोशे चंन्द्रमा पृथ्वीसे उंचा है. वैसा मिथ्यःखंडन सूत्र में लिखा है.

बर अंग होय-अर्थात् पद्मासन से बेठ के दोनो घुटने के बिचमें की डोर और दोनो खन्धे के बिच की डोरी बरोबर आवे. तैसे वोही डोरी वांहा खन्धा और वाये घुटनेके बिच, और डावे खन्धा और ढावे घुटने के बिच बरोबर आवे. जैसे अब्बी कित्नीक जैन मूर्ती का बनाते है. सो 'समच उरस संस्थान' २ जैसे बट (बड) का झाड. नीचे तो फक्त लक्कड का ठूठ रुंढ मुंढ दिखता है, और उपर शाखा प्रतिशाखासें शोभे तैसेही कम्मर के नीचे का सरीर अशोभनीक, और उपरका सरीर शोभनीक होवें, सो 'निगोह परिमंडल' संस्थान. ३ जैसे खुरशाणी अम्बली, उपरको तो ठुंठा निकल जाय, और नीचे शाखा प्रतिशाखा कर शोभे. तैसेही उपरका सरीरतो अशोभनीक, और कम्मरके नीचेका सरीर शोभनीक लगे, सो 'सादी संठाण' ४बावन ठिगना (छोटा) सरीर होयसो 'बावना संस्थान' ५ पीठपे तथा छातीपे कुबड निकले सो 'कुबडा संठाण' ६ आधा जला मुर्दाका जैसा सब सरीर खराब होय, सो 'हुंड संठाण'.

इन ६ संस्थान मेंसे नर्क पांच स्थावर तीन बिक्लेंद्री और असन्नी तिर्यंच पचेंद्री मे फक्त १ हुंड संस्थान पावे. सन्नी मनुष्य और सन्नी तिर्यंचमें ६ ही संस्थान पावे. और सब देवता तिर्थंकर, चक्रवृति, बलदेव,

वासुदेव आदी उत्तम पुरुषोंका एक समच उरस संस्थान होता हैं.

अजीवके ५ संठाण-१ बट्टे गोळ (❀) लड्डू जैसा २ तंसे=तीखुणा ▷ सिंघोडे जैसा. ३ चौरंसे=चौखुणा [] चौकी (बाजोट) जैसा. ४ परिमंडल=गोल ○ चूडी जैसा और पांचमां आइतंस=लम्बा । लकडी जैसा. इन पांचही संस्थानमय, इस चगत्में अनेक अजीव् पदार्थ हैं. बट्टे तो बाटले बेताडादिक, तंसे और चौरंसे सो कित्नेक देवताके विमाण वगैरे. तथा परिमंडल द्विप समुद्रादिक ऐसे औरभी अनेक पदार्थ जानना.

यह संठाण-संस्थानो का जो वर्णव किया इन आकारके सर्व पदार्थोंमें; अपना जीव अनंत वक्त उपजके मर आया है. स्वतः सर्व प्रकारके उंच नीच संस्थान धारण कर आया है. और सर्व संस्थान मय वस्तूका मालिक हो आया है. भोगव आया है. अब्बी ह्यां रे जीव ! तुझे पुण्योदयसे तेरे सरीरका, स्त्रीयादीका, मनोरम्य संस्थान मिलगया. तथा सयनासन, बासन, वस्त्र, भुषण, वाहन, इत्यादी इच्छित ऋद्धी प्राप्त हुइ देख के, क्यों उसके फंदमें फसता है. क्या मरके उसहीमें उत्पन्न होना है? कहते हैं, "आसा वहां वासा" ऐसा जाण, अच्छे संस्थानके पदार्थोंपेसे

ममत्वका त्याग करना. और कोइ वक्त अशुभोदय से अशोभनीक संस्थान मय अपना, सरीर यास्त्रीया दिक कुटम्ब संयोग मिलगया. या अमन्योग सयनासनका योग्य बना तो, खेदित न बनें. क्यों कि संस्थान तो फक्त एक व्यवहारिक रूप हैं, इससे अंतःरिक कुछ कार्य की सिद्धी नहीं होती है. जिससे किसी कार्य की सिद्धी न होवे. उसपे रुष्ट तुष्ट होना येही अज्ञानता जानी जाती है. और भी विचारे की, रे जीव! तूं ज्ञानी बनके भी निकम्मे काममे राग द्वेष कर, कर्म बन्धन करता है, तो तेरे ज्ञानसे तुजे क्या फायदा हुवा. इत्यादी विचार, अच्छे या बुरे, संस्थान मय पदार्थोंपेसे राग द्वेष कमी करे. और सदा एकही आकारमें रहने वाले, जो निजात्म गुण तथा परमात्म स्वरूप है. उस में अपनी प्रणतीको प्रणमावे.

☞ यह धर्म ध्यानकें चार पायोंका संक्षेप में स्वरूप कहा धर्मध्यानके ध्याता इन्हीको यथा बुद्धी प्रमाणें बिचर के धर्म ध्यानमें अपणी आत्माको स्थिर करें.

द्वितीय प्रतिशाखा—"धर्म ध्यानीके लक्षण"

धम्म सणं झाणस्स चत्तारी लख्वणा पन्नंता तंज्जहा—आणारुइ, नीसग्गरुइ, उवदेसरुइ, सुत्तरुइ,

अर्थम्—धर्म ध्यानके ध्याता को पहचाननेके चार लक्षण है. १ जिनाज्ञापे रूची होयसो अज्ञा रुची. २ जिनज्ञान के अभ्यासपे रुची होय सो निसग्ग रुची. ३ सद्बोध श्रवण करनेकी रुची सो उपदेश रुची. ४ जिनागम श्रवण करनेकी रुची सो सूत्र रुची-

रुची नाम उत्कृष्ट इच्छा का है, जैसे-कामी कों कामकी. दामी कों दाम की. नामी कों नाम की, क्षुदित को अन्नकी, त्रषित कों जलकी. समुद्रमें पडे को झाज की. रोगी को औषधी की. रस्ता भूले कों साथ की. इत्यादी कार्यार्थिक कों कार्य पूर्ण करने की, स्वभाविक इच्छा होती है; वो कार्य पूर्ण न होवें वहां लग मनमें तलमल लगी रहे, कार्य पूर्ण होणेसें अत्यं-

त हर्षाय, और वियोग होने सें पीछी वैसीही उत्कं-ठा जगे उसी का नाम रुची है. संसारी जीवोंकी जे-सी रुचि व्यवहारिक पुद्गलिक कामोंकी होती हैं, धर्म ध्यानी की वैसी रुची आत्म साधन के कामों में हो-ती है. यह आत्म साधन के परमार्थिक कामो के मु-ख्या चार भेद किये है.

प्रथम पत्र—अज्ञा रुची

१ आज्ञा रुची; अनादी काल सें यह जीव जिनाज्ञा का उलंघन कर, स्वच्छंदा चारी हो रहे है. जिससेही इत्ने दिन संसार में परिभ्रमण किया. उ-त्तराध्येयन सूत्रमे फरमाया हैं की "छंदो निरोहेण उवेइ मोरकं" अर्थात अपना छांदा (इच्छा) का नि-रुंधन करे जिनाज्ञा में प्रवृतनसे ही मोक्ष मिलती है. इसलिये मुमुक्षु जन कों चाहीये की अपनी इच्छा कों रोक. वितराग की आज्ञा में प्रवृतने का पर्यत्न करे, अब वितराग की आज्ञा क्या है. उसे विचारिये. वितराग=राग द्वेषके क्षय कर-ने वाले कों कहते हैं, जिनोंनें राग द्वेषके क्षयमें ही फायदा देखा, वो राग द्वेष घठानेकी ही आज्ञा करेंगे

यह निसंदेह हैं. ऐसा जाण वितरागकी आज्ञाके इ-च्छक, सदा मध्यस्त प्रणामी रहै. प्रतिबंध रहिंत रहे. सो प्रतिवन्ध चार प्रकारके होते है. १ द्रव्यसें=१स-जीव सो द्विपद. मनुष्य, पक्षिका. चतुष्यपद, पशुओं-का. २ अजीव सो वस्त्र, पात्र, धनादिकका, ३ मिश्र सो दोनो भेले, जैसे, वस्त्रा भुषण, मंडित मनुष्य, पशु, इत्यादी. २ क्षेत्रसें ग्राम, नगर, घर, खेत, इत्यादी. ३ कालसे घडी, प्रहर, दिन, पक्ष, मांस, बर्षादि. ४ और भावसे क्रोधादी कषाय. मोह ममत्व, इन चारही प्रतिबन्ध रहित रहें. * क्षुद्या, त्रषा, शीत तापादी समभाव सें सहन करें, मिष्ट कटु बचनकी दरकार न रक्खे. निद्रा प्रमाद अहार कमी करे, सदा ज्ञान ध्यान तप संयममें आत्मा को रमण करते प्रवृतें (इस आज्ञा रुचीका विस्तार पहलें आज्ञा विचयमें विस्तार से होगया है. वहां कहा सो तो विचार समजना और ह्यां कही सो प्रवृतन करनेकी इच्छा समजना.)

---

* यह श्रावक हमारे, यह क्षेत्र हमारे, इस प्रतिबन्धनमें बंधने से ही इसवक्त वितरागके अनुयायों में धर्म ध्यानकी हानी होके क्लेशकी वृद्धी होती हुइ द्रष्टी आती हैं. आत्मार्थीयों को इस झगडेसे बच, अप्रतिबन्ध विहारी होना चाहीयें की जिससे धर्म ध्यान अखंड रहे.

द्वितीय पत्र-"निसग्गरुची"

२ 'निसग्ग रुची' धर्म ध्यानी पुरुष कों, इस विश्वालय में के सर्व पदार्थ ऐसें भाष होतें हैं, की-जाने मुजे सद्बोध ही करतें है. श्री आचारांग शास्त्र के फरमान मुजब ज्ञानी महात्मा आश्रव के स्थान में ही संबर निपजा लेतें हैं. जैसे*नमीराज ऋषिने प्रेमलाओं के चूडीओं का अवाज सुना उससे (अन्यकों काम राग बृधी करने का कारण होता है) उनोने वैराग्य प्राप्त किया. ऐसे ही झाड, पाहाड, खान, पांन, वस्त्र भुषण, ग्राम, मशाण, रोग, हर्ष, शोग, बादल, वियुत, संयोग. वियोग निर्वृती भाव यह सब वैराग्य उत्पन्न करने के कारण होतें हैं. इत्यादीसे जिनको वैराग्य उत्पन्न होवें सो निसर्ग रुची. और कित्नेक जाति स्मरण ज्ञान सें अपने पूर्व के ९०० भव (जो सन्नी पचेंद्रीय

---

*मिथला नगरी के नमी नरायज़ीके सरीर में दहा ज्वर हुवा, उसवक्त वैदके कहनेसे शांती उपचार के लिये १००८ राणीयों बावन चंदन घिस के लगाने लगी, तव उन सबके हाथ की चुडीयों का एक दम शोर मच गया. तब नमीराय बोले मुझे येशब्द अच्छा नहीं लगता है. की उसी वक्त सब प्रेमलाने शोभाग्यके लिये एकक चूड़ी हाथ में रख सब चूड़ीयो उतार डाली. अवाज बंद होने कारण समजने से विचार हुवा की, बहुत चूडी एक स्थान थी. तबही गडबड थी और एक रहनसे सब गडबड मिट गइ. वसमेंही सबमें फसा हूं वहां तकही दुःखी हूं जो इस वेदनासे मुक्त होवुं तो सब संगत्याग. सुखी बनूं. इत्वा विचारतेही. रोग शांत हुवा और वो दिक्षा ले अनंत सुख पाये

के लगोलग किये होयँ उन्हे) जानने सें. जन्मांतर में कृय कर्म के फल भागेवें हुये देख, वैराग्य उत्पन्न होता है. ऐसे २ अनेक कारणो से। जिनकों तत्वज्ञान प्राप्त करनें की रुची होती हैं. उसको निसर्ग रुची कहना. तथा अन्य मतावलम्बी अज्ञान तप का कष्ट सहने सें, अकाम निर्जरा होने से. ज्ञाना वर्णी कर्म का क्षय उपसम होनें से, विभंगज्ञान की प्राप्ती होवें. उस सें जैन मत के साधू की उत्कृष्ट शुद्ध क्रिया देख. अनुराग जगने सें, विभंगज्ञान फिट अवधी ज्ञान की प्राप्ती होवें तब तत्व ज्ञान पें रुची जगने सें सम्यक्त्व की प्राप्ती हुइ, सो निसर्ग्ग रुची. ऐसे किसी भी तरह-तत्वज्ञता प्राप्त हों, उसमें प्रणाम स्थिरीभूत होवें वो. ही धर्म ध्यानी की निसर्ग्ग रुची का लक्षण जाणना

तृतिय पत्र–"उपदेश रुची"

३ 'उपदेश रुची' श्री तिर्थंकर, केवल ज्ञानी, गणधर महाराज, साधू, साध्वी, श्रावक, श्राविका, सम्यक द्रष्टी, इत्यादीजो शुद्ध शास्त्रानुसार उपदेश करें. उसपे धर्म ध्यानी की रुची जगे सो उपदेश रुची. दशवै कालिक सूत्र के चौथे अध्येयनमें फर माया है.

गाथा सोच्चा जाणइ कल्लाणं. सोच्चा जाणइ. पावगं,
उभयंपि जाणाइ सोच्चा. जंसेयं तं समायरे. ११

अर्थ--सुनने सेही मालम होती है के. अमुक सुकृत्य करने से अपणी आत्मा का कल्याण (अच्छा-भला)होगा और अमुक पाप कृत्य करनेसें बुरा होगा; तथा अमुक काम करने से, अच्छा और बुरा दोनो ऐसा मिश्र काम होगा जैसे की काम भोग में सुख तो थोडा है, और दुःख अनंत है, यह दोनो बात समजे. तथा मिश्र पक्ष जो ग्रस्थ धर्म हैं. जिसे शास्त्र में 'धम्मा धम्मी' तथा 'चरीत्ता चरित्ते' कहे हैं. क्यों-कि संसार में बेठे हैं सो विना पाप गुजरान होना मुशकिल ऐसा समज, उदासीन वृति से पश्चाताप युक्त काम पूरता कर्म करतें हैं. और आत्म कल्याण का कर्ता धर्म कों जाण. जब २ मौका मिलता हैं- तब २ अत्यंत हर्ष युक्त धर्म क्रिया करते है. यह तीनही बातों सुनने सें मालम पडती है. उसमें से अच्छी लगे उसे स्विकार के सुखी होतें है. ये सब उपदेश सेही जाणा जाता है. उपदेश (वाख्यान) में सदा अभीनव तरह २ का सद्बोध श्रवन करने सें स्वभाविक तत्त्व रुची तत्वज्ञता उत्पन्न होती है. ध्यानस्त हुये वो बोध नत्व में रमण करता है. तब अन्य सर्व वर्ती सें चित

निवृत हो, एकांत धर्म ध्यानहीमें लग, ध्यान की सि-द्धी करता है. इस लिये धर्म ध्यानी उपदेश, श्रवण, मनन, निध्यासन, और उसी मुजब प्रवृतन करने म अधिक रुची रखते है.

चतुर्थ पत्र-"सूत्र रुची"

४ सुत्र रुइ--सुत्र द्वादशांगी भगवंत की वाणी कों कहते है. सो १ आचारांग जिसमें, साधू के आचार गोचार वगैरे वर्णव है. २ सुयगडायंग जिसमें-अन्य मता लम्बीयों के मत का श्वरूप बताके उसका निराकरण किया है. ३ ठाणायंगजीमें दशस्थान का अधिकार है. ४ सम वायंगजी में, जीवादी पदार्थ के समोह का संख्या युक्त स-मवेस किया हैं. विवहा पणंती (भगवति) में विवि ध प्रकार का अधिकार है. ६ ज्ञातामें धर्म कथा ओं है. ७ उपाशक दशा में दश श्राव कों का अधिकार है. ८ अंतगड दशांग में, अंतगड केवलीयों का अधि-कार. ९ अणुत्र रोवबाइ में, अणुत्र विमन में उपजे उनका अधिकार. १० प्रश्नव्याकरण में, अश्रव संबर

कथा और १२ द्रष्टी वादांग में सर्व ज्ञान का समवेश किया था.

यह द्वादशांगी श्रीजिनेश्वर भगवानकी वाणी. अगाध ज्ञान का सागर है. तत्वज्ञान कर प्रतिपूर्ण भरी हुइ है. ज्ञाता को अपूर्व चमत्कार ह्रदयमें उत्पन्न करती है. आत्म श्वरूप बताने वाली, मिथ्या भर्म मिटाने वाली, मोह पिशाच भगाने वाली, मोक्ष पंथ लगाने वाली, अनंत अक्षय अव्या बाध सुख कों चखाने वाली, एक श्री जिनश्वर भगवंत की वाणीही, गुण खाणी हैं. जिसे पठन, श्रवन, मनन निध्यासन, करनेमें धर्म ध्यानी महात्मा सदा प्रेमातुर रहतें हैं. एकेक शद्ब अत्यंत उत्सुकता सें ग्रहण कर उसके रेशमें अंतः करण कों प्रवेश कर, एकाग्रता सें लीनहो. अपूर्व अनोपम आनंद प्राप्त करतें हैं.

तृतीय प्रतिशाखा धर्मध्यानीके "आलम्बन"

सूत्र धम्मस्सणं झाणस्स चत्तरी आलंबना पन्नंते तं-जहा. वायणा. पुच्छणा, परियट्टणा, धम्मकहा.

अर्थ-धर्म ध्यान ध्याने वाले को चार आलम्बन (आधार) फरमायें है, जैसे बृध मनुष्यको मार्ग क्रम-

मेहलपे चढने को पंक्तीये या आलम्बन डोरी आधार भूत होती है. वैसेही धर्म ध्यानमें प्रवृत होने वाले महात्माको चार तरहका आधार होता है. सो कहे है:- १ वायणा=सुत्रका पठन, २ पुच्छणा=संदेह निवारन गुरूसे प्रच्छना (पूच्छना) ३ परियट्टना=पढे ज्ञानको वारम्बार संभारना. (फेरना) और ४ धम्मकहा=धर्म कथा (व्याख्यान) दे प्रगट करना.

प्रथम पत्र-"वायणा"

१ 'वाचना' गीतार्थ बहु सूत्री, आचार्य, उपाध्याय, इत्यादी विद्वरोंके पाससे. ज्ञान ग्रहण करना (पढना) या लिखित सूत्र ग्रन्थादी बांचना (पढना) यह ध्यानी के ध्यानका प्रथम आलंबन आधार हैं.

अव्वल चतुर्थ (चौथे) आरेमें, प्रबल (तिक्षण) प्रज्ञा (बुद्धि) के सबबसें, शास्त्रादिक लिखने की आवश्यकता बहुतही थोडीथी. वो अपणे गुरुओंके पाससे थोडेही कालमें बहुत ज्ञान कंठाग्रह कर लेतेथें, कित्नेक तो ऐसी तेज बुद्धि वाले थे की, चउदह पूर्वकी विद्या, जो कदापि लिखे तो १६३८३ हात्थी डूबे इत्नी श्याही लगे, इत्ने ज्ञानको एक मुहूर्त मात्रमें कंठ

दार्थ, २ विघनेवा=विनाश होने वाले और ३ धुवेवा=ध्रव (स्थिर) रहने वाले पदार्थ, यह तीन पद पढाते जिसमें चउदह पुर्वका ज्ञान समज जातेथे. जैसे कुंडभर पाणीमें एक तेलकी बुंद डालनेसें सब हौदमें फैल जाती हैं; तैसेही उन्हे सिखाया हुवा, संाक्षिप्त शब्द विस्तार कर प्रगम जाताथा. और चउदे पुर्वका ज्ञान जिसके एक खुणेमें समाजाय, ऐसा द्रष्टी वाद अंगके पाठी (पढे हुये) भी विराजमान थे. इस ज्ञानके प्रमोत्कृष्ट रसमें जब उनकी अंतरात्मा लीन होजातीथी. तब छे छे महीने जित्ना समय ध्यान में वितिक्रंत होते भी उनको भूख, प्यास, शीत, उष्णादी पीडा (दुःख) जनक न मालम होतीथी. ऐसे २ प्रबल बुद्धि बाले थे. तब लेखका कष्ट सहनेकी क्या जरूर पडे! चौथा आरा उतरे लगभग ९७६ वर्ष गये पीछे. ‘श्री देवर्द्धी गणी क्षमा श्रमण’ नामें आचार्य, किसी व्याधीकों निवारने सूठ लायेथे. और आहार किये बाद भोगवणेकों कानमें रखलीथी. सो वक्तसिर खाना भूल गये. और देवसी प्रतिक्रमण की आज्ञा लेती वक्त नमस्कार करते वो सूंठ कानमेंसे गिर पडी, उसे देख विचार हुवा की अब्बी एक पूर्व जित्ना ज्ञान होतेभी इत्नी बुद्धि मंद रह गइ है. तो आगे क्या होगा: जो

ज्ञान नष्ट हो गया तो घोर अन्धारा हो जायगा, इस लिये अब ज्ञान लिखनेकी बहुतही आवश्यकता है. लिखित ज्ञान भव्य जीवोंको आगे बहुतही आधार भूत होगा. इत्यादी विचारसें संक्षेपमें सूत्र लिखने सुरू किये. क्यों कि प्रथम आचारांगजीके १८०००* पद थे. अब्बी फक्त मूलके २५०० श्लोकही देखाइ देतें हैं. ऐसेही द्रष्टी वादांग छोड, इग्यारे अंगादी ७२ सूत्रोंकी लिखाइ संक्षेपमें हुइ, की जिनकी हुन्डी (नामावी) श्री समवायंगजी तथा नंदीजी सूत्रमें हैं. बाकीका सब ज्ञान उन्हीके साथ गया.

अब इस पंच कालमें तिर्थंकर केवल गणधर द्वादशांग के पाठी पूर्वधारी वगैरे जो अपार ज्ञानके धारक कोइ नहीं रहे.

---

* गाथा—सोलस सयच उत्तीसा, कोडि तियसीदि लक्खयंचेव
सत्तसहस्साठसया अठासीदिय पदवणा. ३३६ गोमटसार
अर्थ—१६३४८३७८८८ इत्ने वरण (अक्षर) एक पदके होते हैं
गाथा—अठारस बतीस बादल अडक्कदी विछप्पणं
सचारि अठावीस वाउहालं सोलस सहस्सा ३५५गो०सार
अर्थ—आचारांगजीके १८०००, सुयगडांगजीके ३६०००, ठाणायंगजीके ४२०००, समवायंगजी १६४०००, भगवतीजीके २२८०००, ज्ञाताजीके ५५६०००, उपशाकदशांगके ११७००००, अंतगड़ दशांग के २३२८०००, अणुतरोववायजी के ९४४००, प्रश्न व्याकरजीके ९३११६०००, विपाकजीके १८४००० यह ११ अंगकी पदकी संख्या जाणना.

श्री उत्तराध्ययन जीके दशमें अध्ययनमें कहा हैः-

गाथा — नहू जिणे अज्ज दिस्सइ, बहू मए दिस्सइ मग्गदे सिंए, संपइ नेया उए पहे. समय गोयम मा पमा- यए ३१.

अर्थात् अब्बी इस पंचम् कालमें, नहीं देखते है निश्चयसे श्री जिन, तिर्थंकर भगवान् व केवल ज्ञानी परन्तु बहुत हैं. मोक्ष मार्ग के उपदेशनें बताने वाले जिनोक्त सिद्धांत तथा सद्बोध कर जीवोंको मुक्ती पन्थ मे चलानें बाले, 'सद्गुरु' उनके पाससे न्याय मार्ग मोक्ष पन्थ प्राप्त करनेमें, हे गोतम (जीव) समय मात्र प्रमाद आळश मत कर! इस गाथानुसार अबी तो भव्य मोक्षार्थि जीवोंको फक्त जिनोक्त शास्त्र, और सद्बोधके सद्गुरुओंकाही आधार रहा है, मोक्षार्थियोंकी इच्छा सिद्धी करने वाला ज्ञान है. वो इस वक्त सूत्र व ग्रन्थोंमे हैं, और उसकी रहस्य गीतार्थों बहू सूत्रीयों उत्पात बुद्धी और दीर्घ द्रष्टी वालोंके पास है. की जिनोंने अपने गुरुओंके पाससें यथा विधी धारण की है, और वो न्याय मार्गमें लोकीक लोकोत्तर में शुद्ध प्रवृत्तीसें प्रवृत्त रहे, क्षांत, दांत, निरारंभी, निष्परिग्रही हैं. उनके पास शास्त्राभ्यास करना. क्यों कि शास्त्र समुद्र अति गहन गुढार्थों करके भरा है; उसकी यथार्थ

समज होना है. सोही आत्म कल्याण करने वाली है.

इस वक्त कित्नेक ले भग्गूओं. अभीमान के मारे गुरु गम विन, पुस्तकी विद्या पढ २ पंडितराज बन बैठे हैं, उन्होंने बहुतसे स्थान अर्थका अनर्थ कर शास्त्रका शस्त्र बना दिया है; अनंत भव भ्रमण मिटा ने वाळा पवित्र अहिंशा मय परम धर्म को हिंशामय कर अनंत भवका बढाने वाला बना दिया है; इस लिये ही चेताना पडता हैं की मोक्षार्थियोंको अव्वल. ज्ञान दाता गुरूके गुणोंकी परिक्षा शास्त्रानुसार कर, उनके पाससे ज्ञान ग्रहण करना चाहीये.

श्री सुयगडायंगजी सूत्रके ११ में अध्ययनमें धर्मोंपदेशकके लक्षण इस प्रमाणें फरमायें हैं:—

गाथा आय गुत्ते सया दंते, छिन्न सोए अणासवे.
जे धम्मं सुद्ध मइकाति, पडि पुन्न मणालिसं. २४

अर्थात् मन, बचन, काया, रूप, आत्माकों पाप मार्गमें जाती हुइ रोक, अपने वशमें करी है कूमार्गमें आत्माको नहीं जाने देते है, सदा पंच इन्द्रि, और मनको, विषय सें निवार धर्म ध्यान में लगा रख्खा है. संसारका जो आरंभ परिग्रह रूप प्रवाह हैं, उसे बंद किया है. मिथ्यात्व, अवृत्त, प्रमाद. कषाय, और अशुभ जोग, इन पंच आश्रवों करके राहित हुये हैं,

और अहिंशा सत्य दत, ब्रम्हचार्य अममत्व यह पंच महावृत धारन किये, इत्ने गुणके धारक होवें सोही, सत्य, शुद्ध, यथा तथ्य, श्री वितराग प्रणित धर्म फरमा सक्ते है, वौ कैसा धर्म फरमायंगे, तो की प्रतिपूर्ण न्युन्याधिकता रहित. देशवृत्ती (श्रावकका) या सर्ववृति (साधूका) निरुपम औपमा रहित वैसा धर्म अन्य कोइ भी प्रकाश नहीं शक्ते है, ऐसे गुणज्ञोंके पाससे ज्ञान संपादन करना.

अन्न, धन, आदी सामान्य वस्तुभी दातारके पाससे ग्रहण करतें अनेक लघुता करते है. तथा सरोवरमे से भी विना नमन किये पाणी प्राप्त नहीं हो सक्ता है. तो ज्ञान जैसा अत्युतम पदार्थ विना लघुता नम्रता किये कहांसे प्राप्त होगा. इस लिये, ज्ञान प्राप्त करनेकी श्री उत्तराध्ययनजीके पहले अध्यायमें यह रीती फरमाइ है:—

गाथा
आसण गउ न पुच्छेज्जा, नेव सिज्जागउ कयाइवि
आगमुकुडु उ संतो, पुच्छेज्जा पंजलि उडो २२
एवं विणय जुत्तस्स सुत्तं अत्थंच तदुभयं
पुछ माणस्स सीसस्स वागरेज्जं जहा सुये २३

अर्थात्—अपने आसण (बिछोन) पे बेठा हुवा तथा सेजामें सूता हुवा कदापि प्रश्नादिक नहीं पूछे

क्यों कि आसण यह अभीमान जनक हैं, और अभिमान ज्ञानका शत्रु हैं. और सूता हुवा ज्ञान ग्रहण करनेंसे. अविनय और प्रमाद होता है. यह ज्ञानके नाश करनेवाले हैं, इस लिये जब प्रश्न पूछनेकी या ज्ञान ग्रहण करनेकी इच्छा होय, तब, आसन अविनय मान और प्रमादको छोडके जहां गुरू महाराज विराजे होयँ उनके सन्मुख नम्रता युक्त आवे, और दोनो घुटने जमीको लगा, दोनो हाथ जोड मस्तकपे चडा, तीन वक्त (उठ बेठ) नमस्कार करें, और दोनो घुटनें जमीनको लगाये, दोनो हाथ जोडे, नमा हुवा सन्मुख रहके, उच्च बहुमान बचनोसे प्रश्नोत्व करें, सूत्र अर्थादिक दिल चायसो पूछे. और क्या उत्तर मिलता है. ऐसी उत्कंठा युक्त एकाग्र उनके सन्मुख द्रष्टी रख, वो फरमावे सो, जी तहत, बचनसें ग्रहण करे, जित्ना अपनको याद रहे, उत्नाही ग्रहण करे. ज्यादा लोभ नहीं करे. ऐसी तरह विनय युक्त पूछनेसे, गुरु महाराजनें अपने गुरूके पास सें जैसा ज्ञान धारन किया. वैसाही उसे देवेंगे (पढावेंगे).

जो सद्गुरूके पाससे ज्ञान गृहण किया है, उसकी पुनरावृत्ती करते (फेंरते) किसी तरह की शंका उत्पन्न होवें, या कोइ शब्द विस्मरण हो गया (भूल

गये) हो. तथा किसीने प्रश्न पूछा, उसका उतर नहीं आया हो. तब पूर्वोक्त विधीसे गुरू महाराजके सन्मुख आके—

द्वितीयपत्र-"पुच्छणा"

२ 'पूछणा' अर्थात् पूछा करें. की-हें कृपाल आपने अनुग्रह कर. मुजे अमुक पढाया था. उसमें इस प्रकार संशय उत्पन्न होता हैं. सो है पुज्य, उसका निराकरणा- निवारण करने आपको तकलिफ देतां हु सो माफ किजीये. और मुजे मार्ग बताइ ये, इत्यादी नम्रता युक्त, अपने मन की शंका खुल्ली २ गुरुजी कें सन्मुख प्रकाश करे, और गुरु महाराज उत्तर देवें, वो आप एकाग्रता सें- उत्सुकता से. जी। तहेत इत्यादी सकोमल-मीठे बचनो सें बधाता हुवा ग्रहण करें. जहां तक अपने चितका पूरा समाधान न होवें, वहां तक तर्क उठा २ के पूछताही जाय, शरमाय नहीं; डरे नहीं, घबराय नहीं निश्चल चित सें पूरा निराकरण-कर*सं. देह रहित होवें, की कोइ भी उस बात कों पूछें ते आप उसके ह्रदय सचोट ठसा सके, ऐसा निश्चय करे

* चोयणा प्राति चोयणा करनेसे ज्ञानी बहुत खुशी होते है. और शांतपणे उसका खुलासा करते हैं.

और जो अभ्यास कर निश्चय कर निसंदेह ज्ञान किया है उसे

तृतिय पत्र—“परियट्टणा”

३ ‘परियट्टणा’ अर्थात् वारंवार फेरता (याद करता) रहे. क्यों कि अब्बी इत्नी तिव्र बुद्धि नहीं है की जो एक वक्त पढ, पीछा याद नहीं करे, तो विस्मरण (भूल) नहीं होवें, और वारंवार फेरनेमें बहुत फायदा है—

श्री उत्तराध्ययन जी सूत्रके २९ में अध्यायमें भगवंतने फरमाया हैं.

“परियट्टणं या एणं वंजण लद्धि च उप्पाएइ” अर्थात् ज्ञानको वारंवार फेरनेसे अक्षरानुसारणी लब्धी उत्पन्न होती है. जिससे एक अक्षर, व पदके अनुसारेसे, दूसरे आगे पीछे के अक्षरोंका ज्ञात होता है, अपनी विना पढी ही विद्या में काही अन्यके भूले हुये अक्षरोंकों, आप बता सके, ऐसी शक्ती उपजे.

और जो ज्ञान फेरे, वो ऐसा नहीं फेरे की, जैसें बच्चे ‘गुणनी’ करते हैं, की पढे है वो कह दे, परंतु उसके मतलबमे आप नहीं समजे, ‘तूं चल, मै आया’

ऐसी 'गड्बढ' भी नहीं करें, ज्ञान फेरती वक्त ' अणुप्पेहा' अर्थात् उपयोग रक्खे. जो जो अक्षरोंका मुख से उच्चार होवें. उसका अर्थ अपने मनमें, विचारता जाय उसपे, द्रष्टी फेलाता जाय, इसमें बहुत गुण हैं.

सूत्र "अणुप्पेहाएणं, आउयवज्जाउ सत्र कम्म पगडीउ धणीय बंधाउ, सिढिल बंधण बद्धा उपकरेइ, दिह काल ठिइयाउ, रहस्स उ काल ठिइयाउपकरेइ; बहु पएस गाउ, अप्प पएस गाउपकरेइ, आउयं चणं कम्मं, सियबंधइ, सियनोबंधइ असायावेयणि ज्जचणं कम्मं, नो भुज्जो २ उवचिणाइ; अणाइयंचणं, अणवगदगं, दीह, मद्धं, चउरंत संसार कंतारं, खिप्पा मेव वीइ वयइ' ३२ उत्तरा० अ० २९

अर्थात्—उपयोग युक्त ज्ञान फेरनेसे, या शब्द क अर्थ परमार्थ दीर्घ द्रष्टीसे विचारनेसे जीव आठ कर्म मेंसे आयुष्य कर्म छोड बाकीके ७ कर्मकी प्रकृतियों जो पहलें निबड (मजबूत) बांधी होय, उसे स्थिल (ढीली) करे, (जलदी छूट जाय ऐसी) बहुत काल तक भोगवणा पडे, ऐसा बंध बांधा होय तो; थोडेही कालमें छुटका होजाय ऐसी करे. तिव्र भाव (बीकट रससें उदय आने) की होवें, उसे मंद भाव (सरलपणें)

भोग वाय ऐसी करें. *आयुष्य कर्म कदाचीत कोइ बंधे, कोइ नही बांधे. असाता वेदनी (रोग दुःख देने वाले) कर्म वारंवार नही बांधे; और चार गती रुप संसार कंतार (जंगल) का पन्थ-मार्ग आदी रहीत है. और मुशकिल से पार होय ऐसा हैं. उसे क्षिप्र (शिघ्र) अतिक्रमें (उल्लंघे)-अर्थात जल्दी पार पावें मोक्ष प्राप्त करें देखयें श्री महाबीर वृधमान श्वामीने खुद, शास्त्र द्वारा विचार ना (ध्यान) का कित्ने विस्तारसें गुणा नुबाद किया हैं. ऐसी उत्तम विचार शक्ती है, ऐसा जाण खूब उपयोग युक्त ज्ञान कों वारंवार फेरना चाहीये.

जो ज्ञान फेर कर पक्का किया उस का रस हूबेहु प्रगमा उसका लाभ दूसरे कों देणें के लिये—

चतुर्थ पत्र "धम्मकहा"

४ 'धम्मकहा' अर्थात् धर्मकथा (वाख्यान) करें. धर्म कथा श्री ठाणायंग सूत्र में ४ प्रकार की कहके; एकेक के चार २ भेद करनें सें १६ प्रकार होतें हैं, सो-

[१]अखेवणी-अर्थात् अक्षेपनी. जो बोध श्रोताकों सुणावे उसकी असर श्रोताके मनमें हूबेहू होवें, पीछा वमन न होवे. ऐसा पक्का ठसजाय. रुचजाय, पचजाय;

* आयुष्य कर्म का बन्ध एक भवमें दोवक्त नहीं पड़ता हैं.

उसे अक्षेरनी कथा कहनी. इसके ४ भेद [१] प्रथम साधूका धर्म ५ महाव्रत, ५ सुमती, ३ गुप्ती, (यह १३ चारित्र) आदी कहे, जो साधू होने समर्थ न होवें. उनके लिये श्रावकके १२ वृत* आदी कहे, के यथा शक्त धारन करनेकी सूचना करे. [२] निश्चय में, और व्यवहारमें, प्रवृतनेंकी रीती सद्वाद शैलीसे कहे, की निश्चय में मोक्ष ज्ञानादी त्रय रत्नकी आराधनासें और व्यवहार में रजुहरण मुहपति आदी साधूके चिन्ह व शुद्ध क्रियासे, निश्चय विना व्यवहार, और व्यवहार विन निश्चय की सिद्धी होनी मुशकिल है, व्यवहारमे शुद्ध प्रवृत्ती कर, निश्चय सिद्धीकी क्षप करनेसें सर्व सिद्धी होती है, [३] श्रोताओंको शंशयका उच्छेदन करनेको अपने मनसेही प्रश्न उठाके, आपही उसका समाधान करें की जिससे इष्टार्थ सिद्ध होवे, तथा प्रश्नका उत्तर मर्मिक शब्दमे दे समाधान करें [४] सत्य सरल सबकों रुचें ऐसा सद्बोध करे. परन्तु

* १ त्रस जीवकी हिंशा नहीं करें, स्थावरकी मर्याद करे. २ बडा झूट नहीं बोले. ३ बडी चोरी न करे. ४ परस्त्रीका त्याग करे. परिग्रह की मर्याद करे. ६ दिशाकी मर्याद करे, ७ उपभोग परिभोगकी मर्याद करे, ८ अनर्थां दंड़ त्यागे, ९ सामायिक करे, १० दिशावकाशी करे, नेम चितारे, ११ पोषा करे, १२ मुनीराज को १४ प्रकारका सुजता दान उलट भावसे देवे.

पक्षपात राग द्वेष बडे, या आत्म श्लाघा, परनिंदा होवे ऐसा उपदेश नहीं करें. "पापकी निंदा करें परंतु पापी नहीं."

२ "विखेवणी" अर्थात विक्षेपनी. संयम या श्रधासे चलित प्रणामीं कों. पुनः सद्बोध कर आत्मा स्थिर करे, सो विक्षेपनी धर्म-कथा. इसके ४ भेद[१] अन्य मत्त के परिचय सें. तथा ग्रन्थावालोकन से. किसी की श्रधा भृष्ट हुइ होय तो. उसे जैन मत का गहन सुक्ष्म ज्ञान बता के, अन्य मत की बातों से मिला के, प्रत्यक्ष फरक बतावे; कि जिसकी अक्कल तुर्त ठिकाणें आजावें. एसा बौध करें. [२] एकांत अन्यमतमें ही, किसी का मन लगा होय तो. उसे उसी के मत के शास्त्रों में जो साधू ओं की कठिण क्रिया, तथा जैन मत से मिलती बातों, होवे. सो बता के उनसे पूछे की ऐसे चलने वाले जैन है, या अन्य? यो सत्यता द्रष्टीसे बता के जैन का द्रढ श्रधालू करें. [३] जब उनकी श्रधा जैन मत पे जमी देखें. तब उसके ह्रदय का मिथ्या कंद निकंद करने. न्याय प्रमाण के शास्त्रों सें खुल्लम खुल्ला मिथ्यात्व व का स्वरुप बता शल्योधार कर निर्मळ करे. [४[जिन का निर्मळ ह्रदय होगया हो- उनके ह्रदय में पीछा मिथ्यात्व प्रवेश

न कर ऐंसा सम्यक्त्त्व का विस्तारसे यथा तथ्य रुची कारक स्वरुप बता के तथा अनेक प्रश्नोतर कर- पक्का करे, की वो किसी का डगाया डगे नहीं.

३ "संवेगणी" अर्थात सं=सीधे, वेग=रस्ते च- लावे सो संवेगणी कथा. इसके ४ भेद (१) जिन २ वस्तूवोंपे संसारी जीवोंका प्रेम है, उनकी अनित्यता बतावे की देखो! देखते २ वस्तूवोंके स्वभावमें, स्वरुपमें कैसा फरक पडता है. ताजी वस्तु और बासी वस्तुकों देखनेसे मालम होता है. वस्तूका स्वभाव क्षिण भंगू र हैं, अर्थात क्षिण २ में पलटता हें. क्यों कि जो गुण और जो स्वाद गरममें था, वो ठन्डी हुये पिछे न रहा; ऐसेही इस शरीर कों देखो. उत्पन्न हुये पीछे जवानी तक, कैसी सुन्दर तामें वृधी होती है. फिर बृधवस्था में कैसी हीनता होती है, और सरीर नष्ट हो जाता है. ऐसे सर्व जगतूके सर्व पदार्थ जानना. क्षिण २ में नवे २ पुद्गल उत्पन्न होते हैं; और ज्युने विनाश होते है. सब पदार्थोंमें कुछ एकही दम फरक नहीं पडता है; परन्तु पडता २ ही पडता है, और ए- कदम पानीके परोटे जैसे. विनाशको प्राप्त होते हैं. ऐसा पूद्गलोंका स्वभाव जाण, ममत्व निवारे. फिर मनुष्य जन्मादी सामुग्रही प्राप्त हुइ है. उसकी दुर्ल्ल-

भता बतानेकी * चोरासी लक्ष जीवा योनीमें अनंत परिभ्रमण करते महा पुण्योंदय सें सब भवभ्रमणका नाशका करने वाले, मनुष्य जन्म, शास्त्र श्रवण, शुद्ध श्रधा और धर्म स्पर्श्यनेकी समग्री, महा मुशीबतसे मिली है. इसे व्यर्थ गमा देगा, उसे कित्ता पश्चताप करना पडेगा? और ऐसी वक्त जो काम करनेका है. वो कर लिया तो कैसा आनंद पावेगा? इत्यादी बात सें बैराग्य प्राप्त कर धर्ममें संलग्न करे. [२] अल्पज्ञ जीवोंकों लालच लगने से धर्म बृधी करेंगे, ऐसे अवसर पे देवादिक की ऋधि की भोगकी, वैक्रयादी शक्ती दीर्घ आयुष्य; निरोगता, अहार वगैरे की वरणन करे. जो विशेष, और निर्दोष, धर्म करते हैं, उनको उत्तमोत्तम सुख मिलते हैं. और जो संसारकी काम भोगमें लुब्ध रहते हैं. पापरंभ करते है. वो नर्कमें जाके दुःख

---

* णिच्चद्दर धाउ सत्तय, तरुदश वेय लिंदिया सु छव्वेव.
सुरणिरय तिरियच उरो, चउदश मणुये सु सद सहस्सा.

अर्थ—७ लक्ष नित्य निगोद. ७ लक्ष इतर निगोद. ७ लक्ष पृथवी. ७ लक्ष पाणी, ७ अग्नी. ७ लक्ष वायु. १० लक्ष प्रत्येक वनास्पति. २ लक्ष बेंद्री. २ लक्ष तेंद्री २ लक्ष चौरिंद्री, ४ लक्ष नर्क ४ लक्ष देव ४ लक्ष तिर्यंच पचेंद्री; १४ लक्ष जात मनुष्य की यह ८४ लक्ष सब जाती है

भोगवते है. क्षेत्र वेदना परमाधामीकी वेदना वगैरे वरणन करें, क्षिणिक सुखके लिये. सागरोपमका दुःख पावे. इत्यादी रीत समजाणें से वो पापको छोड धर्म मार्गमें उद्यमवंत होवे. [३] "न पेम रागो परमत्थी बन्धा" अर्थात जगतमें प्रेमराग (स्नेह फास) जैसा और वन्धन नहीं है, प्रेम राग रूप फासमें फसे जीव अपना सुख दुःख, भले बुरेका विचार नहीं करते. स्व जन मित्रका पोषण करने. अनेक आरंभ करते है, परन्तु उनकी स्वार्थता को नहीं पहचानते हैं. देखीये, जब 'कुंकू पत्री' देते हैं. तब कित्ना परिवार भेला होता हें, ऐसेही संकट पडे तब, स्वजनकी सहायत्ता लेने 'संकट पत्री' देवो तो कित्ने स्वजन आयंगे * अजी! आने तो दूर रहे, परंतु माल खाने वाले ही कहेंगे की क्या लड्डू किये विन नाक जाता था? इत्यादी कह उलटा अपमान करते है, ऐसे मतलबीयों को पोष, पापका भारा अपने सिरले, नर्क तिर्यंचादी गति में किये, कर्म के फल एकलेही

* एक मराटी कवीने कहा है:—संपदा बहु आलीयावरी, सोयरे जमा होती त्या घरी। गेलीयास ती रुष्ट होउनी, बंधू सोयरे जाती सोडूनी.

भुक्तते है.+ पापका हिस्सा कोइ भी ले नहीं शक्ता ज्यांही देखीये, चोर को ही शिक्षा होती हैं- उसके कुटम्ब (माल खाने वाले) को नहीं. ऐसा जाण कर्म बन्ध सें डरे, धर्म करे. सो सुखी होवें. इत्यादी समजने सें उसका मोह कम हो. वो धर्म में संलग्न करे. [४] कुटंब से ममत्व कमी हुयें पीछे-सर्व पुद्गलों पर से ममत्व कमी कराने बौध करे. की-यह जीव अनाद काल से नशेंमे बेशुद्ध हो, अपना निज स्वरुप कों भुल, पर पुद्गलों के विषय त्री योग की रमणता कर रहे है, परन्तु यों नहीं बिचारते हैं की. 'पराये अपने कब होंगे.' इस संसार व्यवहार में अब्बी जो कोइ एक वक्त दगा देदेवें तो सुज्ञ मनुष्य दूसरी वक्त उसकी छांह में भी खडा नहीं रहता हैं. और इन पुद्-

+ दो भाइयों के आपसमें बहुत प्रेम था- एकके नारु (वाले) का रोग हुवा. दुसरेने जमीकंद और हरकाय के औषध किये. वो मरके नर्क में नेरीया हुवा और दुसरे भाइने रोग कष्ट सहा, सो अकाम कष्ट से परमा धामी देव हुवा; और अपने भाइ के जीव कों मारनें लगा और कहा की तेनें मेरे प्रेममें लूब्ध हो, बहुत जमी कंद का आरंभ किया उसके फल भोगव. नेरीया बोला भाइ मेंने तेरे लियेही पाप किया और तुंही मुजे मरता है यह कैसा अन्याय यम बोला—हम न्यायान्याय कुछ नही समजते है तेरे किये कर्म के फल तुझेही भोगवणें पडेंगे "करंता सो भुगंता."

लों ने अपने साथ अनंत वक्त दगा किया कभी शुभ संयोग मिल हंसा दिया. तो कभी अशुभ संयोग मिला रोवा दिया. कभी नवग्रयवेक तक उंचा चडाया और कभी सातमीं नर्क के तले नीगोद में दबाया. कभी सब के मनको रमणीक बनाया, और कभी भिष्टा रुप बना, अपने उपर सब को थुकाय. ऐसी २ अनंत बिटंबना इन पूद्गलो नें अपनी अनंत वक्त करी हैं? और भी जहां तक इन की संग नहीं छूटेगा वहां तक पुद्गलों का जो स्वभाव है की पुद्=पूरे (मिले) और गल=गले (बिछडे). वो कादापि नहीं छोडने के फिर कौन मुर्ख बने की उनकी संगत में लुब्ध हो, अपनी फजीती करावें. ऐसा जान, जो अपनी आत्मा को सुख चाहवो तो. पुद्गलों का ममत्व त्यागो. और ज्ञान दर्शन चारित्र यह रत्न त्रय हैं. इन्के स्वभावमें कभी बी फरक (फेर) नहीं पडता है, ऐसे स्थिर स्वभावी निजात्म गुण हैं. उनको पहचान, अखंड प्रिती करे! की वो अपने रूप चैतन्य को बना, अनंत अक्षय अव्याबाध सुखका भुक्ता बनावे, इस बौद्धसे मोक्ष के तर्फ श्रोताओंका मन खेंचे.

४ निर्व्वेगणी-अर्थात निर्वृतनी संवेगणी में संसारका यथार्थ स्वरूप दर्शाया. और निर्व्वेगणी में,

संसारसे निवृत्तनेका स्वरूद दर्शावें. संसारमें रोकने वाले कर्म है. की इस भवके किये, इसही भवमें भोगवे, जैसे हिंशा से सूली (फासी) झूटसे अप्रतीत, काराग्रह, चोरीसे कैद, खोडा बेडी, बिभचारसे फजीती व गर्मियादी रोगसे सडके मरना. ममत्वसें कूटम्बादिकके निर्वाहाका महाकष्ट सहना, वगैरे २, और भी जगत्वासी जीव जित्ने कर्म करते है, वे सब सुखके लिये करतें है, परन्तु सुखी बहुतही थोडे दिखते हैं, इससे प्रतक्ष समज होती है की जिस उपाय से सुख होता है. वो नहीं जानते हैं, और दुःखका उपाय कर सुख चहाते हैं, सो कहांसें होय; अग्नीसे शीतलता कदापी न मिल सकेगी! तैसे जो धनसे सुख चहाते है. तो धन में सुख कहां है, विचारीये * धन उत्पन्न करते (कमाते) शीत, ताप, क्षूद्या, त्रषा, वगैरे, अनेक कष्ट सह संग्रह करते हें. और ज्यों ज्यों लक्ष्मीकी अधिकता होती है, त्यों त्यों तृष्णाभी अधिक बढती जाती हैं, और "तृष्णायां परमं दुःखं" अर्थात त्रष्णाही

*श्लोक— वितं मार्जितानां दुःखं मार्जितानां च रक्षणं,
आय दुःखं व्यय दुःखं किमर्थं दुःख साधनं.

अर्थ—धन कमाते दुःख, कमाये पीछे रक्षण करनेका दुःख, और चला जाय तो भी दुःख फिर दुःखका साधन क्यों करते हो?

परम उत्कृष्ट दुःख हैं. अब अंतराय टूटनेसे द्रव्यकी बृधी हुइ तो उसके स्वरक्षण करनेका दुःख, रखे मेरा धन राजा, चोर, अग्नी, पाणी, पृथ्वी, कुटम्ब, देवतादिकसे नष्ट हो जाय, व्यय (खरच) होजाय और रोकड में एक पाइभी घट जाय तो सेठ जी को चेन नहीपडे तो फिर पूर्ण नष्ट हुये तो उनके दुःखका कहनाही क्या? इत्यादी विचार से धन दुःख काही साधन दिखता हैं. और कित्नेक स्त्री से सुख मानते है, पतिवृता स्त्री तो इस कालमें मिलनी मुशकिल हैं, और कूभारजा तो अनेक दिखती हैं. उत्तम जात्तीयों मे भी पतीका अपमान करती है पतिके सन्मुख अनाचार करतीहैं पतीको अपने हुकममे चलातीहें और इत्ले परभी पर घरमे भराके. पतीके नामको और कुलको बट्टा लगातीहैं. येही स्त्री से सुख समजतेहो क्या? ओरकित्नेक पुत्र से सुख समजतेहैं, पुत्र के लिये सम्यक्त्व रत्नमें भी बट्टा लगा के. कूदेवोंके. और ढड, चमारोके पांव पडते है धर्म भ्रष्ट होते हैं, पुत्र हुवातो भी इस कालमें सपूत निकलना मुशकिल है. परन्तु कूपूत बहुत दिखते है, बृध मात पिताकों, बचन और लठी के प्रहार करते है, घरपें, धनपें, अपनी मुक्त्यारी कर राजमें झगडा कर फजीत करते हैं. पुत्रका सुख भी

दिख रहा है. इत्यादी किस २ का बयान करूं "संसार मी दुरक पउरय" अर्थात संसार दुःख करके प्रती पूर्ण भरा हैं. यह पापके फल बताय. [२] अब देखीये पुण्य फल, जो किसीको दुःख नहीं देतें हैं. वे हमेशा निश्चिंत आराम करते है, और वक्तपे सब मिल, उनकी सहाय्यता करते है. झूट नहीं बोलते है तो उनकी इज्जत, पंचायती में, तथा राज सभामें करते है, चोरी नहीं करते है वो बडे विश्वासु होते है. भंडारमें जातेभी उन्हे कोइ नहीं अटकाता हैं, ब्रम्हचारी है, उनका तेज, बल, बुद्धि, निरोगता, सर्वाधिक है, ममत्व तृष्ण रहित हैं. वे सदा सुखी है, " संतोषं नंदनं वनं " अर्थात संतोष 'नंदन वन' समान सुखदाता है. देखीये, साधूजी विना धन ही, बडे २ महाराजाके पूज्य हों, निश्चिंत ज्ञानमें अपनी आत्माको रमण करते, सींधे अन्न वस्त्रसे निर्वाह करते, सदा आनंदमें रहते है, यह सुभ कृत्यका फल इसही भवमें प्रतक्ष दिखता है, [३] कित्नेक कर्म ऐसे है की इस भवमें किये, आगे फलप्राप्त होते है, ह्यां कित्नेक जन, पाप कर्म करतेभी सुखी दिखते है, वो सुख उनको पूर्वोपारजित, शुभ कृत्योंका फल समजना चाहीये, आगे पापकृतके फल

जरूर भोगवेंगे, यथा द्रष्टांत—अव्वल पक्कान भोगव फिर कांदा (प्याज) भोगवे तो. उसे पहले पक्कानकी डकार आयगी, और फिर कांदेकी. दूसरा प्रत्यक्ष देखते है. एक पालखीमें बेठा और चार उठाके चलते है. पालखी वाला उतर गादीपे लोटता हैं. और उठाने वाले पांव दाव (चांप) ते है, वो पांचही मनुष्य एक सें होके प्रत्यक्ष पुण्य पापके फल भोगवते हैं, और जो कर्म फिर जाय तो उठाने वाले पालखीमें बैठ जाय. और बैठने वाले पालखी उठाने लग जाय, यह प्रत-क्ष पाप पुण्यकी विचित्र रचना परभव के इस भवमें भोगवते द्रष्टी आते हैं, [४] ऐसेही किल्नेक ऐसे कर्म है की, इस भवके शुभ कृत्य के फल आगेके जन्ममें भोगवेंगे, जैसे किल्नेक धर्मात्मा ओंको दुःखी देखतें है. तब मनमें शंका लाते है की, जो धर्मसे सुख हों-ता होता तो, यह दुःखी क्यों? परंतु वैम लानेका कुछ कारण नहीं है, प्रत्यक्ष देखीये, अबी कोइ औषध लेते है, वो लेतेही एकदम गुण नहीं कर देती हैं. परन्तु मुद्दतपे, पथ्य पालन सें गुण कर्ता होती है. ज-हां तक पहलेका विकार क्षय नहीं होगा. वहां तक पहले औषधीका गुण दर्शना मुशकिल है, तैसेही गत अशुभ कर्मका जोर कमी न होवे, वहांतक धर्म करणीका

फल दर्शना मुशकिल हैं, परंतु इत्ना तो निश्चय समजी ये की, "करणी तणा फल जाणजो, कदीय न निर्फल होय" जो जन्मतेही सुखी द्रष्टी आते हैं. वो पूर्वोंपारजित पुण्यकाही फल हैं. ऐसेही ह्यांकी करणीभी आगे फल देगी. निर्वेगनी कथाका मुख्य हेतु यह है की "कड्डाण कम्मा न मोरक अत्थी." अर्थात् कृत कर्मके फल अवश्य मेव भोगवनेही पडते है; फिर इस जन्म में देखो, या आगे के जन्ममें ऐसा समज कर्म वन्धसे बचने प्रयत्न हमेशा करते रहीये.

बांचना, पूछना, ओर परियट्टणा कर, जो ज्ञान पक्का किया हैं, उसे इन चारही प्रकारकी धर्म कथा कर उसका लाभ दूसरे को देना चाहीये.

यह धर्म ध्यानके चार आलम्बन आधार कहे है, इन चारही काममें धर्म ध्यानी मनको रमण कर इन्द्रीयोको विकार मार्गसे निवार. आत्म साधन अच्छी तरह कर, इष्टितार्थ सिद्ध कर सक्ते है.

चतुर्थ प्रतिशाखा-'धर्मध्यानस्य अनुप्रेक्षा'

सूत्र धम्मस्सणं झाणस्स चत्तारी अणुप्पेहा पन्नंता तंज्जहा अणिच्चाणुप्पेहा, असरणाणुप्पेहा, एगत्ताणुप्पेहा, संसाराणुप्पेहा.

अर्थात्–धर्म ध्यानीकी चार अनुप्रेक्षा भगवंतने फरमाइ सो कहे हैं, धर्म ध्यान ध्याता महात्मा चार प्रकार अनुप्रेक्षा उयोग युक्त विचार करते है. सो १ अनित्यानुप्रेक्षा. २ असरणाणूप्रेक्षा. ३ एकत्वानुप्रेक्षा. और ४ संसारानुप्रेक्षा.

प्रथम पत्र-"अनित्यानुप्रेक्षा"

धर्मास्ति यादी ❁ षट द्रव्य रूप लोक का, द्रव्य द्रष्टिसे अवलोकन करने से छहो द्रव्य, अपने २ गुण में. व स्वरुपमें. शाश्वत (नित्य) हैं. परंतु इन्की पर्याय (अवस्था) स्वभाव विभाव रुप. उत्पन्न होती हैं,

---

❁

नाम	धर्मास्ति	अधर्मास्ति	आकास्ति	कालास्ति	जीवास्ति	पुद्गलास्ति
द्रव्यसे	एक असंख्यप्रदेशी	एक असंख्यप्रदेशी	एक अनंत प्रदेशी	अनंत असंख्य प्रदेशी	अनंत असंख्यप्रदेशी	अनंत अनंत प्रदेशी
क्षेत्रसे	लोक प्रमाणे	लोक प्रमाणे	लोका लोक प्र.	अढाइ द्विप प्र.	लोक प्रमाणे	लोक प्रमाण
कालसे	अनादी अनंत	अ. अनंत	अ. अनंत	अ. अनंत	अ. अनंत	अ. अनंत
भावसे	अरूपी	अरूपी	अरूपी	अरूपी	अरूपी	रूपी
गुणसे	अचैतन्य, अक्रिय. गति सहाय	अचैतन्य, अक्रिय, स्थिर्ता सहाय	अचैतन्य, अक्रिय, अवगाहादान	अचैतन्य, अक्रिय वर्तमान	अनंत ज्ञान दर्शन चारीत्र, वीर्य	सक्रिय पूर्ण गलन

और विनाशपाती हैं. इस लिये यह अनित्य हैं. बहुत से संसारी जीवों को. वस्तुके गुण का ज्ञान बिल कुल न होनें से. और पर्याय का पलटा प्रत्यक्ष दिखने सें, पर्यायों परही नित्या नित्य की बुद्दी कर- ममत्व भाव कर. राग द्वेष कों प्राप्त होतें हैं. उसइ बुद्दी कों स्थिर करनें ह्यां स्पष्टता से खुल्ला विचार करतें है.

मोह निद्रा ग्रस्त जीवों को जाने, घटिका (घडीयाल) कट २ शब्द कर चेताती हैं. कीं तुम १ बजी. दो बजी. यों क्या कहते हो? जैसे कटने से वस्तु कमी होती है. तैसेही घटि २ (घडि २ घट) कर. सर्व वस्तू का आयुष्य कमी होता है. और सर्वायुष क्षय हुये. वस्तु का नाश हो जाता है. अर्थात् अव्वल के रुप के परमाणुओं बिखर (अलग २ सुक्ष्म रुप सें हो) रुपांत्र कों प्राप्त हो, अन्य रुप अन्य स्वभाव कों प्राप्त होतें है. यह अवस्था देख, जीवों विभाव को प्राप्त होतें है. की, वो मेरा अमुक मरगया! यह मेरा नहीं हैं! हाय हाय!! यह कैसा हुवा!! तब ज्ञानी चेतातें है की' हे चैतन्य! यह जगत् की दिशा देख चेतो! जैसे तुमारी गत काल की सब घटिका ओं गइ और तुमारे सरीर व संपती का रुपांत्र किया. रम्या को अरम्य और अरम्य कों रम्य बनाया, तैसेही आगे

की रही हुइ घटिका पुर्ण होनें से क्षिण मात्र में सरीर संपती का क्षय हो जायगा! फिर तुम कोट्यान उपाय कर, गइ घटि को बुलावोगे तो वो नहीं आने *की और पस्तावोंगे तो भी कुछ नहीं होने का. ऐसा जाण हे हितार्थी ! जो बाकी आयुष्य रहा हैं. उसे व्यर्थ मत गमावों. यह चिंता मणी रत्न तुल्य घटि का, कू कर्म में व्यय (खर्च) मत करों, इस क्षिणाक संसार की क्षिणिक स्थिती कों प्राप्त हो. रही क्षिण में सुधारा करने का हो सो कर घडी कों लेखे लगावों.

और जो तुम शरीरको नित्य मानते होवो तो यहभी नित्य नहीं है, क्षिण २ में इसके स्वभावमें, रूपादी गुणोंमें फरक पडता हुवा परोक्ष और प्रत्यक्ष भाष होता है, देखीये, अव्वल जब जीव मनुष्य पर्याय रूप गर्भमें आ उत्पन्न होता है. तब माताका रुद्र, और पिता का शुक्रका, अहार कर. मांड (चांवलोके धोवण) जैसा सरीरकों प्राप्त होता हें. फिर काल

---

* गाथा—जाजा वच्चइ रयणी, नसा पडि नियत्तइ,
अहम्म कुण माणस्स, अफला जांति राइ उ.

अर्थ—जो जो दिन रात्री जाते है, वो पीछे नहीं आते हैं, अधर्मीके निष्फल जाते है. और इसके आगेकी गाथामें कहा है, धर्मीके दिन रात सफल जाते है.

स्वभावसे फरक पडते २ उन पुद्गलोंमे काठिणता प्राप्त होते २ सेडा (नाकका मैल) बोर, अम्बा, रूप बन, अंगोपांग के अंकूर फूट इन्द्रियों क छिद्र पड, बाला दीका आगम हो, संपुर्ण सरीरके अव्यववों कों प्राप्त होता है, जन्म समय पून्योंदयसें सीधाही बाहिर पड,† अज्ञान अस्मर्थ अवस्थाके पराधीनता के अनेक कष्ट सह, ज्ञानावस्थामें, विद्याभ्यासमे; तरुणपणा प्राप्त होतें विषय पोषणकी समग्रीयों का संयोग मिलानें, तरुणीयों के प्यारे बनने, कुटंबके भरण पोषण करने, वृधावस्था प्राप्त होतें, काया नगर की खराबी होने लगी, शिर थर्राराया, कर्ण कम सुने, चक्षुका तेज घटा, घ्राण झरने लगा. दंतावली नष्ठ होनेसे मुख उजाड हुवा, जिभ्या लथडाने लगी, स्वर मंद पडा, जठराग्नी मंद होनेसे, पचन शक्ती घटी, जिससे अनेक व्याधीयों उठने लगी, कम्मर झुकी, गोडे थके, पांव धूजने लगे, इत्यादी सरीर की शक्ती हीन निकम्मी होतें. जिनकों प्यारे लगतेथें उनको ही खार (खराब) लगने लगे. और एक दिन सर्वायुष्य क्षय होने से सब सज्जन मिलके उसे ही सरिर कों चितामें जला

† कित्नेक गर्भ में आडे आके कटके निकलते हैं.

भस्म करदीया, यह इस सरीरकी दिशा क्षिण २ में पलटती हुइ दिखती है. यह सरीर नित्य (सदा) अभीनव रूप धारण कर्ता है, समय २ में पलटता हैं, बालवस्थाकों तरुणपण गिलता है, तरुण पणेंको बृधपणा और बृधपणेंका काल भक्षण कर जाता है, यह मच्छ गलांगल लगी है. परन्तु ऐसा नहीं समजीये की बालका तरुण और तरुणका बृध, जरूर होगा. यह भरोसा नहीं है. कालको बाल युवा बृध का कुछभी विचार नहीं है. कालरूप घट्टीको तो हमेशा चन्द्र सूर्य फिरा रहें है, जैसे घटीके दो पट होते है, तैसे कालरूप घटीका, भूत कालरूप तो स्थिर पट है, और भविष्य कालरूप चल पट है, अयुष्य रूप खीले से अडके जो रहे हैं, वो बचे हैं, 'खूंटा छुटा कें आटा हुवा', अपने देखते बहुतेका हो गया, और बाकी रहे उनका भी एक दिन होनेवाला; ऐसी इस सरीर की दिशा देखते जो इस सरीरको नित्य जाण. मोह

* छपय—मनुष्य तणो अवतार बर्ष चाली सें मीठो. कडवो होय पच्चास साठे क्रोध पइठो. सित्तर सगो न कोय. अस्सीये नांही सगाइ. नव्वे नग्गो होय. हसे सर्व लोक लुगाइ. बर्ष आया जब सेंकडा. तंन हुवा सब खोंकरा. पतिवृता पाते कों कहे अब मरे न छूटे डोकरा. १

मे गर्क हो रहे है, यह बडा आश्चर्य है.

इस सरीरका नाम उदारिक है. इसके दो अर्थ करते हैं. (१) उदार, प्रधान, और (२) उदारा मांगके लिया, जैसे पंचायती जगा, क्रिया वर करने के लिये, पंचोंसे मांगके थोडे कालके लिये उदारी लेते हैं, और उसे सिणगार के उस्में जो क्रियावर करनेका है वो कर लेते है, तो उनको वो जगा छोडती वक्त पश्चाताप नहीं होता है, और जो क्रियावर हुये पहले मुद्दत पूरी हुये, पंचोंके सिपाइ मकान खाली करते है. तब रोना पडता है की, कुछ नहीं किंया, ऐसेही यह सरीर (पंच भूत वादी के कथनानुसार) पृथव्यादी† पंच भूतोका बना हुवा सरीर रूप बाडा क्रियावर (अच्छी क्रिया धर्म करणी) करने कों मिला. जो धर्म करणी कर लेते हैं, उनको मरती वक्त पश्चाताप नहीं होता है. और करणी नहीं करी है, उनके सरीर को काल छोडावेगा, तब पश्चाताप साथ छोडना पडेगा. ऐसा जाण इस क्षिण भंगूर सरीरसे. धर्म करणी बने

† पिता ने खुशी में आके पुत्रीसे कहा की लक्ष्मी इधर आ तब पुत्री गुस्सेमें कहने लगी पिता श्री इसनामसे मुजे कदापी न बुलाइये. में लक्ष्मी जैसी नीच नही हुवी एक निदमें अनेक माल्क (पती) बनावू.

जित्नी शिघ्र करलीजीये, की इसे छोडती वक्त पश्चाताप नहीं करना पडे.

जैसी सरीरकी अनित्यता है, वैसींही कुटंबकी भी समजीये, क्यों कि मात पितादी स्वजन भी, उदारिकही सरीरके धरण हार है, अपने पहले आये, माता, पिता, काका, मामा, वगैरे, अपने बरोबर आये, भाइ, बेन, स्त्री, मित्र, वगैरें अपने पीछे आये, पुत्र, पौत्रादिक और भी जक्त वासी जन, देखते २ आयू खुटे चल गये हैं, चल रहे है, और रहे सो एक दिन सब चले जायँगे, "जो जन्मा है, सो अवस्य मरेगा" इस लिये कूटंब परिवार को भी अनित्य समजीये.

जैसा कुटम्ब अनित्य है, तैसे धनभी अनित्य है, इसे 'दोलत' कहते हैं, अर्थात आना और जाना ऐसी दो लत (आदत) इसमें हैं, तथा पोशाकको क्षिण में हसाना और क्षिगमें रूलाना ऐसी दो आदतें हैं. यह किसीके पास स्थिर नहीं रहती है‡ "जर जोरु और जमीन, किनकी न हुइ यह तीन" जरमनि तीजोरीयोंमें, खूब उंडे खड्डेमें या नग्गी समशेरोंके पहेरेमेंभी, खूब बंदो-

‡ पृथवी की हड्डी आपी-पाणी का रक्त मुत्रा दी-अग्नी का जठराग्नयादी वायू-। श्वाशोश्वास और आकास रुप पोलार पंपच भूत

बस्तके साथ रक्खी, तोभी नहीं रहनेकी, पुण्य खूटेसे हाथसे रक्खा हुवा धन रूपांत्र पाके कंकर कोयले पाणी या साँप, बिच्छू जैसा दिखने लगता है, ऐसी लक्ष्मी अनित्य है.

तैसे घर भी अनित्य लक्कड मट्टी के संयोगसे बना उसे अपना मानके बैठे है, येही जीर्ण होनेसे विखर जायगा, केइ घर या ग्रामादी नवीन वसते है. केइ उजड होते हैं, विनश ते हैं, यह प्रतक्ष अनित्यता दिखती है. ऐसेही उपभोग, (एक वक्त भोगवने मे आवे अन्न पुष्पादी) और परिभोग (वारंवार भोगवने में आवे वस्त्र भुषणादी) यह भी अनित्य हैं, क्षिणिक है. सर्व वस्तु उत्पन्न हुइ के उनकी पर्यायमें फरक पडना सुरू होता है; विनाश कालतक फरक पडते २ उसका स्वरूप ही और हो जाता हैं. यह अनित्यता की प्रतक्षता हैं.

प्रतक्ष देखते है की, जीव आता है, तब वह्य रूपमें कुछभी साथ लेके नहीं आता है, उत्पन्न हुये पीछेही सरीर संपत्ती आदी संजोग मिलता है, और फिर वोभी 'पंच समवाय*' प्रमाणें हीन होते २, सब

* काल–स्वभाव-भव्यतव्य–कर्म–और उद्यम, इन ५ समवाय के संयोगसें सर्व कार्य होते हैं.

योंहीज प्रलय पाता है, या रह जाता है, और आंप आया था वैसाही, इकेला जीव आगेंको चला जाता है, ऐसा तमाशा एकही वक्तमें पूरा नहीं होता हैं; परन्तु अनंत काल से येही रीत चली आती है, और चली जायगा, मिलना और विछडना, येही पुद्गलोंका धर्म हैं, सोही वना रहगा! अच्छा का बुरा और बुरा का अच्छा; नवा का ज्यूंना और ज्यूंनाका नवा; कोइ प्रतक्षतासे और कोइ परोक्षता (छुपी रीत) सें, पूद्गलोंका रूपांत्र होनेका जो स्वभाव है, वो होयाही करता है, यह तमाशा देखते हुयेभी इसे नित्य मान लुब्ध हो रहे है, इससे ज्यादा अश्चर्य और कोनसा होय?

मुढ प्राणी का आयुष्य ज्यों ज्यों हीन स्थिती कों प्राप्त होता है, त्यों त्यों ममत्व और पापकी बृद्धी करता हैं, और उनके फल भुक्तने आपभी रूपांत्र पा के रौरव नर्कमें गिरता है. तब असाह्य दुःखसे घबरा कर रोता है.

भाइ! अग्नी स्नानसे शीतलता, और बिष भक्षणसे अमरत्व चहाते हैं, तैसेही आत्म घाती जन पुद्गल के संगसें सुख चहाते हैं. इन अज्ञको कैसे समजावे.

औरभी अनित्यताके दर्शाने लिये देखीये (१) हमेशा श्यामकों बृक्षोंपे पक्षीयोंका समोह आ जमता है, जिस डालपे आंप बैठे. वहां दूसरे पक्षीको बेठने नहीं देतें है, क्यों कि उस वृक्षकों अपना मान लिया है. परन्तु वोही पक्षीयों सूर्यका प्रकाश होते दिशोदिश उड जाते है, तब उस झाडका पत्ताभी उन्हके साथ नहीं जाता हैं. तैसे ही देह वृक्षपे जीव पक्षीयों चार गतियों में से आबैठे है. कालरूप सूर्योदय होते सब जायंगे, देह छांइ रह जायगा.

(२) बादीगर (ईन्द्र जालीया) की डुमडुमीका शब्द सुणतेही चहुदिशासें मनुष्य बृंद उलट आते हैं, बाजी समेटी के सब दिशोदिश भग जाते है. और इकेला बाजीगर दंड भंड ले आपने रस्ते लगता हैं. तैसेही जीव बाजीगरकी, पुन्य सामग्री देखने कुटम्बादी मिले है. पुण्य खुटे सब रस्ते लगेंगे, और जीव इकेला चला जायगा.

(३) मेल-यात्रा दी में चौदिशा सें मनुष्यों का समागम होता हैं वांही समयानंतर, सुन्य अरण्य (जंगल) रह जाता है.

(४) लग्नादी उत्सवके प्रसंगमें, स्वजानादी समोह जमता है; और उत्सव निवृतते घर धणीही रह

जाते हैं.

(५) संध्या [श्याम] की वक्त बहुदा आकाशमें संध्याराग [विचित्र रंग] का दर्शाव होता है, और क्षिणंत्रमें अन्धकार फेलजाता है.

इत्यादी अनित्यता दर्शानेके अनेक बनाव हमेशा बनते हैं. और देखते है, परं मोहकी धुन्धी मे मुग्ध बने, कौन विचार करें!!

एक समय राज्यारूढ महोत्सव की धामधूम लग्नका उत्सहा द्रष्टी पडता है; और उसी स्थल उसही समय, पुद्गलोंका रूपांतर होनेसे मृत्युआदी निपजनेसे हाहाकार मच जाता है स्मशान गमनकी तैयारी होती कों, क्या नहीं देंखते हैं? ऐसे २ अनित्यता बतानेके जक्त में थोडें साधन हैं क्या?

ज्यादा क्या कहूं, जिन २ प्रमाणुंओ पदार्थों कर तेरे सरीरकी रचना हुइ, और पोषणता होती हैं, वेही प्रमाणुं गये कालमें तेरे शत्रु बन तेरे धारण किये हुये अनंत सरीरोंका नाश किया था, की उनके साथ तूं अत्यंत प्रेम करता है. और वक्त पडे, येही तेरे सरीरके घातक बन जायँगे मतलबकी पुद्गल संयोगसेही सम्बन्ध जुडता हैं. और संयोगसेही विखरता है.

श्री भगवतीजी सूत्रमें 'अविचय' मरण कहा

है, की जो जगत्के सर्व पदार्थका आयुष्य क्षिण २ में क्षय करता हें, जैसे अंजली [हाथके खोबे] में लिया हुवा पाणी बुंद २ कर कमी होता हैं, तैसेही सब पदार्थोंका आयुष्य घटता है.

औरभी जैसे १. स्वप्नकी सायबी, २. मेघ पटलों (बादलों) का समोह, ३. विद्युत (बिजली) का चमत्कार, ४. इन्द्र धनुष्य, ५. मायवी सायबी, वगैरे अनेक पदार्थ क्षिणिकताके सूचक है. उनको आँखोसे देख. हृदयमें विचार सौंच समज मानू ये मेरे सद्बोध कर्त्ता गुरूही हैं. और समजा रहे हैं, की हे चैतन्य अब चेत! चेत!! मोह धुन्धी उडा, अज्ञानका पडदा दूर कर, और अंतःरिक ज्ञान लक्ष लगाके देखकी कपिल केवली ने फरमाया है "अधुव असासयं मी, संसारंमी दूरक पउरए" अर्थात् यह अध्रुव (अनिश्चल) अशाश्वत और दुःखसे पूर्ण भरा हुवा संसार हैं, इसमें रहे जो ममत्व मुरछा करते हैं, वोही दुःखी होते हैं,

---

हरीगीत —बहु पुण्य केरा पुंज्य थी शुभदेह मानव नो-मल्यों. तो ए अरे भव चक्र नो आंटो नही एके टल्यो. सुख प्राप्त कर्त्ता सुख टळेछे, नेक एलक्षे लहो, "क्षिण २ निरंत्र भाव मरणें" का अहो राची रहो.

कवी रायचन्द

जब जीवोंके देखते पदार्थोंका नाश होता है, तो जीवकोंही पश्चातापहोता है, की हाय मेरे प्राण प्यारी वस्तु कहां गइ. और पदार्थ छोडके जीव जाता है तबही वोही रोता है, की हाय इस सायबी को छोड अब में चला न की वो पदार्थ रोयंगे. की मेरे मालक कहां गये. क्यों कि उनके मालक वणने वाले अनेक बैठे है.

ऐसा समज है सुखार्थी धर्मार्थी जीवो! इस अनित्यानुप्रेक्षा के सत्य विचार सें अनित्य अशाश्वत वस्तुएं सें ममत्व त्याग, निजात्म गुण ज्ञानादी सी रत्न नित्य शाश्वत, अक्षय अनंत उनमें रमण कर सुखी बनो.

द्वितीय पत्र—"असरणाणु प्रेक्षा"

स्याद्वाद मतमे हरेक तर्फ अनेकांत द्रष्टीसें देखा जाताहैं, निश्चयमें तो कोइ किसीकों सरण कादाता आश्रम का देने वाला नहीं है क्योंकि सर्व द्रव्य अपनी२ शक्ती के बलसे ही टिक रह हैं, इस सबबसें कोइ किसीका कर्ता हर्ता नहीं है, व्यवहार द्रष्टीसें फक्त निमित मात्र यह जीव दुःख, कष्ट उत्पन्न हुये, अन्यके सरण

की अभीलाषा करते हैं; मेरी वस्तुका नुकशान न होय या मेरेपर किसी प्रकार का दुःख आके नहीपडे, इस लिय कोइ तारण–सरण आश्रय कादाता होय उनका सरण ग्रहण करु, कीजिससे मुजे किसी प्रकारकादुःख नही होय इत्यादी विचार सें अन्यन्य अनेक का सरण ग्रहण करता है, परन्तु यों नहीं विचारता है की जिस दुःख से बचने मे आश्रय सरण ग्रहन करता हुं, वो खुदही इस दुख से बचे हैं क्या? क्यों कि जो आप दुःखसे बचे होंगे, तो दुसेरकोभी बचा सकेंगे, और जो आपही की रक्षा नहीं कर सके तो, अन्यकी क्या करेंगे. फिर व्यर्थ उनके सरण ग्रहण करनेमें क्या सार है, अब विचारिये अपन जिन २ का सरण ग्रहण करते हैं. वो योग्य है या अयोग्य, ऐसा प्रथक २ (अलग २) विचारीये.

हे जीव! तूं इस सरीर करके तेरा रक्षण चहाता हैं, तो देख! यह सरीर पुद्गल पिंड क्षिण २ में नष्ट होता है. आधी व्याधी उपाधी कर भरा हुवा है. वारम्वार रोगों कर ग्रासित जरा कर पिडित, और मृत्यूका भक्षक बनता है. यह अपनी रक्षा नहीं कर सक्ता है, तो तेरी क्या करेगा. इस लिये सरीर कों तरण सरण मानना व्यर्थ है, जो तूं तेरे परिवार और

मित्रको सरण दाता समजता होय तो भी तेरी भूल हैं निर्मोह बुद्धीसें देख. जो तूं द्रव्योपारजनमें कुशल सबकी इच्छा प्रमाणें चलनें वाला हूवा तो माता पिता कहेंगे. हमारा पुत्र रत्न हैं, भाइ कहेंगा मेरी वाहां है, बेहन कहेगी मेरा वीरा हीरा है, स्त्री कहेंगी मेरे भरतार करतार (परमेश्वर) है. इत्यादी सर्व कुटम्ब हुकम हाजीर रहे, जी! जी! करतें हैं. और जो मूर्ख बेकमावू होय तो; मात पित कहे पेटमें पत्थर पडा होता तो नीम (मकान के पाये) में देने काम आता, भाइ कहे मेरा वैरी है. बेहन कहेकिस्का भाइ लाइ (गरीब) स्त्री कहे मोल्या (मोल लिया गुलाम है) इत्यादी सब सज्जनों की तर्फसें अपमान और दुःख प्राप्त होता है, स्वार्थ लुब्ध मातानें ब्रम्हदत्त चक्रवृत कों मारनेका उपाय किया, कन्क रथ राजा जन्मतें पुत्रोंकों मारे, भृत बाहुबली दोनो भाइ आपसमें लडे. कोणिक कुमरने अपने पिता श्रेणिक राजाको पिंजरेमें कब्ज किया, दुर्योधननें सब कूटम्बका संहार किया. और सूरी कंता राणीनें प्यारे पति प्रदेशी राजाके प्राण हरण कर लिये. ऐसे २ प्राचीन अनेक दाखले है. और वृतमान में बणाव बण रहे हैं. ऐसे मतलबी जन सरण भूत कदापि न होने वाले.

सरीर, धन, कुटम्ब इत्यादी जिनको प्राणसे भी अधिक प्यारे समज रहा है, चिंतामणी तुल्य मनुष्य जन्म जिसके लिये गमा रहा है. वो भी तारण सरण न होवे तो, अन्यकी क्या कहना. मतलबकी त्रिकाल काल बेतालकी फांस में फसे हुये उस फास सें बचाने कोइ समर्थ नहीं है, कालबली बडा जबर है, नरेंद्र चक्रवृती यादी राजा, सुरेंद्र शक्रेंदादी देव. बडे २ बलिष्ट दैत्य जैसे शस्त्रधारी क्षत्रीयों, वेद पाठी ब्राम्हणो श्रीमंत साहुकारों जमीदार जागीरदारों, सहश्र विद्या के साधक विद्याधरों (खेचरों) सिंहादिक वनचरों, सर्पादी उरचरों घर वस्त्र, भुषण, इत्यादी सर्व पदार्थों के पीछे काल बेताल लगा है, कालसे ज्यादा बलिष्ट इस संसारमें कोइ भी नहीं हैं, कालसे बचानें जैसी कोइ घर, भूंवारा, गुफा पहाडादी कोइ स्थान नहीं. की जहां छिप जाय, अमृत और अमर बेल, वगैरे नामधारी बूंटी औषधीये, भी काल रोग मिटाने समर्थ नहीं, तो अन्यका क्या ? रोहणी प्रज्ञाप्ती यादी विद्या, घंटा करणादी मंत्र, विजय प्रतापादी यंत्र, रस सिद्ध यादी तंत्र, में भी कालसे बचाने की शक्ती नहीं, सत्घनी यादी कोइ शस्त्रभी नहीं, जिससे कालको डरावे बन्धु गणो ! काल अजब शक्ती वाला है, पाणीमें गल

ता नहीं, अग्नीमें जलता नहीं, हवामें उडता नहीं, वज्रमय भींतसे भी रुकता नहीं, यम जैसे प्राक्रमीसे ही दबता--डरता नहीं है, काल बडावे विचार है, बाल, वृध, तरुण, नव- प्रणेत, धनाढ्य, गरीब, सुखी, दुःखी अनेको के पालने वाले और अनेकोके संहारने वाले ऐसे २ मनुष्योंको, पशुवोंको, दिपवाली यादी तेंहवारोंको उंच नीच ग्रहका, काम पूरा नहीं हुवा, उनका, रात्री दिन भोगमें मशगुल उनका, इत्यादी किसीका भी जरा विचार नहीं है, कैसा ही हो झपाटेमें आयाही चाहीये, की तुर्त गट काया, अनंत प्राणीयोका अनंत वस्तुओंका भक्षण अनंत वक्त किया, तोभी कालका पेट नहीं भराया, साक्षात् अग्नी सेंभी अधिक सदा अतृप्ती महा विक्राल राक्षसही हैं, महा प्रतापी है, बडे २ सुरेन्द्र, नरेंद्र, इसकी द्रष्टी मात्र सें अत्यंत त्रास पाते है. भान भूल जाते हैं, आर्त, रौद्र, ध्यान ध्याने लगते है, उनका भी मुलायजा कालकों नहीं हैं यह तो फक्त अपने मतलब साधनेंकी तर्फही द्रष्टी रखता है. ऐसे निर्दयी निर्लज्ज, काल बेतालके फास में पडे जीव जो अन्यके सरण से सुख चहाते है, वो मृगजल सें प्यास बुंजाना चहाते हैं, वांझा का पुत्र खिलाना चहाते हैं, या आकाश पुष्पोंसे श्रृंगार सज-

ना चहाते हैं, तैसा निष्फल काम हैं.*

इस काल की रचनाका तो जरा विचार करो, यह काल हरेक वस्तुका एक वक्त अहार कर, पीछा तुर्त निहार कर देता है, और तुर्त पीछा उसके भक्षणेका लोलपी हो, उसके पीछे पडता हैं. सो दूसरी वक्त उसका पूरा भक्षण नहीं करें, वहां तक उसका क्षिण २ में क्षय करताही रहता है, और अचिंत्य खा जाता है, और पीछे वोके वोही हाल, ऐसे अहार निहार करते २ अनंतानंत समयवीत गया, तो भी यह त्रप्त न हुवा और न होगा.

अपने स्वजनका मृत्यू देख, मूर्ख फिकर करता हैं. परन्तु यों नही समजता है की. मेभी काल की दाढ में बेठा हूं. अराक मस्का लगने की देर हैं. की इस जैसे हाल मेरे भी होंगे !!

काल के विचार मात्र सेंही, बडे इन्द्र नरेन्द्र निजस्थान चुत हो नीचे पडतें हैं. तो बेचारे मनुष्य जैसे कीडे की क्या कथा.

---

* गाथा—जस्सत्थी मच्चूणं सख, जस्सत्थो पल्लाइणं,
जो जाणे न मरीसामी, सोहं कंखे सुहेसय.
उतराध्येयन,

अर्थ—जिसकी कालसे प्रीती होय, भग जाणकी शक्ती होय, अथवा भरोसा होय के मै नहीं मरूंगा, वोही सुखसें सूता रहे.

एक मनुष्य बन में सूता था, की वहां रात्री कों अचिंत्य दावा नल (आग) लगी, और उस मनुष्य कों घेर लिया. उश्नता लगते वो तुर्त जागृत हो, एक वृक्षपे चड बेठा, और चारही तर्फ जंगली जानवरों कों जलते देख, हँस ने लगा. की यह जला. यह मरा! परंतु मुढ यों नहीं समजता है की. यह वृक्ष जाला की मेरीभी येही दिशा होगी. अर्थात-जैसे जगत जीव मरतें है वैसेही एक दिन अपन भी मरेंगे! इस्मे संशयही नहीं!!

बाप, दादे, गये वोभी इस धन, कुटम्ब. कर अपना रक्षण नहीं कर सके, तो तुम को न स्मर्थ बली बच सकोगे.

निश्चय समजीये. सब सज्जन मुह ताकतेही खडे रहेंगे. सब संपती* निजस्थान हीं षडी रहेगी, और चित मुनी के कहे मुजब, एक दिन सब की दिशा होगी.

---

* स्वैया—कंचनके आसन, सुखग्रासन कंचनके पलंग, सब इनामत धर रहै. हाथी हट शालनमें, घोंड घुडशालनमें, कपडे जामदानीमें घडी बंध ही रहे, बेटा और बेटी दोलतका पार नहीं, जवारोंके डब्बेपे ताले ही जडे रहे, देह छोड डिगे जब हो चले दिग़म्बर, कुलके कुटम्ब सब रोतेही खडे रहैं,

जहेह सिंहो व मियं गहाय, मच्चु नरं नेइहू अंत काले-
न तस्स माया व पियाव भाया, कालं मि तस्स सहग भवंति ११

उत्तरा० १३

अर्थात्—जैसे बनमें फिरतें हुये मृग (हिरण) के जुत्थ मे सें. सिंह (शेहर) एक मृग कों पकड के ले जाता है, तब सब हिरणे थर्र २ कांपते, अपनी २ जान बचातें भग जातें हैं. तैसे ही कुटंबो के बृंद में, रहे हुये मनुष्य को, काल सिंह ले जायगा. तब सब मुह ताकते ही खडे रहेंगे. परं कोइ भी बचा नहीं सकेगा.

तैसेही आगे कों तुम्हरी सहाय करने तुम्हरी संपती में सें कुछ भी साथ न आवेगा. कहा हैं—

श्लोक— धनश्च भौमो पशु वाश्च गोष्टी, कान्ता घर
द्वारं जनस्य मशाणं देह श्चैता थां परलोक
मार्गे, कर्माणगो गच्छाति जीव एका.

अर्थात्, धन, जमीन, पशु, घर संपती, यह सब निजस्थान रह जायगी, कान्ता प्रिय पत्नी. कों दारा कहते है, वो दरवाजे तक आयगी, और कुटम्ब परिवार सब स्मशाण तक (देह) को पहोंचा ने आयंगे, यह सरीर चितामें जल जायगा. आगे, अपने किये हुये शुभाशुभ कर्मोंकों साथ ले चैतन्य इकेला जायगा.

एसा निश्चय कर, हे सुखार्थी जनो, इस दुर्लभ मनुष्य जन्मादी समग्री कों अन्यके सरण के लालच में पड मत गमावो निश्चय करो की,, इस जगत्का कोइ भी पदार्थ मेरा रक्षक नहीं हैं; सब भक्षक है, एसा जान उनपेसे ममत्व त्याग —तरण तारण, दुःख निवारण, निराधार के आधार गरीबनिवाज, महा कृपालु, करूणा सागर, अनंत दुःखा सें उधार के कर्ता त्रिकाल काल व्याल के दुःख के हरता. अनंत अक्ष अजर अमर अविन्याशी अतुल्य सुख रुप मोक्ष स्थानके दाता व्यवहारमे तो श्री अर्हंत सिद्ध आचार्य उपध्या और साधू यह पंच प्रमेष्टी हैं. और निश्चय में अपने आत्मा गुण ज्ञानादी त्री रत्न की शुद्धता हैं जिनका अश्रय-सरण ग्रहण कर हे, अजरामर आत्मा परमानंदी परम सुखी बन!!

तृतीय पत्र—"एकत्वानुप्रेक्षा"

जैसे सुवर्णका और मट्टीका अनादी सम्बन्ध होनेसें दोनो एकही रुपमे दिखते है अर्थात् सुवर्णभी लाल मट्टि जैसा दिखता हैं परन्तु है दानो अलग २, जो दोनो एकही हाय तो मट्टी मेंसे सुवर्ण जुदा निकले नही.

परन्तु अनादी सम्बधंसे एक रुप दिखते हैं जैस सु-वर्ण से मट्टी को अलग कर निजरुप में प्राप्त करनेके वास्ते सुवर्णकार, मूश, अग्नी, सोहागीक्षार, और द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव, की अनुकुलता, इत्यादी योग्य मि. लनेसे सुवर्ण मट्टीसे अलग हो निजरूपको प्राप्त होता है, तैसेही जीव कर्मका अनादी सन्बन्ध तोडाने-छोडाने चार वस्तुकी आवश्यकता है.

१ 'ज्ञान' रूप सुवर्णकार ज्यों सुवर्णकार मट्टी से सुवर्ण निकालने का जाण होता है, और यथा वि धी कर्म कर कार्य साधता है. तैसेही जीव ज्ञान कर कर्मसे अलग होनेकी विधीका जाण होता है. कृतव्य प्रायण होणेकी शक्ती आती है. २ 'दर्शन' श्रधा रूप मूश, क्यों कि श्रधाही सद्गुणोंके रहने का स्थान हैं, ३ 'चारित्र' संयम रूप 'क्षार' क्योंकि चारित्रही कर्म मेलको फाडनेवाला है और ४ 'तप' रूप अग्नी. क्यों कि तपही कर्म मेल जलाने समर्थ है, यह चारही प-दार्थोंका योग मिले उदारिक सरीर रूप द्रव्य आर्य क्षेत्र, चतुर्थ आरादी काल, और भव्यात्म भाव का संयोग मिले यथा विधी साधन करनेसे अनादी कर्म

दुहा—मुशी पावक सोहगी, फुंक्यातणो उपाय,
रामचरण चारूं मिल्यां, मेल कन्कका जाय १

रूप मेलको दूरकर चैतन्य निजात्म रूपको प्राप्त होता है.

ऐसेही दूध में घी मिला होता है, और उसे निकालने खटाइ, रवाइ, भाजन, मथक (मथन करने वाला) का संयोग होनेसे छाछ रूप मेलको छोड घृत अपने रूपको प्राप्त होता है, तैसेही अतर और पुष्प लोह और चमक, वगैरे अनेक द्रष्टांत कर जीवका और कर्मका अनादी सम्बन्ध समजना. और सुवर्ण की तरह इन पदार्थोंको अनादी सम्बन्ध छुडाके, निजरूप में प्राप्त करनेके, अनेक उपाय समजनें. तैसेही जीव-कोभी अनादी कर्म सम्बन्धसे छुडाके, निजरूपमें प्राप्त, करने के, वरोक्त ज्ञानादी चार साहित्योंका संयोग अक्षीर (पुक्त भक्कम) उपाय हैं.

बडा विद्वान और सदा शुची पवित्र रहने वाला वारुणी (मदिरा) के नशे में गर्क हो, अशुची सें भरे उकरडेपे लोटनेमें गादीपे लोटने जैसा मजा मानने लगताहै. और गटरोंकी हवाको बगीचेकी सहल समजने लगता है, उसे अशुचीसे निवृतनेके बोधकको मूर्ख जाण गाली प्रदान करने लगता है. वोही जीव नशेसे निवृते बाद, अपनी कुदिशा देख, शरमाने लगता है, और किसीके विना कहेही उकरडेको त्याग, (छोड) चला जाता है. ऐसेही जीव रूप पवित्र पुरुष, मोह

मद रूप मदिराके नाशमें छक हो. कर्म रूप उकरडा भोग (विषय) रूप अशुचीसे भरे हुयेपे लोटता हुया आनंद मानता है, और विषय विरक्त सब्दौधकको मूर्ख जान, उनके उपदेशका अनादर करता है, और वोही जीव सत्संगतादी प्रसंगसे मोह नशा उतरनेसे शुद्धी में आ, अज्ञा दिशामें कृत कर्मका पश्चाताप कर, तुर्त विषय विरक्त हो एकी भाव को अङ्गीकार करता हैं.

जैसे बचपनसे बकरीयोंमे उछरा हुवा सिंहका बच्चा, अपनी जाती कों भूल, अपन को बकराही मान रहाथा. और बनमें सच्चे सिंहके दर्शन और सद्बोधसें बकरीयों का सङ्ग छोड. स्वच्छारी एकला हुवा, ऐसेही जीव अनादी कर्म सम्बन्ध सें अपना निज स्वरूप भूल कर्म जनित पदार्थ सरीर संपत्ती आदीको अपनी समज रहा है, जब सद्गुरु के सद्बोध का सम्बन्ध सें अपना आत्म भान प्राप्त हुवा, तब जानने लगा की, मै चैतन्य, आधी व्याधी, उपाधी, करके रहित हूं, यह सरीर, संपत्ती, तीनही दुःखोसें व्याप्त हैं, मै निराकार हूं, यह साकार हैं, मै शुद्ध शुची हुं. यह अशुची अशुद्ध है, मै अजरा मर हूं. यह क्षणिक विन्याशी है. मै अनंत ज्ञानादी गुण युक्त चैतन्य हूं. यह जड है. इत्यादी किसी भी प्रकारसे इनका मेरा सम्बन्ध नहीं

मिले, इनके प्रसंग कर मैने ४ गत २४ दंडक ८४लक्ष जीवा योनीमें, उच्च नीच जाती स्थानमें, अनंत विटंबना भुक्ती है. अब इनका संङ्ग छोड मुजे एकत्वता धारण करनी योग्य हैं. ऐसे विचार से सर्व सम्बन्ध परित्याग कर, वितराग दिशाको अवलम्बे.

जैसे बद्दलो के फटनें सें, सूर्य स्व प्रकाश को प्राप्त होता है, तैसेही कर्म पद्गल दूर होनें सें आत्म-के निजगुण ज्ञानादी प्रका सित होतें हैं, औंर चैतन्य अपना स्वरुप पहचानता हैं.

एक स्वानु प्रेक्षक, विचार करे की, में कौन हूं. एक हूं या अनेक हूं, दीखने रुपतो एकही सरीर का धारक हूं. परन्तु जो एक मानू तो. मातपिता कहै मेरा पुत्र, क्या में पुत्र हू? बेहन कहे मेरा भाइ. तो क्या में भाइ हूं? स्त्री कहै भरतार. तो क्या में भरतार हूं? पुत्र पुत्री कहे पिता तो क्या में पिता हूं, यों कोइ काका, कोइ बाबा, कोइ मामा माशा, व्याइ, जमाइ ऐसे २ सब मेरा २ कर मुजे बोलातें हैं, अब विचार होता हैं कि में कौन हू, और किसका हू, हा,! अश्चर्य; मेरा पत्ता लगना हीं, मुजे मुशकिल हुवा. में एक हो कित्ने नाम धारी. कित्ने का हुवा, परंतु जो निश्चयात्मक हो विचारता हूं तो, यह सब कर्मोके चाले हैं;

में न पुत्र हूं, नपिता हूं, न कोइ अन्य हूं. न मेरा कोइ हैं, और न मैं किसीका हूं. जो मे इन नाम रुप होता तो. सदा इसही रुप में बन रहता, जो मे पुरुष हूं? ऐसा निश्चय करतो. अन्य जन्म में स्त्री हो पुरुष संभोगकी क्यों इच्छा करी. और जो स्त्री हूं ऐसा निश्चय करतो अन्यज में पुरुष हो स्त्री भोग को क्यों चाहू. इत्यादी विचार सें यह सब मिथ्या भाव विदित होता हैं, में मोह नशामें बेशुद्ध हो, कर्म संयोग से विकल हो. भूल राह हूं, जेसे नाटकिया नाटक शाळामें स्त्री पुरुषा दी नाना रुप धर नाचता हैं. जैसा रुप बनाता हे वैसही भाव हूवाहू भजता हैं, परन्तु जो अंतर द्रष्टी, सें,देखतो, वोनट वैसा नही है, राजा नहीं, राणी न-

गाथा—एगया खत्तीय होइ, तउ चंडाल बुक्कस्स. तउ कीडे पयं गया तउ कुंथु पिंपलीया १ एव मडव जोणी सु पाणीणो कम्म किं विसं नाना विजंती संसार संवठे सुत्र खात्तिय उतरा. अ ३

अर्थ—जैसे क्षत्री राजा महा परिश्रम सेभी पूरा राज्य मिलांके त्रप्त नहीं होता है. तैसे जीवभी कोइ वक्त क्षत्री हुवा. कोइ वक्त चंडाल (भंगी) हुवा. कोइ वक्त बुकस (वर्ण शंकर) हुवा. कभी कीडा तो कभी पतंगीया. इत्यादी योनीमें कर्मोंके वस हो प्राणी परिभ्रमण करते. नाना (अनेक) प्रकारके रूप धरतेभी सर्व अर्थ प्राप्त करने समर्थ न हुवा.

इति खेदाश्चर्य.

हीं, संयोगी नहीं, वियोगी नहीं, इन सब भावों से अलग ही हैं, फक्त प्रेक्षक कों देखाने हँसाने. फसाने. रूलाने, अनेक भाव दर्शाता हैं. और अंतर में वो सब सें अलग हैं, तैसेही संसार रूप नाटक शाळामें चैतन्य नट कर्म संयोग अनेक उंच नीच. एकेंद्री से पचेंद्री तक चंडाल से चक्र वृती तक, रूप धारण कर. उस रूप प्रमाणें अनेक योग्या कर्म किये. और अखीर एकही कायम नहीं राह! सब निज २ स्थान रहगये. और चैतन्य अलग ही राह. यह देखीयें कर्मो का तमाशा. अब जरा कर्म रूप नशाका उतार आया दिखता है, जिस सें थोडा भान आया, और ऐसा विचार होने सें कर्मों की विचित्रता समज भेद विज्ञानी बना हैं, तो अब विभाव कों त्याग स्वभाव में रमण कर.

देख! जब तूं आया (माताकी योनीसे बाहिर पडा) था तब इकेलाही था. और तेरे देखते २ अनेक गये, वो इकेलाही गये. वैसे तूं भी इकेलाही जायगा अशुभ कर्म के फल भोगवने नर्कमें, और शुभ कर्मकें फल भोगवने स्वर्गमें गया तो इकेलाही गया! धन, वस्त्र, मकान, भोजन, भुषण, वगैरे का हिस्सा (पांती) लेने वाले अनेक स्वजन हैं. परन्तु कृत कर्म के फलों-

का हिस्सा लेने वाला कोइ नहीं है.

इस जक्तमें परिभ्रमण करते हुते अनंत जीवों-मेंसे रस्ते चलते २ थोडे दिनोके लिये कोइ स्त्री बन जाता है- कोइ पुत्र हो जाता है, ऐसे २ अनेक सम्बन्ध करते हुये. पुद्गल परावृतनके फेरेमें किदर के किदर ही चले जाते है. फिर उनका पताभी लगना मुशकिल होता है. ऐसेही हे जीव ! तूं भी केइका पिता, केइ का पुत्र, केइकी स्त्री, इत्यादी बन आया, और छोड आया वो तुजे पहचाने नहीं, तू उन्हे पहचाने नहीं, ऐसे २ विचार भी तेरे समक्ष रजु होते. तेरा एकत्व-पणा तुजें भाष (मालम) नहीं होता हैं. यह अश्चर्य है.

हे आत्मन्! सर्व जगत के पदार्थ तेरेसें भिन्न (अलग) हैं. और तूं उनसे भिन्न है. तेरे उनके कुछभी सम्बन्ध नहीं है, इस लिये अब तूं तेरे निज स्वरूप कों पहचान की तूं शुद्ध है. सत्या है, चिदानंद है, सिद्ध समान है. हमेशा इसही ध्यान में लीन हो की, इस रूप बने.

चतुर्थ पत्र-"संसारानुप्रेक्षा"

...रके स्वरूपको विचारे, सो संसारानुप्रेक्षा,

'संसरति इति संसारः" जिसमें परिभ्रमण करना पडे, सो संसार, चार तरह का है. उन्हे चार गति कहते है गतागत (आवा गमन) करे सो गति चार.

१ नर्क गति न=नहीं+अर्क=सूर्य. अर्थात् अन्ध कारसे भरी हुइ अन्धकार मय सो तम+ गति या नर्क गतिके ७ स्थान अधो (नीचे) लोकमें एकेक के नीचे है, (१)* रत्न प्रभा=श्याम वर्णके रत्नमय भयंकर सर्व स्थान. २ शर्कर प्रभा=तरवारसेभी अति तिक्षण सर्व स्थान हैं. (३) 'वालू प्रभा'=भाड भूंजके भाडकी वालू (रेती) से भी अत्यंत उष्ण सर्व स्थान (४) पंक प्रभा रक्त, मांस, पीरू के कीचड मय सर्व स्थान (५) धुम्म प्रभा, राइ मिरची के धूमृ(धूवे) से भी अधिक तिक्षण धुम्रमय सर्व स्थान (६) तम प्रभा भाद्रव की घटा छाइ अम्मावस्या की रात्री से भी अत्यंत अन्धकार मय सर्व स्थान (७) तम तमा प्रभा; घोरानघोर अन्धारे मय सर्व स्थान यो सातही नर्क के गुण निष्पन्न नाम (गोत्र) हैं इन ७ नर्क में ४२ आंतरे (खाली जगा) ४९ पांथडे नेरी ये रहने की जगा, ८४

+ बहुत शास्त्रमें नर्कका तम गति भी नाम हैं.

* गम्भा, वंशा, सीला, अंजना, रिट्टा, मग्धा, माघवाइ यह ७ नर्क के नाम.

लक्ष नर्का वासे (उत्पति स्थान) हैं. इनमें रहे समद्रष्टी जीव तो स्वकृत कर्मोदय जाण, सम भाव से दुःख भोगवते हैं, और मिथा द्रष्टी हाय त्रहा कर दुःख भोगवते हैं नर्क मे तीन तरह की वेदन १प्रमाधामी (यमदेव) कृत २आपस की ३क्षत्र वेदना

१ प्रमा धामी १५ जातके हैं १ 'अम्बे नेरीये' को आमकी तरह मशलते हैं, २ अम्बरसे आम का रस निकाले त्यों रक्त मांस हड्डी अलग २ करते हैं. ३ 'शाम'=प्रहार करते हैं. ४ 'सबल'=मांस निकालते हैं. ५ 'रुद्र' शस्त्रसें भेदते हैं. ६ 'महारुद्र'=कसाइ की तरह टुकडे २ करते है. ७ 'काल'=अग्नीमें पचाते है. ८ 'महाकाल'=चिमटेसे चर्म मांस तोडते है. ९ 'असि पत्र'=शस्त्रसे काटते हैं. १० 'धनुष्य' शिकारी की माफिक धनुष्य बाणसें भेदते है. ११ 'कुंभ' कुम्भीमे पचाते है. १२ वालु=भाड भुंजे माफिक उष्ण रेतीमें भुंजते है. १३ वेतरणी=अत्यंत उष्ण रससे भरी वेतरणी नामक नदीमे डालते है. १४ 'खरसर' शस्त्रसेभी अति तिक्षण पत्रवाला शामली वृक्षके नीचे बैठा पत्ते डालते है. १५ 'महाघोष' अन्धेरी कोटडीमें ठसोठस भरते है. यह नाम गुण कहे. परंतु इन शिवाय औरभी अनेक तरहके दुःख, कृत कर्मके

वैसेही फल देते है. जैसे मांस भक्षीको उसीका मांस तोडके खिलाते है. मदिरा पानीको तरुआ गर्म कर पिलाते हैं. पर स्त्री भोगी को लोहकी उष्ण पुतली से संगम कराते है. हिंशक जैशी तरह हिंशा करे, वैसीही तरह उसे मारते है. इत्यादी अनेक कष्ट दुःख नेरीये को देते है. वो बेचारे प्राधीन हो अक्रांद करते सहते है.

२ आपसकी वेदना=तीसरी नर्कके आगे, यम (परमाधामी) नहीं जा शक्ते है. वो नेरीये अनेक विक्राल भयंकर खराब जंगली रूप बनाके, आपसमें लडते है. मरते है, हाय त्राहा करते है, ज्यों नवा कुत्ता आनेसे दूसरे कुत्ते उस पे टूट पडते है वैसा.

३ क्षेत्र वेदना=१० प्रकारकी हैं. १ अनंत क्षुध्या=नर्कके एक जीवको सर्व भक्ष पदार्थ खिला देवे तो भी त्रप्ती नहीं आय, और तावे उम्मर खाने एक दाणा नहीं मिले. २अनंत त्रषा=सर्व जगत्का पाणी पीनेसे प्यास नहीं मिटे, और पीने एक बुंदभी नहीं मिले. ३ अनंत शीत[1] लक्षमनका लोहेका गोला विखर जाय ऐसी ठन्ड शीत ज्योनी स्थानमें हैं. ४

1 पहलेकी ४ नर्क उष्ण ज्योनी है

अनंत उष्ण[2] लक्षमण लोहेका गोला गलके पाणी हो जाय ऐसी गर्मी उष्ण योनी स्थानमें हैं. ५ अनंत दाह ज्वर. ६ अनंत रोग सब रोगोसे नेरीये का सरीर व्याप्त है. ७ अनंत खाज (खुजली). ८ अनंत निराधार. ९ अनंत शोक (चिंता) १० अनंत भय. सदा भयभीत रहे. यह १० प्रकारकी वेदना स्वभावसेही है.

ऐसे दुःख मय नर्क स्थानमें, अपना जीव अनंत वक्त उपजके दुःख भोगव आया है.

२ "तिर्यंच गति" तिरछे बहुत बडनेसे तिर्यंच (पशु) कहे जाते है. ४८ भेद पृथवी काय, आप काय तेउ काय, वायू काय, इन एकेकके सुक्ष्म[3] का प्रजाप्ता[4], अप्रजाप्ता[5], और बादर[6] का प्रजाप्ता, अप्रजाप्ता, यो ४×४=१६ हुये. विनाश पतिके सुक्षम साधारण[7] प्रत्येक[8] इन तीन के प्रजाप्ता, अप्रजाप्ता, दो भेद करने से. ३×२=६ हुये. बेंद्री, तेंद्री, चौरिंद्री इन तीनके प्रजाप्ता अप्रजाप्ता यों ३×२=६ भेद हुये. जलचर[9],

2 पंचमीसे ७ मी तक शीत ज्योनी है. 3 द्रष्टी न आवे. 4 जिस जगे जितनी प्रजा है, उतनी पूरी बांधे सो प्रज़ाप्ता. 5 अधुरी बांधे सो, अप्रजाप्ता- 6 द्रष्टी आवेसो 7 एक सरीरमे अनंत जीव वाले, 8 एक सरीरमें एक जीव. 9 पाणीमें रहे मच्छादिक,

थलचर[10], खेचर[11], उरपर[12], भुजपर[13], यह पांच सन्नी[14] और पांच असन्नी[15]. इन १० के प्रजाप्ता अप्रजाप्ता, यों १०×२=२० यह सब मिल ४८ भेद तिर्यंच के हुये.

यह बेचारे कर्माधीन हो परवस में पडे हैं. मट्टी कों खोदते हैं. फोडते हैं. गोबरादिक मिला के निर्जीव करतें हैं. पाणी कों गर्म करतें हैं. न्हावण, धोवण वगेरे गृह कार्यमें ढोलते हैं. क्षरादी मिलाके निर्जीव करते हैं. अग्नी को प्रजालते हैं. बुजाते हैं. पाणी मट्टी यादी से मारते हैं. वायू पङ्खा, झाडू, खांडन. झट्टक, फटक, उघाडे मुख बोलना, वगेरसे मारते है, वनशपति कों छेदन, भेदन, पचन, पीलन, गालन अग्नी मशाला वगेरे से निर्जीव करते है. बेंद्री, तेंद्री, चौरींद्री, मट्टीके पानीके हरी-लीलोत्रीके इंधनके, अनाजके. वस्त्र पात्र आदीके आश्रय रहे, गमनागमन करते, आरंभ सम् भारंभ करते. धुम्रादिक प्रयोग से शीत, उश्न. वृष्टी, सें आदी अनेक तरह उपजते भी है. और मरते भी है. जलचर पाणी खुटनेसें. नवा पाणी आणे से या धीवरा दिक मारतें हैं. स्थल चर-या वनचर

10 पृथवी चले, गायादिक. 11 आकाशमेंउडे पक्षीयादि. 12 पेट रगड चलें सर्पादिक. 13 भुजसे चले उंदरादिक.

पशु ओं बेचारे शीत, ताप, बृष्टी, भूख, प्यास सहन करतें है. काँटे, कंकर, कीचड, कीडे, वाली भोमीमें पडे जन्म पूरा करतें है. घर वस्त्र रहित, हीन, दीन, गरीब अनाथ, घास फूस आदी निर्माल्य मिले जित्ला खा के संतोष करते है. ऐसे निपराधी कों भी रसग्रधी निर्दे-यी मार डालते है. बन्धनमें डालते है. ऐसेही ग्रामके रह वासी गौ (गाय) महिषा (भैंस) दिकभी निर्माल्य वस्तु देवें जित्नी खाके रहने वाले, खेतीयादी अनेंक काममें म. दत कर्ता दूध जैंसे उत्तम पदार्थके दाता. मालिककी आज्ञामें चलने बाले गरीब बेचारेके उपर, असाह्य बजन भर देतें है. कठिण बन्धन से बांधते है. कठोर प्रहार से मारते है. बहुत चलाते है. दुख से, रोग से, या थाक से, मुर्छित हो पडे हुवें को. श्वास रोक के उठा-तें है. खान पान पूरा नहीं देते है. और काम्म पूरा ले-ते है. और मतलब पूरा हुये. कृत्घनी कसाइ यादी कों बेंच देते है. वहां विष शस्त्र सें आकले रीबा २ मारे जाते है. इन दीनो की करुणा करने वाला कौन है? ऐसी तिर्यंच गति में अपना जीव अनंत वक्त उप-जके दुःख भोगवने आया हैं.

३ मनुष्य गति—मनकी इच्छा मुजब साधन

कर सके सो मनुष्यके ३०३ भेद, अस्सी[1], मस्सी[2], कस्सी[3], यह तीन कर्म कर उपजीविका करे सो कर्म भूमी मनुष्यकी उतुपति के १५ क्षेत्र, १ भर्त, १ ऐरावत, १ महाविदेह. यह तीन क्षेत्र जंबुद्विपमें और यही दो दो होनेसे ६ क्षेत्र घातकी खंडमें और यों ही ६ पुष्करार्ध द्विपमें यों ३+६+६=१५. वरोक्त तीनही प्रकारके कर्म विना दश प्रकारके* कल्पवृक्ष से उपजीवका होवे. सो अकर्म भूमी मनुष्यके ३० क्षेत्र १ हेम वय २ अरण वय, ३ हरीवास, ४ रमक वास, ५ देव कुरू. ६ उत्तर कुरू, यह ६ क्षेत्र, जंबुद्विपमें, येही दो दो क्षेत्र होनेसे १२ क्षेत्र घातकी खंडमें, और येही १२ क्षेत्र पूष्करार्ध द्विपमें यो ६+१२+१२ =३०. जंबुद्विपमें के चूली हेमवंत और शिखरी प्रवत मेसे आठ दाढों (खुणे) लवण समुद्रमें गइ है. उन्ह

1 हथी यार (शस्त्र) से. 2 लिखने का 3 कृषाण (खेती)

* १ मतंगा वृक्ष=१ मधुर रस दे २, भिंगा वृक्ष= बरतन दे. ३ तुडी यंगा वृक्ष= बाजिंत्र सुणावें ४ दिव वृक्ष= दिवा जैसा प्रकाश करें. ५ जोइ वृक्ष= सूर्य जैसे प्रकाश करे. ६ चितगा वृक्ष= विचित्र रंग के पुष्प हारदे. ७ चित रसा= इछित भोजन दे. ८ मन वेगा वृक्ष= रत्न जाडित भुषण दे. ९ गिहं गारा. रहने अच्छा मकान दे. १० अनि याणा वृक्ष= श्रेष्ट वस्त्र दे. ३० अकर्म भोमी और ५६ अंतर द्विप में रहने वाले मनुष्यो की इन १० कल्प वृक्ष सें इच्छा पुरी हो ती हैं.

एकेक्क दाडोंपें साट २ द्विप है. तो आठ दाढोंपे ७×८ —५६ अंतर द्विपमें भी, अक्रम भुमी जैसे मनुष्य रहते हैं यह १५+३०+५६—१०१ मनुष्यके क्षेत्र हैं, इनमें जो मनुष्य होत्तें है. उनके दो भेद अप्रजाप्ता और प्रजाप्ता, यह २०२ हुये, और १०१ अप्रजाप्ता मनुष्य के १४* स्थानमें जो समुत्छिम (स्वभावसे) उत्पन्न होते है वो अप्रजापतेही मरते हैं. इस लिये. १०१ भेद उनके यो सर्व मिल ३०३ भेद मनुष्य के हुये.

कर्म भोमी में महा विदेह छोड, बाकी के क्षेत्र में छे आरे की प्रवर्त्ती मे कभी पुद्गलिक सुखकी बृधी और कभी हानी होती है सदा एकसा न रहना वो भी दुःख का कारण है. और महा विदेह मे सदा चतुर्थ कल प्रवृतता है. तो वहां भी विचित्र प्रकार के मनुष्य हैं मतलब की जहां कर्म कर के उपजीका है वहां दुःख ही हैं; अस्सी हथीयारसे उपजीका

* १ उच्चार=भिष्टामें, २पासवण=मुत्रमें, ३ खेल=खेंकारमें, ४ संघेण=नाकके मेलसेडामें, ५ उत्ते=उलटीमें ६ पिते=पितमें. ७ सूए=रक्तमें, ८ पुए=रम्सी (पोरु) में, ९ सुके=सुत्र (वीर्य) में, १० सुक्के पुग्गल परिसारे=शुक्रके सूखे पुद्गल पीछे भींजनेसे ११ मृत्यूकलेवर=पचेंद्रीके कलेवरमें, १२ स्त्री पुरुषके संयोगमें, १३ नगरके नालेमें और १४ लोक के सर्व अशुची स्थानमें (शीतल हुये तुर्त असंख्य मनुष्य उत्पन्न होते हैं)

करने वाले, कसाइ होके बेचारे गरीब निरपराधी जी-वोंकी घात कर, महा जब्बर पाप उपार्जते हैं, सिपाइयो हो के अपराधी और निरपराधी को बिनाकारणभी मारते हैं. कित्नेक राजादिक महा भारत संग्राम करते हैं, कित्नेक स्वकुटुंब का संहारही कर डालते हैं. तो बेचारे एकेंद्रियादिकका तो कहनाही क्या? शस्त्र अनर्थकाही कारण है. शस्त्र हाथमें आयाकी प्रणाम हिंसामय हुये. मसी लिखाइ के कर्म कर उपजीविका चलाने वाले वाणिकादिक कसाइ, कूंजडे, कलाल, दाणेका, लोहेका, धातूका वगैरे अयोग्य वैपार कर गजा उपरांत बजन उठाये, गामडे में भटकते हैं गुलामी करतेहैं, वगैरे महा कष्ट सहतेहै. कस्सी=कृषी (खेती) के कर्म में अनेक एकेंद्री से पचेंद्री तक जीवकी घात करते हैं शीत ताप क्षुद्या तृषादी महा कष्ट सहते हैं. महा मेहनत से तीनही रुतू वितिक्रंत करते हैं, अब्वी वृत मान कालकी स्थितीका ख्याल करते मालम होता है की, द्रव्य (धन) है तो बहुत स्थान कुटंबकी अंतराय रहती है, कुटंब है तो दरिद्रता रहती है. धन कुटंब दोनो है तो संप नहीं. सरीर रोगीला, सदा क्लेश, लेने देनेका इज्जत का, वगैरे अनेक दुःख भुक्त रहे हैं. कित्नेक बेचारे गरीब है, उन को अपने पेट

भरनेकी ही मुशीबत पड रही है. तो अन्य कुटम्बका निर्वाहा तो दूरही रहा, कित्नेक अंगोपांग हीन लूले, लंगडे, अन्धे, बहीरे, वगैरे है, कित्नेक अनार्य म्लेच्छ देशमें उत्पन्न हूवे; फक्त नाम मात्र मनुष्य है, उनके कर्म पशुसेभी खराब हैं, धर्म के नाममेंभी नहीं समजते हैं, मनुष्यका अहार करते है, वस्त्र रहित रहते है, मात, भग्नी, पुत्रीयादी से विभचार का कुछ विचार नहीं है. जंगलमें भटक २ जन्म तेर करते है. अकर्म भूमी के क्षेत्रोंमें उत्पन्न हुये मनुष्य देव कुरू उत्तर कुरू में सुखकी उत्कृष्टता हैं, हरीवास रम्यकवास में सुखकी मध्यमता है और हेमवय ऐरण्यवयमें सुखकी कनिष्टता है परंतु सर्व धर्मरहित भद्रिक प्रणामी. प्रयाय पशुकी तरह पूर्व पुण्यसे प्राप्त हुये, दशकल्प वृक्षो के योग्य से सुख भोगवते है और मर जाते है.

अंतर द्विपमे रहने वाले मनुष्य नाम मात्र हैं पानी पे डूगरीयोंमें बनमे रहते हैं सरीर मनुष्य जैसा होके. कित्नेकके मुख हाथी घोडेसिंह गाय जैसे होते-हैं. यह मिथ्यात्व द्रष्टी हैं कुछ पुण्योदयसे इन्की भी-इच्छा कल्प वृक्ष पूरतेहैं.

समुत्छिम मनुष्य, फक्त मनुष्य अंग के पदार्थ विष्टा मूत्र रक्तादी सें होते हैं. जिससे वो मनुष्य कहे

जाते है परंतु द्रष्ठी नही आते है सुक्ष्म रुप से एक स्थान में भेलंभेल असंख्य उपजतेहै, और तुर्त मरते है. भिष्ठपेभिष्टा, मुत्रमें मुत्र, करने से वगैरे इनकी हिंशा हर वक्त होती है.

ऐसें दु:खमय स्थानमें, अपन अनंत विटंबना भोग आये है. [मनुष्य जन्मकी श्रेष्टता गिनने का इत्नाही प्रयोजन है की, तिर्थकर साधू, श्रावक, वगैरें इसीमें होते है. और मोक्षभी मनुष्य जन्म विन नही मिल शक्ति है.]

४ देवगति—दिव्य उच्चगतिवाले सो देवता के १९८ भेद कहे है. असुर कुँवार, नाग कुँवार, सुवर्ण कूँवार, विगुत कुँवार. अग्नी कुँवार, उदधी कुँवार, दिशा कुँवार, द्विप कुँवार, पवन कुँवार, स्थनी कुँवार, यह १० और १५ पहले परमाधामी [यम] देवके नाम कहे, सो २५ ही भवन पतिके जातके देवता हैं. यह पहले नर्कके आंतरे में रहते हैं. और पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गंधर्व, इसीवा, भुइवा, आनपन्नी, पानपन्नी, कंदिय, महाकंदिय, कोहडं और पहं देव यह १६ व्यंतर तथा आन झमक पाणझमक, लेणझमक, सेणझमक, वत्थ झमक, पत्त झमक, पुष्प झमक, फल झमक, बी-

ज झमक, अभी पत्त झमक, यह १० झमक मिल २६ भेद वाण व्यंतरकी जातीमें गिने जातें है. यह पहले नर्क के उपर पृथवी के नीचे रहते हैं. चंद्र, सूर्य, ग्रह नक्षेत्र, तारा, यह ५ अढाइद्विपके अंदर चलते फिरते हैं, और इन्ही नामके ५ अढाइ द्विपके बाहिर स्थिर है. यह १० जोतषी गिने जाते हैं. १ तीन पलिये, २ तीन सागरीय ३ और तेर सागरीये, यह* तीन किलमुखी नीच जातके देव हैं. १ सुधर्मा, ६ईशान, सनत कुमार, महेंद्र, ब्रम्ह, लांतक, महाशुक्र, आण, प्रण, अरण, अचुत यह १२ देवलोक, साइच, माइच, वरुण, वन्ही, गदतोय तुसीय, अरिठा, अगिच्छा अबवाह, यह ९ लोकांतिक उंच देव है. भद्दे सुभद्दे, सुजाय, सुमाण. से, सुदंसण, पियदंशण, आमोय, सुपडिभद्दे, जसोधर, यह ९ ग्रीवेग हैं. विजय, विजयंत जयंत. अपराजित और सवार्थ सिद्ध यह ५ अनुत्र विमान है. २५+२६+१०+ ३+१२+९+९+५ =९९ हूये. इन के अप्रगासा और प्रयासा यह १९८ देवता के भेद हुये.

---

* तीन पल्येकील मुखी देव, जोतषी के उपर रहते हैं. तीन सागरीये, दूसर देवलोक के उपर तीसरेके नीचे होते हैं. तेरे सागरीये छटे देवलोकके पास रहते है. यह त्रिरुप और हीन स्थितीवाले हैं. चार तीर्थका निंदक धर्म ठग निन्हवे इनमें अवतार लेता है.

अन्यगति करते देवगति में सुखकी अधिकता है. सब वैक्रय सरीर धारी है. दिल चाहे जैसा, और दिलचाहे जित्ने रूप बना सक्ते है. निरोगी, महा दिव्य सदा तरुण, सरीर होता है. आयुष्य जघन्य (थोडासे थोडा) दश हजार, वर्षका, और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम का सैंकडो हजारो वर्षमें क्षुद्या लगी के तुर्त सर्व दिशामेंसे शुभ पूद्गलोंका अहार, रोम २ से ग्रहण कर तृप्त हो जाते है. इनके विषय सुख अन्योपम सैंकडों हजारों बर्षके होते हैं. इनके सामान्य नाटक में दो हजार वर्ष, और बडे नाटक में १० हजार बर्ष वितिक्रंत हो जाते है. उनके वहां रात्री नहीं है. सदा महा प्रकाश बना रहता है.

इत्यादिक सुखके देव भुक्ता है तो भी दुःखी है, क्योकि, क्षुद्या वेदनी तो लगी ही हैं. और सब देवता बरोबर एकसे नहीं है, कित्नेक इन्द्र हैं. कित्नेक तायत्रिक (इन्द्रके गुरुस्थानी) है. कित्नेक सामानिक [इन्द्रके बरोबरीके के] है. कित्नेक आत्म रक्षक. (प्रहरादार) हैं, कित्नेक प्रषादके देव है. कित्नेक अणिका (शैन्य) के देव है. गंधर्व (गायन करने वाले) देव, नाटकिये (नाचनें वाले) देव, अभोगी (नोकर) देव, और प्रकीर्ण (अनेक विमान वासी) देव. ऐसे

१० प्रकारके देव बारे, देवलोंक लग है, इनमेंसे ज्यादा ऋद्धि धारी देव है. उन्हे देख कमी ऋद्धि वाला देव शरमाता है. और पश्चाताप करता है, की मै ऐसा क्यों नहीं हुवा, कित्नेक बेविचारी देव, अन्य देवोकी सुरूपा देवीका तथा वस्त्र भूषणका हरण करते हैं. उन्हे इन्द्र शिक्षाद्वारा वज्र प्रहार करते है, जिससे वो छे महिना तक महा वेदना भोगवते हैं. और भी सबसे ज्यादा दुःख मरणका है. सोभी उन्ह छोडता नहीं है. मृत्यूके छे मांस पहले उन्हे आलस आने लगता है. मेहल, वस्त्र, भुषणकी ज्योंती मंद भाष होती है, अच्छे नहीं लगते हे. चित्तमें भ्रम पडने लगता है पुष्फमाल कूमलावे. इत्याही चिन्हसे देवता अपना मृत्यू जाण, फिकरमें पड जाते है. की हाय ऐसे सुख को छोड अशुची स्थानमें उपजना पडेगा. इत्यादी महा शोक सागरमें डूबे हुये आयुष्य समाप्त करते है. बारे देव लोकसे उपरके देवता अहमेंद्र [स्वता मालक] है. वोभी क्षुद्रा मृत्यूकी पीडा वगैरे मानसिक दुःख भोगवते है. पांच अनुत्र विमान छोड बाकी सब स्थानमें अपना जीव अनंत वक्त उपजके मर आया है, सब तरहकी विटंबना भोगव आये हैं.

यह चार गतिके दुःख का संक्षेप में वरणन-

किया. नर्क निगोद दुःख अपार है; एसा यह संसार दुःख सें भराहै. वो सर्व दुःख अपने जीवने अंनंत वक्त सहन किये हैं

गाथा— धी धी धी संसारे, देव मरिउण जंतिरिय होइ; मरिउणं राय राया, परि पच्चइ निरिय जालाए

वैराग्य शतक जैन.

अर्थात्—किसी को एक वक्त किसी को दो वक्त धिक्कार दी जाती हैं. परंतु इस संसार को तीन वक्त धिक्कार हैं. क्यों की देवता जैसे महा ऋद्धी, म, हा सौख्य के, भुक्ता मरके; पृथवी, पाणी, विनाशपति, यादी तिर्यंच योनी में उत्पन्न होते है. और राजा ओं के राजा चक्रवृती महाराजा मरके. नर्क में चले जाते हैं.

जरा अश्चर्य तो देखीये, जो चक्रवृती मरके उनका जीव नर्कमें गया हैं. और उनका सरीर ह्यां पडा हैं. उसका संस्कार (स्मशाण मे लेजाणे की) क्रिया अर्चना, शृंगार वगैरे करतें है. और नर्क में उनके जीवपें यम देव ताड मार करते हैं. देखीये क्या सरीर के हाल! और क्या जीव के हाल!!

महान पुन्योंदय से मनुष्य जन्मदी सामग्री का दुर्लभ लाभ को तूं प्राप्त हो. भव भ्रमण से छू-

टने का उपाय कर. अनंत अक्षय अव्यबाध मोक्ष सुख को प्राप्त कर.

यह धर्म ध्यान ध्याता की चार अनुप्रेक्षा (विचारना) का स्वरुप कहा. इस में रमण करनें से धर्म ध्यान में एकाग्रता प्राप्त होती हैं.

धर्म ध्यानस्य–पुण्यफलम्.

इस धर्म ध्यान में एकांतता न होने से. अर्थात् पुद्गल प्रणती की मिश्रता युक्त विचार और प्रवृतीं होने से. संपूर्ण कर्म की निर्जरा न होते. पुन्य की अधिकता होती हैं. उस पुन्य फल कों भोगवने के लिये ज्यों ज्यों ध्यान की अधिकता होय त्यों त्यों उंच्च स्वर्ग में निवास मिलता हैं.

स्वर्ग (देव) लोंक में उत्पन्न होने की सेज्या (पलंग) है उसपे एक देवदुष्य नामे वस्त्र ढका हुवा होता है, ह्यांसे सरीर छोड पीछे धर्म ध्यानी का जीव उस सेज्या में जाके उत्पन्न होंता हैं. और एक मुहुर्त पीछे पूरी प्रजा बांधके उसवस्त्रकों ओढ (सरीरकों ढक) के बेहठा होजाते हैं; उसी वक्त उनके अज्ञांकित

देव देवीयों+वहां अत्यंत हर्षउत्सहाके साथ एकत्रहो हाथ जोड, अत्यंत नमृता सें पूछते है; आपने क्या करनी करी, जिससे हमारे नाथ हुये. तब वो देव* अवधी ज्ञानं से पूर्व भवका हाल जान, और देवलोककी ऋद्धिसे चकित हो, अपने पुर्वले सम्बधीयोंको चेताने उत्सुक होते हैं; तब वहां के देव कहते हैं, एक महूर्त मात्र हमारा नाटक देखके, फिर इच्छित कीजीये. वो सामान्य नाटक करतें हैं, उसमें ह्यांके दो हजार वर्ष बीत जाते हैं, ह्यांके सम्बधीयों मरक्षप जाते है, और वो भी प्राप्त सुखमें लूब्ध हो जाता हैं.

१ बारे देवलोकके उपरके सर्व देव अहमेंद्र है, अर्थात् सब बरोबरीके है. छोटा बडा कोइ नहीं हैं. इस लिये वहां नाटक चेटक करनेवाला कोइ नहीं है. और बारमें स्वर्गकें उपर जैन शुद्धाचारी विपूल ज्ञानी साधू ही जाते है. वो पहलसेही अल्प मोही होते हैं. इस लिये ज्ञान ध्यान सिवाय अन्य तर्फ रुचीही मंद होती है, वो सावधान होतेही पूर्व सम्पादन किये हुये ज्ञान के ध्यानमें मशगुल हो जाते है. जिससे जिनोका उत्कृष्ट ३३ सागरोपम का आयुष्य परमानंद परम सुखमें

+ दूसरे देवलोक के उपर देवी नहीं हैं.

* देवतामें अवधी ज्ञान जन्मसे स्वभाविकही होता है.

वितिक्रंत हो जाता है.

वहांसे आयुष्य पूर्ण कर मनुष्य होते हैं की जहां दशबोलका* जोग होता है. ऐसे मनुष्य देवताके जघन्य ३ और उत्कृष्ट १५ भव या संख्यात भव कर सुक्लध्यानी हो मोक्ष प्राप्त करते हैं.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजके
सम्प्रदायके बाळ ब्रम्हचारी मुनी श्री अमोलख
ऋषिजी रचित ध्यान कल्पतरुस्य धर्मध्यान
नामक तृतीय-शाखा समाप्तं.

*क्षेत्र घर, धन, पशु गौवादी, नोकर, १,२ मित्र औरन्यती बहूत होय' ४ उंच गोत्र ५ सुन्दर सरीर' ६ रोग रहित, ७बुद्धी तिव्र ८ यशवंत ९ विनयवंत (मिळापु) १० प्राक्रमी बळवंत यह १० बोळका जोग जिस जगह होय वहांपुन्यात्मा अवतार लेते है.

उपशाखा-"शुभध्यान"

श्लोक—गुप्तेन्द्रिय मनोध्याता, ध्येयं वस्तु यथास्थितम्
एकाग्र चिन्तनं ध्यानं, फल सम्वर निर्जरौ ॥ १

अर्थ—शुद्ध ध्यानके करने वाले, पंच इन्द्रिय और मनको स्ववश अपने आधीन कर, शुद्ध वस्तुकी तर्फ एकाग्रता अभिन्नता लगाके अखंडित रह ध्यान ध्याते है. इसका फल सम्बर (आगामिक पापका निरुंधन) और निर्जरा (पूर्वोपार्जित पापका क्षय) होता है; यो सर्व पापका क्षय-नाश होनेसें मोक्षके अनंत अक्षय अव्याबाध सुखकी प्राप्ती होती हैं; इस लिये मुमुक्षु ओंको शुद्धध्यान की विशेष अवश्यकता है. सोही कहता हूं.

बरोक्त श्लोकमें शुद्धध्यान करनेके लिये इन्द्रियों और मनको निग्रह करनेकी जरूर बताइ, सो इन्द्रियोंभी मनके स्वाधीन है, उत्तराध्येयन सूत्रमें कहा है—"एगं जीय जीय पंच" अर्थात् एक मनको जीतने से पंच इन्द्रियों वश हो जाती है. और भी कहा है,

की="मनएव मनुष्याणाम् कारणं बन्ध मोक्षयो" अर्थात कर्मसे बन्धने वाला और छोंडने वाला मनही है. *प्रसन्नचंद्र राज ऋषिकी तरह. इस लिये मनको जीतने की अवश्यकता है—

*राज ग्रही नगरीके श्रेणिक महाराजा. गुणसिल बागमेंविराजते हुवे श्रीमहा वीरभगवन्त के दर्शन करने लियेजातेहुवे मार्गमें एक प्रसन्न चन्द्र नामे राज ऋषि को सूर्य के महातापमे अडोल ध्याना रुढ देख, अश्चर्यचकित होश्रीमहावीरस्वामी को नमस्कार कर प्रश्न पुछा की महाराज दुष्कर तपके करने वाले साधुजी आयुष्यपुर्ण कर कहां जायेंगे, भगवंत—अभी मरे तो पहली नर्कमें, श्रेणिक है. पहली नर्क. भगवंत—नहीं दुसरी नर्क में, श्रेणि—है दुसरी! भ०—नहीं तिसरी यों श्रेणिक अश्चर्य में आ प्रश्न करता गया और भगवंत चौथी पांचवी छट्टी जाव सातमी नर्क तक फरमा दिया. श्रेनिक नें फिर अश्चर्य हो पूछा ऐसे महा मुनी सातमी नर्कमें जाय? तब भगवंतने फरमाया नहीं छटी. यों श्रेणिक अश्चर्य धर पूछता गया और भगवंत पांचमी, चौथी, तीसरी, दूसरी, पहली भवनपति, व्यंतर जोतषी, देवलोक ग्रीवेक, और अनुत्तर विमान, का नाम फरमातेही देवधुंदवीका शब्द सुणाया. तब श्रेणिकने पूछा महाराज! यह धुंदवी क्यों बजी? भगवंतने फरमाया की उन प्रश्न चन्द्र राजऋषीको कैवल ज्ञानकी प्राप्ती हुइ! यह सुण श्रेणिक राजा अति ही अश्चर्य चकित हो पूछने लगा महाराजजी बडी ताजुबकी बात है की, अबी तो सातमी नर्क फरमातेथे और अबी कैवल ज्ञान प्राप्त हो गया इसका कारण क्या? भगवंत—तुमारे साथक एक सुभटने उन मुनीको देखके कहा की, यह साधू

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च ग्रह्यते भगवद्गीता

अर्थ—श्री कृष्ण कहत हैं की हें अर्जुन! मनको वश करना बहुतही मुशकिल है. क्यों कि मन अती चपल है+ परन्तु निरंतर अभ्याससे और वैराग्यसें मन वश में हो सक्ता हैं-

किसीसे भी पूछ देखो की भाइ तुम मनको

वडा निर्दयी है छोटेने बच्चेपे राजभर डाल आप साधू बन गया और बेचारे उस बच्चेको परचक्री सता रहा है. यह सुणतेही राजऋषि क्रोधातुर हो उस परचक्रीके साथ मनोमय संग्राम करने लगे (उस वक्त तेने पूछना सुरु कियाथा) अनेक शैन्यका संहार कर शत्रुको मारने चक्र लेनेके लिये शिरपे हाथ डाला के (उस वक्त सातवी नर्क के दलीय भेले किये थे.) रुंड मुंड मस्तक पाया! उसी वक्त चौंक गये भान आया के अरे? मेने साधू होके यह क्या जुलम किया? यों पश्चाताप करने लगे. (उस वक्त संचित कर्म के दलिये क्षपने लगे) त्यों त्यों उच चडते गये और शुद्ध विचारमें एकाग्र होनेसे धन घातिक कर्म नष्ट हो गये तब केवल ज्ञान दर्शनकी प्राप्ती होगइ (शुद्ध ध्यान में इत्नी प्रबलता है) यह सुण श्रेणिक राजा वडे खुशहो गये भगवंतको और उन राजऋषि वगैरे साधुवोंको नमस्कार कर निजस्थान गये.

+'अति चंचल मतिसुक्ष्म सुदुर्लभ वेगवतया चेतः'—हेमचद्राचार्य

अर्थात—यहमन् अतीहीचंचल होके अतीसुक्ष्म हैं इस लिये इसकी गतीको रोकना मुशकिल हैं

वश कर सक्ते हो? तो वो येही कहेगाकी वहोतही उपाय करते हैं, परन्तु पापी मन वशमें नहीं रहता है क्या करें! ऐसे मनको वशमें करनेका सहज उपाय इस श्लोकमें कहा है की, निरंतर अभ्यास से जो वैराग्य प्राप्त करता है. वो मन वशमें कर सकेगा.

पंच इन्द्रियोंके छिद्रों कर जो शब्दादी पुद्गलका प्रवेश होता है. उन्हे ग्रहण कर मन राग द्वेषमय प्रणम, सुखी दुःखी बनता है. उस राग द्वेषमें प्रणमते हुये मनको रोकना उसीका नाम वैराग्य. राग द्वेष प्रणतीमें प्रणमनेका मनका अनंत कालका स्वभाव पड रहा है. उससे एकाएक मन रुकना बहुतही मुशकिल है. इस लियें मनको रोकनेका अभ्यास करना चाहीये जैसे जोशमय आते नदीके पूरको कोइ एकदम रोकना चाहे तो कदापी नहीं रुक सकेगा! परन्तु उसे पलटानेका जो प्रयत्न करे तो हो सके. बस तैसेही मनके वेगको पलटानेके प्रयत्नकी अभ्यास की आवश्यकता हैं.

वो अभ्यास ऐसा चाहीये की, जिन २ शब्दादी विषय मय पुद्गलोमें मन प्रणमें उसीही वक्त उन पुद्गलोके स्वभाव गुण और फलके तर्फ मनको फिराना की यह क्षिणिक और कटु फलद्रुप हैं. ऐसा हरव-

क्त अभ्यास रखनेसे मन किसी कालमें इन्द्रियोंके विषय से वृत्ती कर सकेगा.

और फिर ध्यानमें मनको स्थिर करने एकाग्रता का अभ्यास करना एकाएक मन एकाग्रहोना मुशकिलहैं परन्तु अभ्यास से वोभी हो सक्त हैं; जो जो काम अपने नित्य नियमिक हैं अवलतो उन्हीमें एकाग्रता करना चाहीय प्रतिक्रमण करते होय तो उस प्रतिक्रमणके शब्दार्थादीमेही मनको गडादेना उस विचारको छोड अन्यतर्फ नहीं जाने देनाएसेही सझ्याय-स्वध्याय करती वक्त स्वध्यायमें व्याख्यान देती वक्त व्याख्यानमें गौचरी व आहार करती वक्त अहारमें इत्यादी सर्व दिवस रात्री सम्बधी कार्यमें सदा सर्वकाल क्षिणंत्र रहित, मनकी एकाग्रता का अभ्यास रखना. यों कित्नेक कालतक करते २ वो सहजही एक वस्तुपे टिकने लग जाता है, फिर हरेक इष्ट पदार्थपे मनकी एकाग्रता हो सक्ती है. यों अभ्यास युक्त वैराग्य मनको अडोल ध्यानी बनाता है.

अब वो एकाग्रता तथा ध्यान किस वस्तुका करना सो कहता हूं.

प्रथम प्रतिशाखा-"आत्मा"

सूत्र "जे एगं जाणइ से सव्वं जाणेइ; जे सव्वं जाणेइ, से एगं जाणइ. आचारांग अ ३ सूत्र २०९

अर्थ-जो एकको जाणेगा, वो सबको जाणेगा और जो सबको जाणेगा वोही एकको जाणेगा!*

वो एक पदार्थ कौनसा है? और कैसा है? की जिसको जाणने से सर्वज्ञता प्राप्त होवे! उसका स्वरूप यहां दर्शाते है.

वो "आत्मा" है. आत्माके ३ भेद किये हैं. १ बाहिर आत्मा, २ अंतर आत्मा, और ३ परमात्मा.

प्रथम पत्र-"बाहिर आत्मा"

१ बाहिर आत्मा=जो यह प्रतक्ष हाडका पिंजर रक्त मांसादी धातूओंसे भरा हुवा, और रंगी बेरंगी चमडी करके ढका हुवा. मनुष्य या तिर्यंच (पशुवों)

---

*श्लोक—एको भावः सर्वथा येन दृष्टाः, सर्वे भावाः सर्वथा तेन दृष्टाः सर्वे भावाः सर्वथा येन दृष्टा, एको भाव सर्वथा तेन दृष्टाः

अर्थ- जिनने एक पदार्थ को प्राति पूर्ण रुपसे देखा, उनने सर्व पदार्थ प्राति पूर्ण रुपसे देखा; और जिसने सर्व पदार्थ पूर्ण से देखा. जिनने एक पदार्थ पूर्णसे देखा.

दुहा-निज रूपे निज वस्तु है. पर रूपे परवस्त.
जिसने जाणी पैंच यह उसने जाणा समस्त.

का सरीर; तथा अन्य अशुभ पुद्गलों (वस्तुओं) सें बना, नर्क निवासी जीवोंका सरीर; और शुभ पुद्गलोंसे बनाहुवा, देव लोक निवासी जीवोंका सरीर, उसे बाहिर आत्माकहते हैं. अज्ञानी जीव उसेही आत्मा मान बेठे हैं, और अपने सरीर को हाथलगा कहते हैं. मैं गोरा हूं. कालाहू, लम्बाहू, छोटा हूं, जाडाहूं पतलाहूं. मेरा छेदन भेदन होता है मेरे अंगोपांग दुःखते हैं, रखे मेरी आत्माका विनाश होवे, और वो इन्द्रीयोंके शब्दादी विषयों के पोषण में मजा मानतें हैं, में स्त्री हूं, पुरूष हूं, नपुंशक हूं इत्यादी विचारसें परस्पर भोगमें आनंद मानतेहैं, हा हा करतेहैं. मतलबकीजो सरीरको आत्मा मानें, सरीरके सुख दुःखसे अपना सुखदुःख मानें. सरीरकी पुष्टाइसे हर्ष, और कष्टासे दुःख मानते हैं; वेहीबाहिर आत्माको आत्मा मानने वाले अज्ञानी जानना* शुद्ध ध्यान के ध्याता, इस अनादी भाव कों मिटानें देहा ध्यास छोडने, प्रणामोकी निशुद्धी करने, विचार

* श्लोक—देहात्म बुद्धिजंपाप, नतद्गौबध कोटीभीः आत्मा अहंबुद्धिजं, पुण्य नभूतो नभाविष्यति

अर्थ— सरीरहीको जो आत्मा मानते हैं उन्हे क्रोडो गाइयों के वध करनेवालेसेंभी अधिक पाप लगता है और मैं आत्माही हूं ऐसे विचारवालेको जित्ना पुण्य होता है वो पुण्य त्रिकालके पुण्यसें भी अधिकहै.

करें की यह सरीर पुद्गलो के संयोग से निपजा हैं. श्री उत्तराध्ययनजी में फरमाया हैं की

गाथा — नो इंदिये गिझं अमुत्त भावा, अमुत्त भा-
वा विय होइ निच्चो अझत्थ हेउ निययं सं
बंधो, संसार हे उंच वयंति बंधं १९

अर्थ=जो मूर्ती पदार्थ हैं वोही इन्द्रियों सें ग्रहण किये जाते हैं. और जो पदार्थ इन्द्रियोंसे ग्रहण किया जाते हैं वो जड होते हैं और' चैतन्य तो अमूर्ती (अरूपी) हैं. उसकों इन्द्रियों ग्रहण नहीं कर सक्तीहैं इसालिये वो अजड अविन्यासी नित्यहैं, अनादी देहाध्यासके कारण सें जड और चैत्यन्य सम्बंध से एकत्र रुपहो रहाहै, जैसे दूध और घृत. यह जो जडका और चैतन्य का सबन्ध है, सोही संसार का हेतूहैं. इस अनादी सबन्ध का निकंद करने, श्री आचारांग सूत्र मे फरमायाहैं "जेएगं णामे, से बहुणामें; जेबहुणामेंसे एगंणामे," अर्थात्जो एक मोह (ममत्व)को नमावे सो बहूतो कों नमावे, अर्थात सर्व कर्मोकों नमावे, और जो बहुत (सर्व)को नमावेगा सोही एक (ममत्व)को नमावेगा और'जेएगं विगिंचमाणे पुढोगिंचइ पूढो विगिंचमाणे एगं विगिंचइ'अर्थात् जो एग मोहकों खपाते हैं वोसब (कर्मों)को खपातें है; और जोसर्वको खपते है. वोही

एक को खपाते है--क्षय करते है. इत्यादी विचार से सरीरसे आत्म बुद्धिका त्याग कर. ममत्व उतार अंतर आत्माकी तर्फ लक्ष लगावें.

द्वितीय पत्र-"अंतरात्मा"

२ अंतर आत्मा=अंतर आत्मा में रमण करते हुये ध्यानी विचारतें हैं, में जिसे सम्बौधन करताहूं,सो फक्त लोकीक व्यवहार सें करता हूं. क्यों कि आत्मा तो निष्कलंक हैं, इसे कौन संबौध सक्ता हैं. आत्मा तो आत्ममय पदार्थ को ही ग्रहण करता है. अन्यको नहीं, अन्यको तो अन्यही ग्रहण करते हैं. ऐसा भेद विज्ञान (पुद्गल और चैतन्यकी भिन्नताका जिन्हे होवे. अंतर (निजात्म स्वरूप) की तर्फ लक्ष लगे. वो अंतरात्मी. जैसे अन्धक्कार में स्थंभका मनुष्य भाष होता है, और अन्धकारके नाश होनेसे वो यथातथ्य स्थंभका स्थंभही दिखता है. तब प्रथमका भर्म नाश होता है तैसेही भेद विज्ञान अनस्त सूर्यके प्रकाश होनेसे सरीर और आत्माका यथार्थ भाष होता है.

"अंतर आत्म त्रिज्ञानीका विचार"

१ जो स्त्री पुरुषाद्दिक की प्रयाय है, वो कर्मों-

का स्वभाव है; चैतन्यका नहीं. चैतन्य तो निर्वेदी, निर्बिकारी है. तो फिर बीकारीक वस्तुओंको देख. बिकारी क्यों होता है-

२ जो शत्रुता, मित्रता, के प्रणाम होतें है, सोही कर्म स्वभाव है. निश्चयमें तो "अप्पा मितंममितं च" जो अकृतसे निवृते तो अपणी आत्मज मित्र है, नहीं तो शत्रुताका साधन तो होताही है. इस विचारसे शत्रु मित्र पर व अच्छी बुरी वस्तुपर सम प्रणामी बने. राग द्वेष न करे.

३ इत्ने दिन में तो बालककी तरह अनेक चेष्टा करता सो अन्यका प्रेरा हुवा करताथा, न की चैतन्यका क्यों कि चैतन्य तो अनंत ज्ञानादी शक्तीका धारक है. वो किसी प्रकार चेष्टा (ख्याल तमाशा) करेइ नहीं.

४ इत्ने दिन अन्य पदार्थ सच्चे मालम पडतेथे, अब वोही स्वप्न और इन्द्र जाल जैसे मालम पडने लगे. फिर इसकी प्रतीत कां रही. और असत्य को सत्य माने सोही मिथ्यात्व.

५ जो परमात्माको अविन्यासी कहते है. वो मैही हूं. फिर जंगम और स्थावर से मेरा विनाश होवे यह वैमही खोटा है. "मरे सो और, और में और'

इस विचार से निडर बने.

६ हा! हा! अश्चर्य की, जिन्ह कामोंसे, या कारणोंसे, अज्ञानीयों कर्म का बन्ध करते हैं. उन्ही कामोंसै ज्ञानी कर्म बन्ध तोड निर्मुक्त होते है. इस विचार से सबसे ममत्व घटावें.

७ इत्ने दिन संसारमें जो मै रूपोकी विचित्रता पायम, सो 'भेद विज्ञान' के अभावसेही पाया; अब वैसा नहीं बनूं.

८ यह जग तारक वाहण (झाज-स्टिमर) सब के सन्मुख से चले जाते हुयेभी, अनंत जीवों डूब रहे हैं. इसका एक मुख्य कारण, "भेद विज्ञानकी अज्ञानता ही हैं." अब मै तो उससे छूटा होवुं!

९ क्या मजा है! यह आत्मा आत्माके द्वाराही पहचानी जाती हैं. इसे चशमें या दुर्बीन की कुछ जरूरही नहीं यो आत्मा देखे.

१० विशेष आश्चर्य तो यह हैं की—जो विषयमय पदार्थ अज्ञानियो को प्रिती उत्पन्न करने वाले होते है. वोही ज्ञानीयोंको अप्रिय दुःख दायक लगते है; और संयम तपादिक, अज्ञानीयों को अप्रिती दुःख उत्पन्न करने वाले भाष होते है. वोही ज्ञानीयों को सुखानंद दाता भाष होतें है.

११ वोही हूं में, वोही में हूं, ऐसी एकांत भावना कर्ता हुवा यह आत्मा उसी पदको प्राप्त होता है, "अप्पासो परमप्पा" अर्थात आत्मा है सोही परमात्मा है? * उसी पदको प्राप्त होता है. और इससे ज्यादा सद्बोध कौनसा.

१२ मैने मेरीही उपासना करनी सुरु करी, तो फिर मुजे अन्य उपासनाकी क्या जरूर, क्यों कि जैसे परमात्मा है, वैसाही में हूं.

१३ भेद विज्ञानी महात्माको दूकर तप, और महान उपसर्गसेभी किंचित मात्र क्षिन्न नहीं कर सक्ते हैं, चळा नहीं सक्ते है.

१४ अंतर आत्माका ध्यान रागादि शत्रुके क्षयसेही होता है.

१५ जो भ्रम रहित हो, जीव और देंहको अलग २ समजेगा, वोही कर्म बन्धन से छूट मोक्ष प्राप्त करेगा. रागादी शत्रु दूर हुये की आत्मा दिखी.

१६ अज्ञान और विभमेकं दूर होनेसेही आत्म तत्व भाष होता है.

१७ जिस कायाको प्राण प्यारी कर रक्खी थी, अज्ञान दूर होनेसे उसीही कायको तप संयमादी में

*अन्य मती भी कहते हैं—आत्माचीनेसो परमात्मा"

गालने लगते है.

१८ आत्म ज्ञान विन कोरे तप करनेसे, दुःख मुक्त नहीं होता है.

१९ वाहिर आत्मा वाला, रुप धन, बल सुख, इत्यादी का अहों निश ध्यान करता है. और अंतर आत्मिक इस से विरक्त हैं.

२० अज्ञानी फक्त बाह्य त्यागसे सिद्धी मानते हैं, और ज्ञानी बाह्य अभ्यंतर दोनो उपाधीयों त्याग नेसे सिद्धी मानते हैं,

२१ अध्यात्म ज्ञानी व्यवहार साधने बचन और कायासे अन्यन्य कार्य करते भी मनसे एकांत अंतर आत्मामें ही लीन रहते हैं.

२२ आत्म साधन करती वक्त, जो उपसर्ग, व-दुःख होता है. उसे अध्यात्मी दुःख नहीं समजते हैं* बल्के सुखही समजते है, जैसे रोगी कटू औषधीके स्वादको न देखता गुणहीका गवेक्षी होता है.

---

*श्लोक– नैव छिदन्ति शास्त्राणि, नैनं दहतिपावकः
नचैनक्लदयं तऽपो, नशोषयाति मारुतः ॥१॥

अर्थ– इस आत्माको तिक्षण शस्त्र छेद शक्ता नहीं है, प्रचन्ड अग्नी जलासक्तानही है, पागलासक्ता नही है औरवायू (पवन) सुकासक्ता नेहा है; तो फिर भय (डर) किसका

२३ ज्ञानीको आत्म साधन सिवाय अन्य कामकी फुरसतही नहीं मिलती.

२४ परमानन्द आत्मामें ही है. बाहिर क्या ढुंढते हो!

२५ इच्छा है सोही संसार है, इच्छा त्यागसे संसार सहज छुटता है.

२६ जैसे पहरे हुये वस्त्र जीर्ण होते, बेरंगी होते या नष्ट होते सरीर जीर्ण, बेरंगी, और नष्ट नहीं होता है, तैसेही सरीर और जीव जानो.

२७ अज्ञानी, मंद बुद्धीके कारणसें पर वस्तुमें मजा मानते हैं, और ज्ञानी भ्रम नष्ट होनेसे अन्तर आत्मा मेंही अनन्द मानते हैं.

२८ स्थिर स्वभावीज मोक्ष पाते हैं, स्थिरता ही सम्यग दर्शनकी ऋद्धी हैं,

२९ लोकीक प्रेमसे वचनालाप, बचना लापसे चित्त विभ्रम चित विभ्रम सें विकलता विकलतासे चंचलता यों एक से एक दुर्गुणोकी बृधी जान, लोकीक प्रेम छोड,लोकोत्रसे लगावे.

३० जब ज्ञान होता है; तब जक्त बावला (गहले) सा दिखता है. और जब ध्यान होता है, तब वस्तुका यथार्थ स्वभाव भाषने लगता है उससे जैसा

है. वैसाही दिखता है. अर्थात राग द्वेष नष्ट होजाता है.

३१ आत्मा आत्माके द्वारा ऐसा विचार करेकी मै आत्माही हूं. सरीरसे भिन्न हूं. ऐसा द्रढ निश्चय होंने से फिर स्वपनेमेंभी सरीर भावको प्राप्त न हो, जिस से आत्म सिद्धी होगा.

३२ जाती और लिंगकी अहंता त्यागनेसेही सिद्धी होती है.

३३ जैसे बत्ती दीपकको प्राप्त हो दीपक रूप बनती है. तैसेही आत्मा सिद्धका अनुभव करनेसे सिद्ध रूप होती है.

३४ आत्माको आराधने योग्य आत्माही है; अन्य नहीं. आत्मा आत्माका आराधन करनेसेही परमात्म बने है. जैसे काष्टसे काष्ट घसनेसे अग्नी होवे.

३५ अपन मर गये, ऐसा स्वपन आनेसे अपन मरते नहीं है, तेसेही जागृत अवस्थामेंभी, आप के मरनेसे आत्मा मरती नहीं है.

३६ ज्ञानी अवसर (वक्त), शक्ती, विभाग, अभ्यास समय, विनय, स्वसमय (स्वमत) परसमय, अभीप्राय,इत्यादी विचार कर इच्छा रहित हो प्रवृततेहैं.

३७ सरीर जैसा बाहिर असार है, वैसा अंदरही है.

३८ जहां ममत्व नहीं है. वोही मुक्ती मार्ग है.

३९ लोकका स्वरूप जाण, लोक सज्ञासे दूर रहना.

४० परमार्थ दर्शी, मोक्ष मार्ग शिवाय, अन्य स्थानमें रती (सुख) नहीं मानते है, वोही मोक्ष पाते हैं.

४१ *केवली भगवानको, न बन्ध है न मोक्ष हैं

४२ परमार्थी दर्शीको, कुछभी जोखम नहीं है.

४३ अज्ञानी सदा निद्रिस्थ है, परमार्थी सदा जाग्रत हैं.

४४ जो शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श्यकी सुन्दरता असुन्दरतामें सम प्रणाम रखते है. वो ज्ञान और ब्रह्म (निर्विकल्प सुख) को जाण सक्के हैं, ओर वोही लोकालोक को जाणते है.

४५ कर्मको तोडने सेही, पवित्र आत्माके दर्शन होते है.

४६ जो अपनी तर्फ देखता हैं, वोही सर्व तर्फ देखता है.

४७ जो क्रोधको छोडेंगे, वो मानको छोडेंगे, जो मानको छोडेंगे वो मायाको छोडेंगे, जो मायाको छोडेंगे, वे लोभको छोडेगे, जो लोभको छोडेंगे, वे रागको छोडेंगे, जो रागको छोडेंगे वे द्वेषको छोडेंगे, जो द्वेषको छोडेंगे, वे मोहको छोडेंगे, जो मोहको

छोडेंगे, वे गर्भसे छूटेंगे, जो गर्भसे छूटेंगे, वे जन्मसे छूटेंगे, जो जन्मसे छूटेंगे, वे मरणसे छूटेंगे, जो मरण से छूटेंगे वे नर्क से छूटेंगे, जो नर्कसे छूटेंगे, वे तिर्यंचसे छूटेंगे, जो तिर्यंचसे छूटेंगे, वो सर्व दुःखसे छुट परम सुखी होवेंगे.

४८ आत्म ज्ञान विन. शास्त्र ज्ञान निकम्मा है.

४९ इन्द्रियों के सुखका त्यान कर, आत्म ज्ञान प्राप्त करते ऐसा नहीं जानना की, इन्द्रियोंके सुख छुटनेसे दुःखी बन जाता है, क्योंकि आत्म ज्ञानकी सिद्धी होते अमृत मयही संपूर्ण बन जाता है. और उस अमृतपान से जालम जन्म मरणका दुःख दूर हो जाता है. जिससे परम सुखी बन जाता है.

५० हे आत्मन् आत्माके साथ निश्चय कर, मै अतिन्द्रिय हूं, अर्थात मेरे इन्द्रि नहीं हैं, तथा मै इन्द्रियोंके गोचर आवू ऐसा नहीं हूं. तथा इन्द्रियोका शब्दादी विषय है. सो आत्मामें नहीं है. इससे अतिन्द्रिय अर्थात् इंन्द्रियातति हूं. और अनिर्देश हूं. अर्थात् बचन द्वारा मेरा वर्णन नहीं हो सक्ता, इस लिये बचनातीत हूं. ऐसेही मै अमुर्ती हूं. चैतन्य हूं. आनंदमय हूं. इत्यादी विचारसे. निज स्वरूपमें निश्चल होवे.

५१ हे आत्मन्, आत्माके साथ ऐसा विशुद्ध

निर्मळ अनुभव कर की यह आत्मा समस्त लोकके यथार्थ स्वरूप को प्रगट करनें वाला अद्वितिय सूर्य है. विश्वमें सामान्य अग्नीसे दीपकका प्रकाश अधिक गिनते है, दीपकसे मशालका, मशालसे ग्यासका और ग्याससे बिजलीका प्रकाश अधिक पडता है. इन कृतिम प्रकाशसे स्वभाविक चन्द्रमा का प्रकाश अधिक है, और चन्द्रके प्रकाशसे सूयका प्रकाश अधिक लगता है. परंतु आत्म ज्ञानके प्रकाश तुल्यतो कोटी सूर्य भी प्रकाश नहीं कर सक्के हैं, अन्य दीपका दिक के प्रकाशको वायू वगैरे घातिक वस्तुका और चंद्र सूर्य को राहू बद्दल वगैरे के अच्छादन होनेसे तथा अस्त होनेसे प्रकाशका नाश होता है. परंतु आत्म ज्योंतीको मेरु पर्वतको हलाने वाला वायूभी नहीं बुज सक्का है और न बद्दल या राहू, उसे अच्छादन (ढक्कन) दे सक्के हैं. आत्म जोती यथा रूप प्रकाशित्त होनेसे तीन लोकके सुक्ष्म बादर चराचर सर्व पदार्थ एक वक्त एक ही समय मात्रमें भाष होने लगते हैं, तब आत्मा परमानंदी बनता है. इत्यादी विचार में प्रवृते सो अंतर आत्मावाला जाणना. अंतर आत्माको प्राप्त हुवेही परमात्मा होते हैं.

तृतीय पत्र-"परमात्मा"

३ "परमात्मा" सर्व कर्म रहित अनंत ज्ञानादी अष्ठ गुण साहित सिद्धी (मुक्ति) स्थानमें संस्थित अजरामर अविकार, सिद्ध परमात्मा है, वोही परमात्मा हैं.

पुष्पम-फलम्

यह तीनही आत्माका ध्यान, विशेषता से अप्रमत मुनी को होता है. क्यों कि अप्रमत पणाही ध्यानकी विशुद्धता, उत्कृष्टता करता है. उसके जोर से महामुनी आगे गुणस्थान रोहण सुखे २ कर, सर्व कर्मको क्षपाके सिद्धस्थान प्राप्त कर सक्के है.

द्वितिय शाखा-"उपध्यान" चार.

श्लोक— पिण्डस्थंच पदस्थंच, रुपस्थं रुप वर्जितम्.
चतुर्द्धा ध्यान माम्नातं, भव्यरा जीव भास्करैः

ज्ञानार्णव अ० ३६

अर्थ— १ पिण्डस्थ ध्यान. २ पदस्थ ध्यान. ३ रुपस्थध्यान. और ४ रुपातीत ध्यान. इन ४ ध्यानके ध्यानेसें भव्य जीवों, कैवल्य ज्ञान रूप भास्कर (सूर्य) को प्राप्त कर सक्के हैं. अब इनका अर्थ—

श्लोक पदस्थं मंत्र वाक्यस्थं, पिण्डस्थं स्वात्म चिन्तम्
रुपस्थं सर्व चिद्रुपम् , रुपातीतं निरञ्जनम्
ब्रहद्रव्य संग्रह.

अर्थ– १ मूळ मंत्राक्षरोका स्मरण करना, सो पदस्थ ध्यान.

२ स्व आत्मके पर्यायका विचार करना सो पिण्डस्थ ध्यान

३ चिद्रूप अँर्हत भगवंतका ध्यान करना सो रुपस्थ ध्यान.

और ४ निरंजन निराकार सिद्ध परमात्म का ध्यान करना सो रुपातीत ध्यान.

प्रथम पत्र–पदस्थ ध्यान.

१ "पदस्थ ध्यान"=मन्त्र (मनको त्रस्त करे ऐसे पद (वाक्य) सो इस जक्तमें मतांतरो की भिन्नतासे इष्ट देवो विषय श्रधा में भी भिन्नता हो गइ है. इसी सबब से भिन्न २ मतावलम्बीयों, भिन्न २ देवो के नामसे मंत्र रचना कर, उनका स्मरण करते हैं. जैसे–"उँ नमः शिवाय" "उँ नमो वासुदेवायः वगैरे. तैसे जैन मतमें माननिय, अनादी सिद्ध देवाधी देव, पंच परमेष्ठी हैं. उनका स्मरण सर्वोत्तम हैं, वो स्मरण बहुत प्रकारसे किया जाता है. यथा–

गाथा पणत्तीस सोलड ठप्पण, चउ दुग मेगंच ज-
वह ज्झाएह, परमेठी वाचयाणं, अण्णं च
गुरुवए सेण १ द्रव्य संग्रह.

अर्थात—पेंतीस (३५) सोले (१६) अठ (८) पांच (५) चार (४) दो (२) एक (१) इस प्रमाणें अक्षरों के स्मरण सें पंच प्रमैष्टी योंका जप-ध्यान हो सक्ता हैं. और इस सिवाय अन्यभी तरह, मुन्याधिक अक्षरोंके साथ प्रमाणसे पंच प्रमैष्टी का ध्यान होता हैं. सो गुरु गम्मसे धारण कर जाप करना.

३५ अक्षरका मूल मन्त्र.

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४
ण मो अ रि हं ता णं, ण मो सि द्धा णं, ण मो
१५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८
आ य रि या णं, ण मो उ व ज्झा या णं, ण मो
२९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५
लो ए स व्व सा हू णं,

षोडस (१६) अक्षरी मन्त्र.

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४
'अ रि हं त, सि द्ध, आ चा र्य, उ पा ज्झा य,
१५ १६
सा हू,*

* इसमें पंच प्रमैष्टीके नाम मात्र हैं.

'अठ (८) अक्षरी व पंचाक्षरी (५) मन्त्र

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ १ २ ३ ४ ५

अ रि हं त सि द्ध सा हू* ॥ अ, सि, आ, उ, सा,†

चार, दो, और एकाक्षरी मन्त्र.

१ २ ३ ४ १ २ १

सिद्ध साहू,‡ ॥ सिद्ध§ ॥ उँ¶ ॥

---

* इसमें अरिहंत और सिद्धदो मूळ मंत्र के पद कायम रख, पीछे के तीन पद एक साहू शब्द में लिये हैं क्यों कि आचार्य. उपाध्याय, और साधू यह तीन साधू ही होते हैं.

† इसमें– 'अ' से अरिहन्त, 'सि' से सिद्ध. 'आ'से आचार्य. 'उ, से उपाध्याय. और 'सा, से साहू. योंएकेक अक्षरका जापहैं

‡ इसमें 'अरिहंत' और 'सिद्ध' इन दोनो को सिद्ध पदमें लिये. क्यों कि अरहन्त भी आगे सिद्ध होने वाले हैं. उन्हे सिद्ध कहनेमें कुछ हरकत नहीं, और आचार्यादि तीन पद साधु पदमें समाये सो तो पीछे कह दिया है.

§ 'सिद्ध' पद छोड बाकीके चारही पदकी मुख्य इच्छा सिद्ध पद प्राप्त करनेकी हैं. इस हेतूसे पांचही पदको एक सिद्ध कहनेमें कुछ हरकत नहीं है

¶ गाथा—'अरिहंता, असरीरा, आयरिया, उवज्झाय, मुणिणो पंचख्खर निष्पन्नो उँकारो पंच पर मिठि" अर्थ—अरिहंत की आदीमें 'अ' है. असरीर (सिद्ध) की आदीमें भी 'अ' है. और अचार्य के आदीमें भी 'आ' दीर्घ है. उपाध्याय की आदीमें 'उ' हैं और मुनी (साधु) की आदीमें 'म' है, यह पांच अक्षर अ-अ-आ-उ-म्. व्याकर्ण सिद्ध. हेमचन्द्राचार्य कृत शाकटायन के सुत्रसे तीनो दीर्घ 'अ' मिल एक दीर्घ 'आ' बना; तब 'आउम' ऐसा हुवा. 'आ' कार और 'उ' कार मिलनेसे 'ओ' कार होता है. और मकार बिन्दूरु होनेसे ओं (उँ) कार सिद्ध हुवा.

यह पंच प्रमैष्टी के जाप स्मरण की संक्षेपमे रीत बताइ. और भी इस सिवाय, शास्त्र ग्रन्थमें स्मरण करने के मन्त्र कहे हैं. उसमे के कुछ यहां दर्शाये जाते हैं.

गाथा मङ्गल शरणो पदानि, कुरम्बं यस्तु संयमी स्मपति. अविकल मेकाग्रधिया, सचा पवर्ग श्रियं श्रयाति.

अर्थात—मङ्गल, शरण, और उत्तम इनका जो स्मरण करते हैं, वे मुनीराज मोक्षरूप महा लक्ष्मीका आश्रय लेते है सो—

मन्त्र चात्तारि मङ्गलं, अरहन्ता मङ्गलं, सिद्ध मङ्गलं, साहु मङ्गलं केवालि पण्णतो धम्मो मङ्गलं, चत्तारी-लोगुत्तमा-अरहन्त लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलि पण्णतो धम्मो लोगुत्तमा, चत्तारि सरणं पव्वज्जामी, अरहन्त सरणं पव्वज्जामी, सिद्ध सरणं पवज्जामी साहू सरणं पवज्जामी केवलि पणतो धम्म सरणं पव्बज्जामी.

सूत्र—चउवी सत्थ एणं दंसण विसोहिं जणयइ. उत्तरध्येयन.

अर्थ—चउवी सत्थ (चतुर्वीस जिनस्तवं) मंत्र. अर्थात्—चौवीस जिन (तिर्थंकर) की स्तुती (गुणग्रा-

म) करनेसे, दर्शन (सम्यक्त्व) की विशुद्धता, निर्मलता, होती हैं. वो चउवी सत्व. यह है.

मन्त्र लोग्गस्स उज्जोयगरे, धम्म तित्थयरे जिणे, अरिहंत केतइसं, चउवी संपि केवली.१ उसभ माजियंच वंदे संभव माभिनंदण च सुमइंच पउमप्पहं सुपासं, जिणंच चंदप्पहं वंदे,२ सुविहं च पुष्फदंतं शिअल सिज्जंच वासु पुज्जंच मिमल मणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ३ कुंथु अरंच मल्लिं, वंदे मुणि सुव्वयं नमि जिणं च वंदामि रिठ्ठ नेमि पासंतह वद्धमाणंच ४ एवं मय अभिथ्थुया, विहुय रयमला, पहीणं जर मरणा, चउवि संपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसियंतु ५ कितिय वंदिय माहिया जे ए लोग्गस्स उत्तमा सिद्धा. आरुग्गं बोहिलाभं सामाहिवर मुत्तमं दिंतु. ६ चंदे सुनिम्मल यरा, आइच्चेसु अहियं पयास यरा, सागर वर गंभीरा, सिद्धा सिद्धीं मम दिसंतु.

सूत्र—थय थुइ मंगलेणं नाण दंसणं चरित्त बोहिलाभं जणयइ, नाण दंसण चरित्त बोहिलाभं संपणेणं जीवे, अंत किरियं कप्पां विमाणो ववत्तियं आराहणे. आराहेइ,

अर्थ, थय थुइ [स्तुतीरूप]मंगल सो नमोत्थुण रूप मंत्र पढनेसे ज्ञानकी निर्मलता होय. बुद्धिकी वृद्धीहोय. दंशण की निर्मलता होय सम्यक्त्व शुद्ध होए. चारित्रके गुणकी बृद्धी होए. बोद्ध बीज काला-

भ होए और ज्ञान, दर्शन, चारित्रकी शुद्धी होनेसे मोक्ष की प्राप्ती होती हैं; कदास पुण्य की बृद्धी हो जाय तो १२ देवलोक ९ ग्रेयवेक ५ अनुत्तर विमान इसमे महारिद्धिक देव होए.

मन्त्र—नमोत्थुणं, अरिहंताणं, भगवंताणं, आइगराणं, तित्थयराणं, सयं संबुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं, पुरिससिहाणं पुरिसवर पुंडरियाणं, पुरिसवर गंध हत्थीणं, लोगुत्तमाणं, लोग नाहाणं, लोग हियाणं, लोग पइवाणं, लोगपज्जोयगराणं, अभयदयाणं, चक्खूदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदयाणं, जीवदयाणं, बोही दयाणं, धम्म दयाणं, धम्म देसियाणं, धम्म नायगाणं, धम्म सारहीणं, धम्म वर चाउरंत चक्कवटीणं, दीवो ताणं सरण गइ पइट्ठा. अप्पडी हय वरनाण दंसण धराणं, वियट्ट छउमाणं, जिणाणं जावयाणं, तिन्नाणं तार याणं, बुध्दाणं, बोहियाणं, मुत्ताणं, मोयगाणं, सव्वन्नुणं, सव्वदरिसिणं, सिव-मयल-मरुय-मणंत-मख्खय म-बावाह, मपुणरावीति. सिध्दिगइ नाम द्धेयं ठाणं संपताणं नमो जिणाणं, जिय भयाणं. (यह थय थुइ मंगलं)

यह नवकार चउवीस्तव (लोग्गस्स) और नमोत्थुणं यह तीन स्मरण तो यहां बताये; और इन सिवाय जित्ने जिन भाषित सुत्रों की सज्झाय (मूल पाठका पढना) तथा और भी श्रीजिनस्तव. तथा मुनीस्तव.

वैराग्य आत्मज्ञान गार्भित. अध्यात्मिक, शांतादी रस से भरपूर. इत्यादी जो स्वध्याय परियट्टणा रूप ज्ञान फेरना सो सब पदस्थ ध्यान जाणना*

अनुभव युक्त पदस्थध्यान ध्यानेसे जीव परमोत्कष्ट रस में चडाहुवा महा निर्जरा करता है

द्वितीय पत्र पिण्डस्थध्यान

२ पिण्डस्थध्यान=पिंड=सरी में. स्थरहीहुइजो आत्मा उसकी भिन्नता का चिंतबणा सो पिणुस्थ ध्यान.

गार्भित पुद्गल पिण्डमें, अलख अमूर्ती देव.
फिरे सहज भव चक्रमें, यह अनादी टेव.

अर्थात्—यह पिण्ड [सरीर] सप्त [७] धातूओं करके बना हुवा. महा अशुचीका भंडार, क्षिण २में पर्यायका पलटने बाला. मृगापुत्रके फरमान मुजब "वाही रोगाण आलए" अर्थात्—आधी [चिंता] व्याधीं[रोग] उपाधी [दुःख] का घर, ऐसे सरीरमें अलख—जो लक्ष [अक्कल] में जिसका गुण न आवे. (समावे) ऐसे और अमूर्ती जो देखनेंमे न आवे, ऐसे देव विराजमान हैं परन्तु अनादी कालसे जिनका फिरनेकाही स्वभाव

* "र्हं" यह पदस्थ ध्यानका 'बीज मंत्र' है.

देहाध्याससे व कर्म संयोग कर हो रहा है, जिससे संसार चक्रवालमें, अनंत परिभ्रमण कर रहा है. इस का मुख्य हेतू यह है की—

जो जो पुद्गल की दिशा, ते निजमाने हंस.
याही भरम विभाव ते, बडे कर्मको वंस.

जो जो जगत्में पुद्गली पदार्थ हैं, उनको अपने मान रहा है, और उनका स्वभाविक स्वभावमें पलटा पडनेसे. अर्थात् पुद्गलोंका संयोग वियोग होनेसे आपनाही संयोग वियोग समजता हैं, मतलबकी अपनी अंनत ज्ञानमय जो चैतन्य अवस्था हैं, उसको कर्मों के नशेमे छक हो भूलगया भ्रममें पडगया; और अपना स्वभाव को छोड विभाव में राच— माच रह्या हैं, जिसीसे कर्मों की वृधी होती हैं और भव भृमण करणा पडता हैं. कहा है—

कर्म संग जीव मुढ हैं. पावे नाना रुप,
कर्म रुप मलके टले. चैतन्य सिद्ध स्वरूप.

यह सब कर्म की संगती काही स्वभाव हैं, न की चैतन्यका क्योंकि चैतन्य तो सिद्ध स्वरूपी परमात्मा रूप हैं. इसका भव भ्रमणमें पडनेका स्वभाव हैं ही नही. जो होय तो सिद्ध भगवंत्त को भी पुनर जन्म लेनापडे. परन्तु कर्मों संयोगसे मूढ हो एकेंद्रीया-

दिकयोनी में अनेक प्रकार का रूप धारन करता हैं. और जबकर्म रूप मैल दूर हुवा देहाध्यास छूटा की निजरुपको सिद्ध स्वरूप को प्राप्त होजाता हैं.

संसारी जीवों को अनादी कालसे, ज्ञानावरणियादी कर्मों का सम्बन्ध होने से, आत्मा की अनंत ज्ञानमय चैतन्य शक्ती लुप्त हुइहैं. इस लिये विभाव रूप हो रहाहैं. जैसे कीचड के संयोगसे पाणी की स्वच्छता नष्ट होती हैं, तैसे ही कर्म संयोगसे चैतन्य विभाव रुप हुवाहैं. जब भवस्थिती परिपक्क होतीहैं तब सम्यक्त्वादी सामग्री प्राप्त होतीहैं. तब कर्म सम्बन्ध नष्ट हो शुद्ध चैतन्यता प्रगट होतीहै, उसीहींवक्त जीव सर्वज्ञाताको प्राप्त हो एक समयमें त्रिकाल के सर्व पदार्थ जानने देखने लगता हैं

सिद्धा जैसा जीवहैं, जीव सोही सिद्ध होए.
कर्म मैलका अंतरा, बूजेविरला कोए
कर्म पुद्गल रुप हैं. जीव रुप हैं ज्ञान.
दो मिलके बहुरुप हैं बिछडे पद निर्वान.

इस लिये यह जीव सिद्ध स्वरुपी हीहैं, क्योंकि जीव ही सिध्द पदको प्राप्तकर शक्ता हैं. अन्य नहीं. देखइत्नीही हैं की, कर्म और जीव का मूल स्वभाव पहचानना चाहीये; कर्महैं सोपुद्गल जणितहैं, पुद्गल मय

रुपी निर्जीव जड पदार्थहैं, और जीव ज्ञान स्वरुप अ-रुपी चेंतना वंत हैं. इन दोनोका अनादी सम्बन्ध के सबबसेही देहाध्यासके प्रभावसेही भवांतरों में अनेक तरहका कायारूप धारण करता है. ऐसे जानने वाले जक्तमें थोडें है. जो यह जानेंगे. वोही कर्म सम्बध तोड, निर्वाण प्राप्त करनेका उपाय करेंगे.

गाथा— जीवो उव ओगम ओ, अमुत्ति कत्ता सदेह परिमाणो. भोत्ता संसारत्थो सिद्धो, सो विस्स सेड्ढगइ. द्रव्य संग्रह.

'जीवा'=यह जीव शुद्ध निश्चयसे आदी मध्य और अंत रहित स्व तथा परका प्रकाशक, उपाधी र-हित शुद्ध ज्ञान रूप निश्चय प्राणसें जीता है. तो भी अशुद्ध निश्चय नयसे, अनादी कर्म बन्धके वशसे, अ-शुद्ध जो द्रव्य प्राण, और भाव प्राण उनसे जीता है.

१ त्रीकालमें जीवकें चार प्राण होते है, १ इंन्द्रियोंके अगोचर शुद्ध चैंतन्य प्राण, उसके प्रति पक्षी क्षयोपशमी इन्द्रि प्राण. २ अनंत वीर्य रुप बलप्राण, उसका अनंत वा हिस्सा. मन 'बल' वचन बल, कायाबल, प्राण है. ३ अनंत शुद्ध चैतन्य प्राण उससे विप्रीत आदी अंत सहित आयुप्राण है. और ४ श्वासोश्वासादि खेद रहित शुद्ध चित प्राण उससे उलठ श्वासोश्वास प्राण हैं यह ४ द्रव्य प्राण और ४ भाव प्राणसे जो जीया है. और जीवेगा वो व्यवहार नयसे जीव हैं.

इस लिये जीव है. 'उव ओगम ओ'=शुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे परिपूर्ण निर्मल दो उपयोग है, वैसाही जीव है; तो भी अशुद्ध नयसे क्षयोपशमिक ज्ञान और दर्शन युक्त हैं. 'अमुति' जीव व्यवहार नयसे, मुर्ती कर्माधीन होनेसे वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, रूप, मुर्ती दिखता है; तोभी निश्चय नयसे अमूर्ती इन्द्रियोंके अगोचर शुद्ध स्वभावका धारक है. 'कत्ता' जीव निश्चय नयसें क्रिया रहित निरूपाधी ज्ञायकैक स्वभावका धारक है, तोभी व्यवहार नयसे मन बचन कायाके व्योपारको उत्पन्न करने वाले, कर्मों सहित होनेके सबबसे, शुभाशुभ कर्मोका कर्ता हैं. 'सदेह परिमाणो' जीव निश्चयसे स्वभावसे उत्पन्न शुद्ध लोकाकाशके समान *असंख्यात प्रदेशका धारक है. तोभी सरीर नामकर्मोदय से उत्पन्न संकोच विस्तारके स्वाधीन हो. देह प्रमाणे होता हैं. जैसे दीपक भाजन प्रमाणें प्रकाश

* केवल ज्ञानी आयुष्य कर्म थोडा रहे, और बेदनी अधिक रहे, तब दोनोको बराबर करने अठ समयमें समुत्घात होती है. आत्म प्रदेशका १ समय चउदे राजु लोकमें उंचा नीचा का दंड. २ समय कपाट ३ समय मथन ४ समय अंतर पुरे (उस वक्त सर्व लोकमें आत्मा व्याप जाता है.) ५ स. अंतर सारे ६ मथन सारे ७ कपाट सारे ८ मदंड सारे.

कर्ता है. 'भोत्ता' जीव शुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे, रागादी विकल्प रहित, उपाधी सें शुन्य हैं. और आत्म स्वभाव से उत्पन्न हुवा सुख रूपीअमृत को भोगवने वाला है, तोभी अशुद्ब नयसे पूर्वोक्त सुख रुप भोजन के अभावसे शुभा शुभ कर्म से उत्पन्न हुये सुख और दुःखका भोगवने वाला है. संसारत्थ' जीव शुद्व निश्चय नय सें संसार रहित, नित्यान्द रुप एक स्वभावका धारक हैं, तोभी अशुद्व नय से द्रव्य- क्षेत्र- काल- भाव- और भव इन पांच प्रकार के संसार में रहत्ताहैं. सिद्धो' जीव व्यवहार नय से निज आत्म की प्राप्ती स्वरूप जो सिद्धत्व हैं, उसके प्रतिपक्षी कर्मोदय से असिद्ध हैं तोभी निश्चय नय से अनंत ज्ञानादी गुण के स्वभावका धारक होने से सिद्ध हैं. विस्स सोड्ढ गइ' जीव व्यवहार से चार गतिमे भ्रमण करने वाले कर्मोदय से उंची नीची तिरछी दीशामें गमन करने वाला हैं. तोभी निश्चय से केवल ज्ञानादी अनंत गुणोंकी प्राप्ती रुप जो मोक्ष हैं. उसमेंजाती वक्त स्वभावसेही उर्ध गमनकर्ता हैं.

शुद्ध चैतन्य उज्वल द्रव, रह्यो कर्म मळ छाय.
तप संयमसे धोवतां, ज्ञान ज्योती बढ जाय.

ऐसा जाण मुमुक्षु प्राणीयों को देह पिण्ड कर्म

पिण्ड से आत्मा चैतन्य कों अलग करने. का ज्ञान युक्त तप संयम करो. कि जिससें कर्म रहीत शुद्ध, चैतन्य,* ज्ञान श्वरूप बन जाय. क्यों की ज्ञानादी रत्नों का भाजन चैतन्यही है, ज्यों चांदी खटाइ सें धोनेसें उज्वलता आतीहैं. तैसे चैन्तय उज्वलहो—

ज्ञानथकी जाणे सकल, दर्शन श्रधा रूप.

चारित्र थी आवत रूके, तपस्या क्षपन स्वरूप.

ज्ञान से चैतन्य की और कर्म की प्रणती पहचाने, दर्शन से उसेजिनोक्त आगम प्रमाणे सत्य श्रधे. चारित्रसे जीव और कर्मका अलग करनेके मार्ग लगे. और तप करके जीव और कर्म अलग करे यह उपाय.

जीव कर्म भिन्न २ करो, मनुष्य जन्मको पाय.

ज्ञानात्म वैराग्य से. धैर्य ध्यान जगाय.

मनुष्य जन्ममेंही होता है. इस लिये हे मोक्षार्थीयों! यह इष्टार्थ सिद्धीका अवसर मनुष्य जन्मादी सामग्री प्राप्त हुइ है तो अब वैराग्य धैर्य युक्त धारण कर ज्ञान युक्त ध्यानस्त बन जीवको कर्मसे अलग करे.!!

---

* जैसे स्फटिक रत्न स्वभावसेही निर्मल उज्वल होता है. परंतु उसके नीचे अन्य रक्तादी रंगका पदार्थ रखनेंसे वो रंगमय दिखता है. तैसेही आत्मा कर्मोंदय प्रमाणेही भासता हैं. परंतु है निर्मल.

यों जीव और कर्मकी भिन्नता जाणनेका, तथा उन्हे भिन्न २ करनेका उपाय संक्षेपमें कहा, औरभी ग्रंथकार कहते हैं.*

* पिंडस्थ ध्यानमें संस्थित होनेसे आत्माकी ज्ञान जोतीका प्रकाशित करनेका सरल उपाय एक ग्रन्थकार ऐसा कहते है की— शुभध्यानमें कहें मुजब, द्रव्यादी शुभ सामुग्री युक्त ध्यानस्त हो, अंतःकरण में विचारे बाहिर श्वास निकल ते की मै स्वस्थान छोड बाहिर आया, और पुनः अन्दर श्वास जाती वक्त विचारे की, मै अन्दर चला. यों विचारही विचारसे सिरस्थानसे कंठस्थान और कंठस्थानसे नाभीकमलस्थान पे जा विराजमान होवे. और वहां स्थिर हो अन्दरको द्रष्टीको खुल्ली कर देखने ऐसा भाषा होगा की मै नाभी कमल पेही संस्थित हूं, यो जब अपनी आत्माका सुक्ष्म स्वरूपका भान होवे. तब उस सुक्ष्म स्वरूपकी द्रष्टी खुल्ली कर नाभीके आजु बाजु चारही तर्फ अवलोकव करे, यों धैर्य और द्रढ निश्चयके साथ अवलोकन करनेसे जो अन्धकार देखाय तो, उसी वक्त द्रढ निश्चयसे कल्पना करे, की इस अन्धकारका शिघ्र नाश होवो, और अनंत प्रकाशी सूर्य मंडलका मेरे हृदयमें प्रकाश होवो. यों कहता हुवा सुक्षम रूपसेही आकाशकी तर्फ (उंचा) अवलोकन करे, के उसी वक्त सूर्य जैसा प्रकाश अंतःकरण में दिखने लगेगा, यों हमेशा अभ्यास रखनेंसे अंतर आत्मा की ज्ञान ज्योतीमें दिनो दिन विशुद्धता की अधिकता होती है. और अंतरिक गुप्त वस्तुओं जाणनेमें आने लगती है और अनेक गुप्त शक्तीयों प्रगट होती है.

पिण्डस्थ ध्यानमें ९ तत्वके विचार करनेसे भी ज्ञान ज्योती प्रकाश होता है, ऐसा भी एक ग्रन्थकार लिखते हैं. सो ध्यानस्त

ऐसेही पिण्डस्थ ध्यानमें "सप्त भंगीसे आत्म-तत्व" विचारे. १ प्रत्येक पदार्थ अपने २ द्रव्य चतुष्टय¶

हो, दृढता पूर्वक पहले पृथवी तत्वका विचार करता गोलाकार पृथवी के मध्य क्षीर सागर और उसके मध्यमें जंबुद्विपका कमल ठेरावे मेरु पर्वत को किरणिका ठेहरा उसमें सिंहासनकी कल्पना कर उसपे आप बेठे. फिर दूसरा अग्नी तत्वका विचार करता. हृदयमें १६ पंखुडीके कमलपे 'अ' स्वरसे लगा १६ मा अः स्वरकी स्थापन कर मध्यमें "र्हँ" बीज स्थापे, फिर विचार करे की इसमे धुम्र निंकलने लगा, और महाज्वला प्रगट हो कमल को भस्म कर भक्षके अभावसे अग्नी शांत हुइ फिर ३ वायूका विचार करे के महा वायु प्रगट हो मेरुको कम्पाने लगा. और पहलेकी भस्म उडा ले गया जिससे वो जगा साफ होगइ. फिर ४ पाणी तत्व विचारे की आकाश मै गर्जारवहो बुंद पडने लगा और महामेघ बर्षके उस स्थानको अत्यंत स्वच्छ कर दीया. और मेघ भगगया. फिर ५ मा आकाश तत्व विचारेकी अब मेरी आत्मा सप्त धातू मय पिंड रहित, पूर्ण चन्द्रके समान प्रकाशित निर्मल सर्वज्ञ देवतुल्य हुइ. यह दृढतासे निश्चयात्मक बननेसे हुबेहू बनाव द्रष्टी आता है.

¶ अपने २ द्रव्य चतुष्टयसे सर्व पदार्थ सत्य हैं. जैसे आत्मा ज्ञानादी गुणका भाजन (आधार) ही हैं. परन्तु ज्ञानादी गुणोंमें जो समय २ में फेरफार होता है सो पर्यायोंका होता है, न की स्वभावोंका: २आत्माके असंख्यात प्रदेशोंमें जो ज्ञानादी गुण रहेहै सो स्व क्षेत्र है. ३ पर्यायोमे जो उत्पात व्यय क्षिण २ में होता है, सो स्व काल है. और ४ आत्माके गुणोंका और पर्यायोंका जो कार्य धर्म

..हहसास्वभाव

(द्रव्य क्षेत्र काल भव) की अपेक्षा से असति रूपहैं. जैसे आत्मा में ज्ञानादी गुण का सदा आस्तीत्व होता हैं. इस लिये * स्यात् आस्ति होय. २ और वोही पदार्थ अन्य (पर) द्रव्य चतुष्टय की अपेक्षा से नास्ति रूप हैं. जैसे आत्मा जडता (अचेतन्यता) रहित हैं, इसलिये स्यात् नास्ति होय. ३ सर्व पदार्थ अपनी २ अपेक्षा सें आस्ति रूप हैं. और परकी अपेक्षासे नास्ति रूप हैं. जैसे आत्मा में चैतन्यता की अस्ति और जडता की नास्ति;इस लिये एक ही समय में स्यात् आस्ति नास्ति दोनो होय. ४ पदार्थ का स्वरूप एकांतता से जैसा का वैसा कहा नहीं जाय, क्योंकि जो आस्ति कहेंतो नास्तिका और नास्ति कहे तो आस्ति का अभाव आवे. इसलिये एक ही समय में दोनो भाव प्रकाशे नहीं जाय; केवल ज्ञानी एक समयमें वरोक्त दोनों भावकों जाणतो शक्तें है. परन्तु वाणी द्वारा वागर नहीं शक्तेंहैं. तो अन्य की क्या कहना; इसलिये स्यात् अवक्तव्यं, ५ एकही समयमें आत्मा में सर्वस्व पर्यायों का सद्भाव आस्तित्व हैं और पर पर्यायों का सद्भाव नास्तित्व हैं. और दोनो भाव

* स्याद् या स्यात् शद्बका अर्थ 'होगा' अर्थात् हां! ऐसेभी होगा ऐसा होता हैं.

एकही बक्त कहैं नहीं जाय, आस्तिक है तो नास्तिका आभाव आवें, मृशा लगे, इसलिये स्याद आस्ति अव क्तव्य होय ६ और इसही तराह जो नास्ति कहै तो आस्तिक अभाव आवे इसलिये स्यात् नास्ति अवक्त होय. ७ आस्ति के कहने से नास्ति का अभाव, नास्तिके कहने से आस्तिका अभाव, और पदार्थ एकही काल में आस्ति नास्ति दोनो तरह हैं परन्तु कहैजाय नहीं क्यों की वाक्या तो कर्म वृती है इसलिये स्यत् आस्ति नास्ति अवक्तव्य होय यह आस्ति नास्ति अश्रिय स्यात् धाद मत सें आत्मास्वरूप दर्शाया.

एसेही नित्य, अनित्य; सत्य, असत्य; वगैरे अनेक रीतीसे आत्म स्वरूपके विचारमें जो निमग्न हो पूद्गल पिण्ड से आत्माकी भिन्नता लेखे, निश्चय आत्मिक बने.

यह सब पिण्डस्थ ध्यानमें चिंतवन करनेका

मनहर—पाणी हारी कुंभरु, नटवर-वृतमें, कामीको-कन्ता,
सती-पती चहाइ; गौ-वच्छ, बालक-मात, लोभी-धन,
चकवी-सूर्य, पपैया-मेहाइ; कोकिल-अम्ब, नेसायर-चन्द्र ज्यों, हंसो-दधी, मधू-मालती, ताइ, भयवंत-सरण,
आंयकी-औषधी, 'अमोल' निजात्म त्यों नित्य ध्याइ.१

मुख्य हेतु, सर्व वस्तुओंमे मन रमण करता है उससे निवार, एक आत्माके तर्फ लगानेके लियेही है. आत्माके तर्फ मन लगनेसे अन्य पुद्गलोंको ग्रहण नहीं करता हैं, जिससे नवीन कर्मका बन्ध नहीं होता है. ज्यूंने कर्म क्षिण २ में अलग हो आत्म ज्योती पूर्ण प्रकाश पाती है. तब सर्व कार्य सिद्ध होते हैं.

ऐसे पिण्डस्थ ध्यानका संक्षेपमें विचार इत्ना ही है की, ज्ञानादी अनंत पर्याय का पिण्ड एकमै आत्मा हूं. और वर्णादी अनंत पर्यायका पिण्ड, कर्म तथा उससे उत्पन्न हुवा सरीर है. इस लिये दोनो के स्वभाव भिन्न भिन्न होनेसे दोनो अलग २ हैं. ऐसा निश्चय होयसो पिण्डस्थ ध्यान. इस ध्यानसे भेद विज्ञान प्राप्त होता है. जिससें आत्म स्वभावमें, अत्यंत स्थिरता भाव युक्त, क्षांत, दांत, आदी गुण स्वभाविक जाग्रत होनेसे, सर्व भयसे निवृत्ती होती है. उन्हे महा भयंकर स्थानमें, क्षुद्र प्राणीयोंके समोह में या प्राणांतिक उपसर्गके प्रसंगमेभी किंचितही क्षोभ प्राप्र नहीं होता है, अखंडित ध्यानकी एकाग्रता से वो स्वल्प कालमें इष्टार्थ साधते हैं.

तृतीय पत्र "रूपस्थध्यान"

३ "रुपस्थध्यान"=रुपी परत्माके गुणमें स्थिर होना' सो रूपस्थध्यान, अर्हंत पाहुडमें कहा है–

ज जाणइ अरिहंते, दव्व गुण पज्जवेहिय;
ते जाणइ नियऽप्पा, मोह खलु जाइय लयं.

अर्थात्–जो अर्हंत भगवंतका स्वरूप, द्रव्य, गुण, पर्याय, करके जाणेगा, वोही आत्माके स्वरूप को जाणेगा. और जो आत्माको पहचानेगा वोही मोह कर्मका नाश करेगा.

अर्हंत, अरिहंत, और अरूहंत यों ३ शब्द हैं. १ देविन्द्र नरेंद्रादिक के पूज्य, व अतिशयादी ऋद्धी युक्त सो अर्हंत. २ कर्म व राग द्वेषरूप शत्रुके नाश करे उन्हे, अरिहंत कहते है, और ३ जन्मांकुर, व रोगादी दुःख के अंकुरके नाश करने वालेको अरुहंत कहते हैं.

श्री अर्हंत भगवंत, अनंत-ज्ञान-दर्शन-चारित्र, और अनंत तप, यह अनंत चतुष्टय कर युक्त है, समव सरणके मध्यमें, अशोक वृक्षके नीचे, मणी रत्नो जडित सिंहासणके उपर, चार अंगुल अधर, छत्र, चमर, प्रभामंडल की विभूती युक्त द्वाद्वश (१२) जात

की प्रषदा से प्रवरे, दिव्य ध्वनी प्रकाश करते हैं, जिसका अवाज, भाद्रव के मेघके गर्जारवकी तरह, चार २ कोश में, चारही तर्फ पसरता है, जिसे श्रवण कर, अचूतेंद्र, सक्रेंद्र, धरणेंद्र, नरेंद्र, (चक्रवर्ती) और वृश्पति जैसे विद्यामें प्रचूर, षड शास्त्र के परगामी, महा तेजस्वी, वक्तृत्वकला के धारक, महा प्रवीण प्रभूकी दिव्य ध्वनी श्रवण कर, चमत्कार पाते हैं. की हा हा! क्या अतुल्य शक्ती? क्या विद्या सागर, एकेक वाक्य की क्या शुद्धता मधुरता सरलता इत्यादी गुणानुराग में अनुरक्तहो, हा हा कर अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होतें हैं. जैसे क्षुद्यातुर मिष्टान भोजनकों और त्रषातुर सितोदक को ग्रहण करता हैं. तैसे ही श्रोातगण जिनेश्वर के एकेक शब्द को अत्यंत प्रेमातुरता से ग्रहण कर, हृदय को शांत करते है;परम वैराग्य कों प्राप्त होते हैं, वाणी श्रवण करते सर्व काम को भूल एकाग्रता लगाते हैं.

और भी भगवंत की सूर्त्ति, मनहर ,शांत, गंभीर, महा तेजस्वी एक हजार आठ उत्तमोत्तम लक्षणों से विभुक्षित. देदिप्य – झलझाट करती, सर्वोत्तम अत्यंत प्यारी मुद्रा के दर्शनमें लुब्ध होतेहैं. और हृदयमें कहतेहैं की, हा हा, क्या यह स्वरुप संपदा,

और क्या यह अपुर्व वैराग्यदिशा. निकामी अक्रोधी. आमानी, अमायी, अलोभी, अरागी, अद्वषी, निर्वीकारी, निर्अंहकारी महा दयाल, महा मयाल, महङ्गल, महा रक्षपाल, असरण सरण, अतरण तरण, भव दुःख वारण, जन्म सुधारण, जक्त उधारण, अचैंत्य, अतुल्य शक्तीके धारक, त्रिदुःख वारक, अक्षोभ, अनंत, नेत्र युक्त, पर्म निर्यामक, पर्म वैद्य, पर्म गारूडी, पर्म ज्योती, पर्म झाज, पर्मशांत, पर्म कांत, पर्म दांत पर्म महंत, पर्म इष्ट, पर्म मिष्ठ, पर्म जेष्ठ, पर्म श्रेष्ट, पर्म पंडित, धर्म मंडित, मिथ्या खंडित, पर्म उपयोगी, अत्म गुण भोगी, पर्म योगी, महा त्यागी, महा वैरागी, अचिंत्य, अगम्य, महारम्य, अनंत दानलब्धी लाभलब्धी, भोग लब्धी, उपभोगलब्धी, और बलवीर्यलब्धी के धरण हार, क्षयिक सम्यक्त्व' यथा ख्यात चारित्र, कैवल ज्ञान, केवल दर्शण, युक्त अष्टादश (१८) दोष रहित, चौतीस अतिशय, पैंतीस वाणी गुण सहित, पर्म शुक्ल लेशी, पर्म सुक्लध्यानी, अद्वैवत भावी, परम कल्याण रूप, परम शांत रूप, परम पवित्र, विचित्र, दाता-भुक्ता, सर्वज्ञ सर्व दर्शी, सिद्ध, बुद्ध, हितैषी, महाऋषी, निरामय, (निरोग) महाचन्द्र, महासूर्य, महा सागर, योगिंद्र, मुनिंद्र, देवाधिदेव, अचल,

विमल, अकलंक, अवंक, त्रिलोकतात, त्रिलोकमात त्रिलोकभ्रात, त्रिलोकइश्वर, त्रिलोकपूज्य, परम प्रतापी, परमात्म, शुद्धात्म, अनन्द कन्द, ध्वन्द निकन्द, लोकालोक, प्रकासिक, मिथ्या तिम्र विनाशिक, सत्य स्वरूपी, सकल सुखदायी, साद्वाद शैली युक्त, महा देशना फरमाते है की, अहो भव्य! बूजो २ (चेतो २) मोह निद्रा नजो, जागो, जरा ज्ञान द्रष्ठी, कर देखो, यह महान् पुन्योदयसे, अत्युत्तम मनुष्य जन्मादी सामग्री, तुमारे को प्राप्त हुइ है, उसका लाभ व्यर्थ मत गमावो. ज्ञानादी त्री रत्नोसे भरा हुवा अक्षय खजाना तुमारे पास है, उसे संभालो, उसीके रक्षक बनो, इसे लूटने वाले, मोह, मद, विषय, कषाय, रूप ठगारे तुमारे. पीछे लगे है, उनके फंदसे बचो, इनके प्रसंगसे अनंत भव भ्रमणकी श्रेणियों में, जो जो विप्त सही है. उसे यादकर पुनः उस दुःख सागरमें पडनेसे डरो. और बचनेका उपाय करनेकी येही बक्त हैं. जो यह हाथसे छुट गइ तो पीछी हाथ लगनी महा मुशकिल है. जो इस वक्त को व्यर्थ गमा देवोगे तो फिर बहुतही पश्चाताप करोगे. यह सच्च समजो. और प्राप्त हुये दुर्लभ्य लाभ को मत गमावो. बनी वक्तमें लाभ लेना होय सो लेलो. मानो! मानो!! और विक्राल मायाजाल

को तोड, जगतका फंद छोड, चलो हमारे साथ, होवो हुंशार, हम अपना शाश्वत अविछल मोक्ष नगरमें परमानन्द परम सुख मय शाश्वत स्थान है; वहां जाते हैं. आवो जो तुमारे को आना होय तो; वोही तुमारा घर है, वहां गये पीछे, पुनरावर्तिनही करना पडता है, अनंत अक्षय अव्याबाध सुखमें, अनंत काल वांही रहना होगा. चेतो! चेतो!! चेतो!!! इत्यादी अर्हंत भगवंतका परमोत्कृष्ट धर्मोंपदेश श्रवण कर फरसना कर, भूत कालमें अनंत जीव मोक्ष* गये, वृतमान कालमें संख्याते जीव मोक्ष जाते है, और भविष्य कालमें अनंत जीव मोक्ष जायंगे, इस लिये हे आत्म अहो! मेरी प्यारी आत्मा! तूं महा भाग्योदयसे श्री जिनेश्वर भगवान का मार्ग पाया हैं, उनके यया तथ्य गुणकी पहचान हुइ हैं. तो उन्ह जैसा होनेके लिये उनके गुणोंमे लव लगा, उन्हींके हुकम प्रमाणे चल, उन्हने किये वोही कृत्य यथा योग्य कर, उन्ही रूप

---

* अविवहार रासीमेसे ६ महीने और ८ समयमें १०८ जीव निकलके नियम कर विवहार रासीमें आते हैं ज्यादा भी नहीं तैसे कमीभी नहीं और इत्नेही जीव विवहार रासीमेंसे निकल मोक्ष जाते हैं. तोभी तीनही कालमें निगोदके एक शरीरमें के जीवोंका एक अंश भी कमी (खाली) नहीं होता है ऐसा सुद्रष्ट तरंगणी दिगाम्बर ग्रन्थ में लिखा है.

बन. तन्मय हो लवलीन होजा, जैसे स्वपन अवस्थामें द्रष्ट वस्तुके ध्यानमें लीन हो, उसही रुप आप बन जाता है. अपनी मूल स्थिती भूल जाता है; वो तो मोह दिशा है. परंतु वैंसेही ज्ञान दिशामें लव लीन हो अर्हंत भगवानके गुणोंमे तन्मय बन, के जिसके प्रशादसे तेरी अनंत आत्म शक्ती प्रगटे और तूही अर्हंत बने.

चतुर्थ पत्र "रुपातीतध्यान"

४ 'रूपातीत ध्यान'=रूपसे अतीत=रहित (अरूपी) ऐसे सिद्ध प्रमात्माका ध्यान-चिंतवन करना सो रूपातीतध्यान.

गाथा—जारिस्स सिद्ध सहावो, तारी सहावो सव्व जीवाणं
तम्हा सिद्धंत रुइ, कायव्वा, भव्व जीवेही.

सिद्ध पाहुड.

अर्थात्—जैसा सिद्ध भगवंतकी आत्माका स्वरूप हैं, वैसाही सब जीवोंकी आत्माका स्वरूप है, इस लिये भव्य जीवोंको सिद्ध स्वरूप में रुची करना अर्थात सिद्ध स्वरूपका ध्यान करना.

गाथा—जं संठाणं तुइहं, भवं चयं तस्स चरिम समयंमी
आसिय पए संघणं, तं संठाण ताहिं तस्स. ३

दिहवाह न्संवा, जं चरिम भवे हवेज्ज सयणं,
तत्तो ती भाग हीणं, सिद्धाणो गाहण भणिया. ४

उववाइसूत्र

**अर्थात्—मनुष्य जन्मके चर्म (छेले) समयमे, जिस आकारसे यहां सरीर रहता हैं; उनके आयुष्य पूर्ण हुये बाद जिवके निजात्म प्रदेश जिस आकारसे उस सरीर के लम्बाइ पणें तृतीयांस हीन (तीसरा भाग कम, सिद्ध क्षेत्र लोकके अग्रभागमें वो प्रदेश जाके जमते है. उसेही सिद्ध भगतंकी अवगहना कही जाती हैं.*

---

* नाशिकादी स्थानमें जो छिद्र (खाली जगा है वो भरानेसे घनाकार (निबड) प्रदेश रह जाते हे. इसी सबबसे तृतियांस अवघेणा कम हो जाती है सिद्धकी अवघेणा जघन्य १ हाथ ४ अंगुल मध्यम ४ हाथ १६ अंगुल, उत्कृष्ट ३३३ धनुश्य ३२ अंगुल.

प्रश्न—अरुपी और अवघेणा कैसे?

समाधान—(१) अरुपीको अरुपीही द्रष्टांतसे सिद्धी करें तो जैसे अकाश अरुपी है तो भी कहा है. लोकालोक (लोकका आकाश) सादीसांत (आदी और अंत सहित) तथा घटाकाश मठाकाश, वगैरे तो आकाश कूछ पदार्थ हैं. तभी आदी अंत होता है, तैसेही सिद्ध की अवघेणा जाणना. फरक इत्नाही की आकाश तो अरुपी अचैतन्य हे, और सिद्ध अरुपी चैतन्य हैं. (२) किसी विद्वानसे पूछा जाय की, आप जित्नी विद्या पढे हो वो हमे हस्तावल (हाथमें आवले के फलकी) माफिक बतावो; परंतु

अब वो जीव द्रव्य कैसा हैं, सो सूत्रसे कहे हैं. "मति तत्थण गाहिता, ओए अप्पति ट्ठाणस्स खेयन्ने" अर्थात्-सिद्ध भगवंत के रूपका, या गुणका वर्णव करने 'सव्व सरा नियट्टंता" अर्थात अव्यक्तव्य हैं. कोइभी शब्दमे वरणव करनेकी शक्ती नहीं है,

---

वो बता सक्ता नहीं है. तैसेही सिद्ध भगवंतको भी "ज्ञानं स्वरूप ममलं प्रवदन्ति संतः" अर्थात् संतः पुरुष निर्मल ज्ञानरूप बताते हैं. (३) और जो रुपी पदार्थ का द्रष्टांत देवें तो मट्टीकी मुशमें मेणका पटलगा' पीतलादी धातूको रस डाल भूषणादी बणाते है वो भूषण उसमेसे निकाले पीछे मूशमे मेण (मौम) का भाष मात्र आकार रहता है. तैसेही सिद्ध भगवंतका अरुपी आकारकी अवघेणा हैं. (४) कांचमें दिखता हूवा प्रतिबिंब फक्त भाष मात्र है. तैसे सिद्धकी अवघेणा. (५) जोती स्वरूपी कहे जाते है. उसका मतलब यह है की जैसे कोटडीमें एक दीवा किया उसका प्रकाश उसमें समाजाता है, और बहुत दीवे कीये तोभी उनका प्रकाश उसही कोठडीमें समाजाता है. परन्तु वो प्रकाश क्षेत्र रोकता नहीं है. (जमीन जाडी होती नहीं हैं) ऐसेही अनंत सिद्ध मोक्ष मे हैं. और अनंतही हो गये तोभी बिलकूल जागा रोकाती नहीं है. एक दीवेका प्रकाश जित्ने स्थलमे फैला है. वोही उसकीं अवघेणा. तैसे सिद्ध की अवघेणा जाणना. (६) सिद्ध भगवंत छद्मस्त की अपेक्षासे अरुपी हैं. (दिखते नहीं है) परंतु केवल ज्ञानी तो देख शक्ते हैं. जो केवली देखते हैं. वोही जीव द्रव्यके आत्म प्रदेश है, और उसीकी अवघेणा समजना. इत्यादी द्रष्टांतसे सिद्ध की अवघेणा समजना चाहीये.

क्यों कि वहां तक कल्पना विचारना दोडही नहीं शक्ती है. बडे २ ब्रम्हवेता सुर गुरू वृस्पति सर्व शास्त्रों के पार गामीयों की भी बुद्दी हाल तक वहां न पहोंची, तो अब क्यो पहोंचेंगी, जो विशेष ही दोड करी तो इत्ना कह शक्तेहैं, की वहां एकला जीव कर्म कलंक व सर्व संग रहित, तत् सत् चिदात्म, अपने ही प्रदेश युक्त विराज मान हैं वोसंपूर्ण ज्ञान मयें ही हैं.

और भी वो जीव कैसे हैं सो सूत्र से कहत है

सूत्र— ण दीहे, ण हस्से, ण वट्टे, ण तंसे, ण चउरंसे, ण परिमण्डले, ण किण्हे, न णीले, ण लोहीए, ण हळिदे. ण सुकिल्ले, ण सुरहिगंधे, ण दुरहि गंधे, ण तित्ते, ण कडुए, ण कसाते, ण अंबिले, ण महुरे, ण कक्खडे, ण मउए, ण गुरुए, ण लहुए, ण सिए, ण उण्हे, ण णिध्दे, ण लुक्खे, ण काउ, ण रुहे, ण संगे, ण इत्थि, ण पुरिसे, ण अन्नहा, परिण्णे सण्णे उवमा ण विज्जति, अरूवी सत्ता अप्पयस्स पयंणात्थि आचारांग सूत्र.

अर्थात्—सिद्ध अवस्थाके विषय रहे हुये जीव नहीं लम्बे, नहीं ठिगणे है, नहीं लड्डू जैसे गोल हैं. नहीं तीखुण, नहीं चौखुण, नहीं चूडी जैसे मंडलाकार, नहीं काले, नहीं हरे, नहीं लाल, नहीं पीले,

नहीं श्वेत, नहीं सुगन्धी, नहीं दुर्गन्धी, नहीं मिरच जैसे तीखे, नहीं कडुवे, नहीं कसयले, नहीं खट्टे, नहीं मीठे, नहीं कठिण, नहीं नरम (कोमल) नहीं भारी (वजनदार) नहीं हलके, नहीं ठन्डे, नहीं उष्ण (गरम) नहीं स्निगन्ध (चीकणे) नहीं लुरके इत्यादी किसी भी प्रकार के नहीं हैं. अब उनको जन्मनाभी नहीं, मरना भी नहीं, किसीका संग भी नहीं; नहीं है वो स्त्री, नहीं है पुरूष, नहीं है नपुशक, परन्तु सर्व पदार्थके जाण पिरिज्ञाता = संपूर्ण पणे जाणते हुये, सदा स्थिरभूत विमाराजनहै, उनको ओपमा दी जाय ऐसा पदार्थ एकही जक्त में नहींहैं, क्योंकि वो तो अरूपीहैं, और ओपमा देने लायक व बचनसें कहे जावें वो पदार्थ रूपी हैं, इस लिये अरूपी को रूपी की ओपमा छाजती नहीं हैं, और उनकी भी अवस्था किसी प्रकारके विशेषण देने लायक हैही नहीं; इस लिये ही कहा जाता कै की, उनको जान ने के लिये, बताने के लिये, कोइभी शब्द शक्तीवंत नहीं हैं. फक्त व्यक्ती रूपही गुणोच्चार न कर सक्तेहैं.

गाथा—जहा सव्व काम गुणियं, पुरिसो भोत्तूण भोयण कोइ
तण्हा छुहा विमुक्को, अच्छेज जहा अमियोतत्ति १८

इय सव्व कालातित्ते,आउलं निव्वाण मुवगया सिद्धा
सासय मव्वा वाहय, वट्टइ सुही सुहं पत्तो. १९

उववाइ सूत्र

अर्थात – यथा द्रष्टांत कोइ पुण्यवन्त, श्रीमंत सर्व प्रकार के सुख की समग्री युक्त वो इच्छित – रागणी यादी श्रवण कर, नाटकादी अवलोकन कर, पुष्पादी सूंघकर, षड रस भोजन इछित भोगवकर, और इछित सर्व सुखों का भोगोपभोग ले कर त्रप्त हो, निश्चिन्त सुख सेजा मे अनन्द के साथ बेठा हैं, सर्व कामना रहित संतुष्ट हुवाहैं, किसी भी तरह की जिसे इच्छा न रही हैं. तैसेही सिद्ध भगवन्त सिद्ध स्थान में सर्व काम भोग से त्रप्त, निरिछित हो; अतुल्य अनोपम, अमिश्र, शाश्वत, अव्याबाध, निरामय, अपार, सदा सुख से त्रप्त हुये की माफिक, सदा विराजमानहै. उनको कदापी कोइभी काल में, किसी भी प्रकार की, किंचित मात्र इच्छा उत्पन्न होती ही नहीं हैं, ऐसे पर्मानन्द परमसुख में अनंत काल संस्थित रहते हैं.

ऐसे २ अनेक सिद्ध परमात्माके गुण, रटन मनन निध्यासन, एकाग्रतासे लवलीन हो ध्यान करे, उस वक्त अन्य कल्पना को किंचित मात्र अपने हृदय में

प्रवेशही नहीं करनेदे, जिधर द्रष्ट करे, उधर वोही वो द्रष्ठ गत होए. ऐसा लव लीन हुवा जीव द्रढाभ्यास से, उसही स्वरूप को, ज्ञान द्रष्टी कर देखने लगे, तब सिद्ध स्वरूपकी और अपने श्वरूप की तुल्यता करे, की इनमे और मेरेमें क्याफरक हैं. कुछ नहीं, जो रूप यह है वोही यह है. मेरा निजश्वरूप ही परमात्मा जैसा है. सर्वज्ञ सर्व शक्ती वान निष्कलङ्क, निराबाध चैतन्य मात्र सिद्ध बुद्ध प्रमात्मा में ही हूं. ऐसे भेद रहित बुद्धि की निश्चलता स्थिरता होय, अपको आप सरीर रहित या कर्म कलंक रहित शुद्ध चित्त, अनन्द मय जानने लगे. ऐकांतताको प्राप्त होवे फिर द्वितिय पन बिलकुल रहे नहीं. उस समय ध्याता और ध्येयका एकही रूप बन जाता है.

ऐसे जिनके सर्व विकल्प दूर हो गये हैं. रागादी दोषोंका क्षय हो गया है, जानने योग्य सर्व पदार्थको यथा तथ्य जानने लगे. सर्व प्रपंचोसे विमुक्त हो गये. मोक्ष स्वरूप होगये. सर्व लोकका नाथपणा जिनकी आत्मामें भाष होने लगा, ऐसे परम पुरुषको रुपातीत ध्यानके ध्याता कहीए.

इस ध्यानके प्रभावसे, अनादी जक्कड बन्ध जो कर्म का बन्ध है, उसे क्षिण मात्रमे छेद, भेद, तक्षि-

ण केवल ज्ञान और केवल दर्शनको संपादन कर, निश्चय से मोक्ष सुख पावे. (यह ध्यान आगे कहेंगे उस सुक्लध्यान के पेटे में हैं.)

ऐसे शुद्ध ध्यानके प्रभावसे ध्याता पुरुषकी आत्मा निर्मल होते अष्टऋद्धी आठ प्रकारकी आत्म शक्ती प्रगट होती है सो—

१ "ज्ञान ऋद्धि" के १८ भेद— १ केवल ज्ञान, २ मय पर्यव ज्ञान, ३ अवधी ज्ञान, ४ चउदे पूर्वी, ५ दश पूर्वी, ६* अष्टांग निमित, ७ 'बीजबुद्धी'=शुद्ध क्षेत्रमें योग्य वृष्टीसे धान्यकी वृधी होय, त्यों सहजा नंदी आत्मसे ज्ञानकी वृधी होय- ८ 'कोष्टक बुद्धि'= ज्यों कोठारमें वस्तु विणशे नहीं, त्यों ज्ञान विणशे नहीं. तथा राजाका भंडारी भंडारमेसे वक्तोवक्त यथा योग्य

---

* निमित के ८ अंग—१ अंतरिक्ष=अकाशमें चंद्र सूर्य ग्रह नक्षत्र बादल आदी देखके, २ भूम=पृथ्वी कंपनेसे (आदीसे पृथ्वी गत निध्यान जाने), ३ अंग=मनुष्यादीके अंग फरकनेसे, ४ स्वर दुर्गादी पक्षीके शब्दसे, ५ लक्षण=मनुष्य पशु के लक्षण देख, ६ व्यंजन तिल मसादी व्यंजन देख, ७ उत्पात=रक्त दिशादी देख, ८ स्वपन—स्वपनसे, इन आठ कामोंसे होते हुये शुभाशुभ हो तब को जाणे परंतु प्रकाशे नहीं.

माल देवे त्यों ज्ञान देवे, ९ § पदानुसारणी=एक पद के अनुसारसे सर्व ग्रन्थ समज जाय. १० सभिन्न श्रुत¶=सुक्ष्म शब्दभी सुणले, तथा एक वक्तमें अनेक शब्द सुणे, ११ दुरास्वाद=भिन्न २ स्वादको एकही वक्त में जाणले, तथा दूर रहा हुवा रसको स्वादले, १२–१६‡ श्रवण, दर्शन, घ्राण, स्वाद, स्पर्श्य, इन ५ ही इन्द्री की तिव्र शक्ती होवे, १७ प्रत्येक बुद्ध=उपदेशविन अन्य संयोगसे वैराग्य आवे, १८ वादीत्व शक्ती इन्द्रादी देवका भी चरचामें पराजय करे.

२ 'क्रिया ऋद्धि' के ९ भेद–१ जलचर=पाणी पें चले पर डुबे नहीं, २ अग्नी चरण=अग्नीपे चले पर जले नहीं, ३–६ पुफचरक=फुलपे, पतचरण–पत्तेपे, बीजचरण–बीजपे, और तंतू चरण=मकडीके जालेके तंतूपे चले पर वो बिलकुल दबे नहीं, ७ श्रेणी चरण पक्षीके तरह उडे, ८ जंघा चरण=जंघाके हाथ लगानेसे और ९ विद्याचर–विद्याके प्रभावसे क्षिण मात्मे अ-

§ पदानु सारणी के तीन भेद–प्रती सारी पहले पद मिलावे, अनुसारी–छेले पद मिलावे, उभयासारी–बिचके पद मिला ग्रन्थ पूर्ण करे

¶ १२ जोजन तकका शब्द सुणले.

‡ पंच इन्द्रीके विषयको ९ जोजनके अंतरसेही पेछान ले.

नेक योजन चले जाय.

३ 'वेक्रय ऋद्धिके' ११ भेद—१ अणिमा-सुक्ष्म सरीर बनावे. २ महिमा—चक्रवृतीकी ऋद्धि बनावे. ३ लघिमा--हवा के जैसा हलका सरीर करे, ४ गरिमा—बज्र जैसा भारी सरीर करे, ५ प्राप्ती--पृथवीपे रहे मेरुचूलकाका स्पर्श्य करले. ६ प्राकाम्य--पाणीपे पृथवीकी तरह चले, और पाणी में डूबे. जैसे पृथवीमें डूबे, ७ ईशत्व तीर्थंकरकी तरह समवसरणादी ऋद्धि बनावे, ८ वशत्व—सबको प्यारा लगे, ९ अप्रातिघात—पर्वतके अन्दर से भेदके निकल जाय. १० अन्तर्धान=अद्रश (गुप्त) हो जाय, और ११ कामरूप—इच्छित रूप बनावे.

४ तप ऋद्धि के ७ भेद--१ उग्रतप--एक उपवास का पारणा कर दो उपवास करे दो के पारणे तीन उपवास यों जावजीव लग चडाता जया सो उग्रतप, और जीवतव्यकी आशा छोड तपकरे सो उग्रोग्र तप, तथा एकांत्र उपवास करे उसमे* अंतराय आ जाय तो बेले २ पारणा करे, यों चडाते जाय सो 'अवस्थितोग्रतप' २ 'दीत्ततवे' तप करके सरीर तो दुर्बल

---

* पारणाका जोग नहीं बने. तथा अन्य कारणसे उपवासमें अंतराय आजाय तो फिर बेले २ पारणा करे, फिर अंतराय आवे तो तेले २ करे यों जावजीव चडाते जाय,

हो जाय, परंतु सरीरसे सुगन्ध आवे. कान्ती बडे. ३ 'तत्ततवे' ज्यों तपे लोहेपे पडा हुवा पाणी सुख जाय तैसे तिव्रक्षूधा लगने से थोडा अहार करे जिससे लघु नीत बडीनीत की बाधा न होवे, और देवतासे भी ज्यादा सरीरमें बल आवे. तथा अनेक लब्धीओं प्राप्त होवे. ४ 'महातप' मास क्षमण जावत् छमासी तप करे, क्षिणंतर रहित श्रुतज्ञान में तल्लीन बने रहे, जिससे परम श्रुत, अवधी, मन पर्यव ज्ञानकी प्राप्ती होवे, ५ 'घोरतप' महा वेदना उत्पन्न हुये भी किंचित ही कायरता न करे, औषध न लेवे, ग्रहण किया तप न छोडे, उग्रह (बीकट) अभिग्रह धारण करे, सरीरकी संभाल न करे, ममत्व रहित विचरे, ६ घोर पराक्रम' स्वशक्ती तप संयमके अतीशयसे जगत् त्रयको भयभ्रं त कर सके, समुद्र शोक शके और पृथवी उलटी कर शकें इत्यादी महाशक्तीवंत होवे. ७ 'घोरगुण ब्रम्हचारी' नवबाड विशुद्ध नव कोटी युक्त शुद्ध शील वृतादीके प्रसाद से त्रण जगत्के महारोगको उपशमा के शांती वरता सके, सर्व भये निवार सके, व्यंतरभय, जंगम, स्थावर विष, वगैरे उपसर्ग उनपे किंचितही असर पराभव न कर सके, यह रहे वहां मार मारी दुर्भिक्षा दी उपद्रव न होवे. इत्यादी महा प्रभाव वंत होवे.

५ 'बल ऋद्धि' के ३ भेद १ मन बलीये-राग द्वेष सकल्प विकल्प परिणाम रहित मन रहे, २ बचन बलीये-अन्तर महुर्तमें द्वादशांगी का अभ्यास करे, बहुत काल पढते भी श्रम पैदा न होवे, ३ 'काया बलीये'--मास वर्ष पर्यंत कायुत्सर्ग करे तो भी थके नहीं ऐसे महाशक्तिवंत.

६ 'औषध ऋद्धि' के ८ भेद १ आमोसही--चरण रज पग(धूल) धूलके स्पर्श्य से, २ खेलोसही--श्लेषम थूक आदी स्पर्श्य से, ३ जलोसही--सरीरके पसीने के स्पर्श्य से, ४ मलोसही--कर्ण चक्षु नाशीकादी सरीरके मैलके स्पर्श्य से ५ विपोसही--भिष्ट मूतके स्पर्श्य से और ६ सव्वोसही--सर्व स्पर्श्यसे (इन ६ का स्पर्श्य रोगीके होनेसे उसका)सर्व रोग नाश होवे, ७ असीबिष--विष अमृत रूप प्रगमें तथा वचन श्रवण मात्रसे सर्व विष विरला जाय. ८ 'द्रष्टी विष'--कृपा द्रष्टी मात्रसे विष अमृत मय हो जाय और कोप कर देखे तो अमृत विषमय होजाय, महा विकारी निर्विकारी बने ऐसे महा शक्तीवंत.

७ 'रस ऋद्धि' के ६ भेद--१ अस्सी विषा'--कोप वंत बचन मात्र से और २ द्रष्टि विषा'-- द्रष्टी मात्र से दुसरे के प्राण नाश करशके.३ खीरासवी नि

रस अहार हस्त स्पर्श्य से क्षीर जैसा होजाय, तथा बचन मत्र से निर्बल को पुष्ठ बनादे. ४ महुरासवी-कटू अहार स्पर्श्य से मधूर होजाय, तथा बचन मधुर मद्य (सेहत) जैसे प्रगमे, (सप्पिरासवी) लुक्खा अहार स्पर्श्य से घ्रतसे संस्कारा जैसा होजाय, तथा बचन से रोग गमाशके, ६ अमइरासवी-विष स्पर्श्य से अम्रत जैसा होजाय तथा बचन से जेहर उतार शके.

८ 'क्षेत्र ऋद्धि' के २ भेद=१ अखीण माणसी अल्प अहार स्पर्श्य से अखूट हो जाय. चक्रवृतीकी शैन्यभी जीम जाय तो खुटे नहीं, २ अखीण महालय स्पर्श्य मात्रसे भोजन वस्त्र पात्र सर्व अखूट होय.

ये सर्व १८+९+११+७+३+८+६+२=६४ भेद लब्धी--ऋद्धिके हुये.

महातप और शुद्ध-ध्यानके प्रभावे, ऐसी २ लब्धीयों आत्म शक्तीयों, मुनीराजके प्रगट होती है, परंतु वे कदापी इनके फलकी इच्छा नहीं करते है, तो फोडना-करना तो कहा रहा!

श्लोक—अहो अनन्त वीर्यो अय, मातमा विश्वप्रकाशक:
तैलोक्यं चलायत्वे, ध्यान शक्ति प्रभावत:

अर्थ—अहो! सम्पूर्ण विश्व (जगत्) को प्रका-

शित करने वाली आत्मा! तेरी शक्तीका कोण वरणन कर शक्ते हैं? तूं अनंत अपार शक्तीवंत है. जो तूं सच्चे मनसे ध्यानमे तनमय हो कदापी अपना प्राक्रम अजमावे, तो एक क्षिणमात्रमें अधो मध्य उर्ध तीनही लोकको हला शक्ती है!! यह तो द्रबे गुण कहे, और भावे गुणतो अनंत अक्षय मोक्ष सुखकी प्राप्तीका करनेवाला शुद्ध ध्यान है!

परम पूज्य श्रीकहानजी ऋषिजी महाराज
की सम्प्रदायके बाल ब्रह्मचारी मुनी
श्री अमोलख ऋषिजी रचित
ध्यान कल्पतरू ग्रन्थका शुद्ध
ध्यान नामे उपशाखा
समाप्त.

चतुर्थशाखा-"शुक्लध्यान."

सूत्र

"सुक्के झाणे चउविहे चउ प्पडोयारे पन्नंते तंज्जहा"

अर्थात= सुक्क ध्यान के चार पाये, चार लक्ष ण, चार आलंबन, और चार अनुप्रेक्षा यो १६ भेद भ गवंतने फरमाये हैं, वो जैसे है वैसे कहते हैं.

धर्म ध्यान की योग्यता से, शुद्ध ध्यान ध्याते, मुनी, अधिक गुणोकों प्राप्त होतें हैं. अत्यंत शुद्धता को प्राप्त होते हैं; वह धीर, वीर मुनीस्वर शुक्ल ध्यान को ध्याते हैं.

शुक्ल ध्यानीके गुण.

शुक्ल ध्यानकी योग्यता जिनको प्राप्त होती है. उनकी आत्मामें स्वभाविकता से सद्गुणोंका उद्भव हो ता है वह गुण 'सागार धर्मामृत' ग्रन्थकी टीकामे इस तऱ्हे कहा है-

श्लोक—यस्यैन्द्रियाणी विषत्रेषु निवृतत्तानि,
सङ्कल्प मप्य विकल्प विकार दोषैः
योगै सदा तिभिहर निंशितान्तरात्मा,
ध्यानं तु शुक्ल मिति तत्प्रवदन्ति तज्ज्ञः

यस्यार्थम्—१ जो इन्द्रियातीत होय अर्थात् पंच इन्द्रियोंकी २३* विषय और २४० विकार, से निवृत हो शांत बन कूमार्गमे प्रवेश करनेसे अटक गइ. २ इच्छातित-अर्थात उनका मन सर्व प्रकारकी इच्छा चहासे निवृत गया. जिससे उनके चितमें किसीभी प्र

* पांच इन्द्रिके २३ विषय और २४० विकार—१ श्रूतेन्द्री के जीव शब्द अजीव शब्द और मिश्र शब्द यह ३ विषय. यह ३ शुभ और ३ अशुभ यों ६. इन ६ पे राग और द्वेष ये १२ विकार. २ चक्षु इन्द्रीके काला, हरा, लाल, पीला, श्वेत, यह ५ विषय. यह ५ सचित, ५ अचित, और ५ मिश्र यों १५ शुभ और १५ अशुभ यो ३० पे राग और ३० पे द्वेष यह ६० विकार. ३ घ्रणेंद्रीके सुगंध और दूगंध ये २ विषय. यह सचित अचित और मिश्र यों ६ पे राग और ६ पे द्वेष यह १२ विकार, ४ रसेंद्री के खट्टा, मीठा तीखा कडु, कषायला ये ५ विषय. यह सचित अचित और मिश्र १५ ये १५ शुभ और १५ अशुभ यों ३० इन ३० पे राग और ३० पे द्वेष यों रसेंद्री के ६० विकार ५ स्पर्शेन्द्री हलका, भारी शीत उष्ण रूक्ष चिकण नरम कठिण, ये ८ विषय यह सचित अचित मिश्र यों २४ शुभ और २४ अशुभ यों ४८ पे राग और ४८ पे द्वेष यों ९६. सर्व २३ विषय २४० विकार.

कार का संकल्प विकल्प (चलविचल) पणा नहीं रहा, एकांत न्याय मार्गके तर्फ लग गया. सुरांगना और सुरेन्द्रकी ऋद्धि भी उनके चित्तको क्षोभ उपजा नहीं शक्ती है, ध्यान से चला नहीं शक्ती है. तथा इस लोकमे पूजा श्लाघा, और परलोकमें देवादिककी ऋद्धि की वांछा न होवे, मेरु समान प्रणाम की धारा स्थिरी भूत हुइ है. ३ योगातीत--अर्थात मन बचन और कायाके योग्यका निरुंधन किया, मनको आत्म ज्ञानमें रमा बचनविन मतलब न उचारे और काया का हलन चलन विन प्रयोगन नहीं होवे, 'ठाण ठिय' एक स्थान स्थिरी भूत करे, ४ कषायातीत–क्रोधादी कषाय की लाय (अग्न) को बुजाके शांत शीतल बन गये हैं. अपमानादी मरणांतक जैसे घोर उपसर्ग होने सेभी कदापि कम्पित होना तो दूर रहा, परन्तु मनमेंभी दुभाव न लावे. ५* क्रियातीत--अर्थात का-

*१३ तेर क्रिया–१ मतलबसे कर्म करेसो अर्था दंड क्रिया. २ विना मतलब करे सो अनर्था दंड क्रिया. ३ जीव घात करे सो हिंशा दंड. ४ आचिंत कर्म हो जाय सो अकस्मात दंड. ५ भरमसे घात करे सो द्रष्टी विपरियासीया दंड. ६ झूट बोले सो मोषवती दंड. ७ चोरी करे सो अदत्त दान दंड. ८ अशुभ ध्यान ध्यावे सो अध्यात्मिक ९ अभीमान करे सो मानवति. १० मित्रपे द्वेष करे सो मित्र दोषवति. ११ कपट करे सो मायावति

यिकादिक २५ क्रियासे उनकी निवृती हुइ है. मनदी योगसे सर्व वृती बनने से बाह्याभ्यांतर क्रिया आनी सर्वथा बन्द होनेसे निष्क्रिय बने हैं. ६ द्रढ संहन. ७ शुद्ध चरित्र, जिनोक्त क्रिया करने वाले. विशुध अध्यवशायी, ८ शौच विकलता रहित. ९ निष्कंप--अडोल वृती. इन गुणो युक्त होवे, वे शुक्ल ध्यान कर सकते हैं. ऐसे गुणवाले शुक्ल ध्यान ध्याते है. जिसका वरणन आगे चार विभाग करके कहते हैं.

प्रथम प्राति शाखा-"शुक्लध्यानस्य पाय:"

सूत्र—पुहत वीयक्केस बीयारी, एगत्त वीयक्के अवीयारी, सुहुम किरिय अप्पडिवाइ,समुच्छिन किरिए अणियट्टि

अर्थ—१ पृथक्त्व-वितर्क, २ एकत्व-वितर्क, ३ सुक्ष्म क्रिया, अप्रतिपाति, और ४ व्युछन्न क्रिया निर्वृत्ती. यह शुक्लध्यानके ४ पाये. जैसे मकानकी मजबुतीके लिये पाये (नीम) की मजबूती-पक्काइ करते है. तैसेही शुक्ल ध्यानी ध्यानकी स्थिरता रूप चार प्रकारके विचार करते है.

---

१२ और लालच करे सो लोभवति (इन १२ क्रियासे निवृते तब)
१३ मी इरिवही सुक्ष्म क्रिया केवल ज्ञानीकी. सुयगडांग द्वितिय.

प्रथम पत्र-"पृथक्त्व वितर्क"

१पृथक्त्व वितर्क *=जीवाजीव की पर्याय का प्रथक२(अलग२) विचार करे, आर्थात श्रुतज्ञान (शास्त्रोक्तरीत) से पहले जीव की पर्याय का विचार करते, अजीव की पर्याय में प्रवेश करे; और फिर अजीव की पर्याय का विचार करते, जीव की पर्यायमें प्रवेश करे, नय, निक्षेपे, प्रमाण, स्वभाव, विभाव इत्यादी रीतसे भिन्न २ करके चिंतवन करे त. था आत्मा द्रवेसे धर्मास्ती का पृथक पणा करे, द्रव्य गुण पर्यायका भी पृथक पणा करे, आत्मा के सामान्य और विशेष गुणका पृथक पणा करे, एक पर्याय के भी द्रव्य गुण पर्याय का पृथक पणा चिंतवे, और आत्मा के असंख्य प्ररेशों मे से एक प्रदेश कों भी व्यंजन अर्थ योग से भिन्न पणा द्रव्य गुण पर्याय विचारे! योंविविध रूप से एकेक वस्तु का विचार करते उसमें प्रवेश कर, वीतर्क अनेक प्रकार के तर्क वीतर्क

---

* पृथक-विविध प्रकार, वितर्क-श्रुत ज्ञाने विचार. अर्थात-व्यंजन संक्रम सो अभिधान, उससे हुवा. २ अर्थ सक्रम अर्थका बोध और वो प्रगम. ३ योग संक्रम मनादी त्रियोगमें रमण ये तीन संक्रम इस पायेमें होते है.

उपजावें, और उसका अपनेही मनसे समाधान करते जाय ऐसे उसमे तल्लीन बन, फिरे अपनी आत्मा की तर्फ लक्ष पहोंचावे, की यह प्रत्यक्ष दिखता पुद्गल पिण्ड, और अन्दर रही आत्मा की चैतन्यता, दोनो अलग २दिखतीहैं प्रत्यक्ष भाष होतेहैं. परन्तु अनादी काल की एकत्रताके कारण से, वह्यमें एक रुप दिखतेहैं, तो भी निज २ गुणमें दोनो अलग२ हैं. जैसे क्षीर नीर (दुध पाणी) मिलनेसे एक रूप हो जाता है. तोभी दूध दूध के स्वभावमें है. और पाणी पाणी के स्वभावमें हैं. जो एकत्व होय तो हंसके चूंचके पुद्गल के प्रभाव से अलग २ कैसे हो जाते है. ऐसेही देह (सरीर) और जीव, तथा कर्म और जीव, ऐक्यता रूप दिखते हैं. परन्तु चैतन्य का चैतन्य गुण, और जडका जड गुंण, निज २ सत्तामें अलग हैं, सो अब मुजे दोनो की पृथकताका भाष हुवा है. अब अनादी एकत्व वृतीका त्याग कर, निज चैतन्य स्वभावमें स्थिरता होवें, द्वादशांग वाणी के पाणी रूप समुद्र में गोता खावे. यह ध्यान चउदे पूर्वके पाठी कोही होता हैं यह ध्यान मन बचन काय के योगों की द्रढता से होता हैं यह ध्यान ध्याती वक्त योगो का पटला होता ही रहता है एक योगसे दूसरे में और दूसरे से,

तीसरे में यो योगों का पटला होताही रहताहैं. विचार पटलनेसे ही, पृथक वितर्क ध्यान इसका नाम हैं. ८, ९, १०, ११, इन गुण स्थानमें मुनीको होता हैं. इस ध्यानसे चित शांत होजाताहैं, आत्मा अभ्यंत्र द्रष्टीको प्राप्त होता हैं, इन्द्रियों निर्वीकार होती हैं, और मोह का क्षय तथा उपसम होता हैं.

द्वितीय पत्र--"एकत्व वितर्क"

२एकत्व वितर्क=इस का विचार पहले पाये से उलट हैं, अर्थात पहले पाये में पृथक२ (अलग२)वीतर्क तर्कों कही, और इसमें एकत्व ऐक्यता रूप वितर्क तर्कों हैं. यह विचार स्वभावीक होता हैं, इस पाये वाले ध्यानीयों का विचार पटता नही हैं, एक द्रव्य कों व एक पर्याय को व एक अणुमात्र कों, चिन्तवते, उसीमें एकाग्रता लगावे, मेरू परे स्थिरी भूत हो जावे. यह ध्यान फक्त १२मे गुण स्थान में होता हैं, इस ध्यान में संलग्न हुये पीछे, क्षिणमात्र में मोह कर्म की प्रक्कतियों का नाश करे; उसही के साथ ज्ञान वरणिय, दर्शना वर्णिय, और अंत्तराय, यह तीनही कर्म प्रलय होजाते हैं. अर्थात चारही घन घाती कर्म क्षपाते हैं, (यहां तेरमा गुण स्थान प्राप्त होता हैं

और दूसरे पाये से आगे बढते हैं.)के उसी वक्त केवल ज्ञान और कैवल्य दर्शनकी प्राप्ती होती हैं [कैवल ज्ञान की महिमा] यह कैवल ज्ञान अपूर्व है अर्थात पहेल कधीही प्राप्त नहीं हुवा, अवलही पायेहै. केवल ज्ञानी सर्वज्ञसर्व दर्शी होते हैं. सर्व लोका लोक, वाह्याभ्यंतर; सुक्ष्मबादर, सर्व पदार्थ हस्तावल की तरह जानते देखते हैं, त्रिकाल के होतब को एकही समय मात्र में देखलेते हैं, अनंत दान लब्धी भोग लब्धी उपभोगलब्धी, लाभलब्धी, और बल वीर्य (शक्ती) लब्धी, की प्राप्ती होती है. उसी वक्त, देविन्द्र मुनिन्द्र (आचार्य) उनको नमस्कार करते हैं. [और जो उनोने पहले के तीसरे भवमें, तीर्थंकर गोत्र की उपारजना करी होय तो] उसीवक्त समव सरण की[रचना होती हैं. उसके मध्य भाग में३४ अतिशय करके विराजमान होते हैं. और३५गुण युक्त वाणी का प्रकाश करते हैं; उस वाणी रूप सूर्य का उदय होने से, मिथ्यत्व तिम्र (अन्धकार) का तात्क्षिण नाश होता हैं और भव्य जन रूप कमलो का बन पर फूलित होता हैं, उनके सद्बोध श्रवण से, हलु कर्मी जीव सूपन्थ लगके भव भ्रमणरूप या संचित पापरूप कचरेको जलाके भस्म करते है और मोक्ष के सन्मुख हो मोक्ष को

प्राप्त करते हैं. ऐसा परमोपकार का कर्ता केवल ज्ञान हैं, केवल ज्ञानीही तीसरे पायको प्राप्त होते है.

तृतीय पत्र-"सुक्ष्म क्रिया."

३ सुक्ष्म क्रिया-अप्रतिपाति यह तेरमें गुणस्थानमें प्रवतमे केवल ज्ञानीयों को होता हैं, सुक्ष-थोडी क्रिया-कर्म की रज रहैं, अर्थात् जैसे भुंजा हुवा अनाज खानेसे पेट तो भरा जाता है. परंतु बाया हुवा उगता नहीं हैं, तैसेही अघातीये कर्म की सत्तासें चलनादी क्रिया कर सक्ते हैं, परंतु वो कर्म भवांकुर उत्पन्न नहीं कर सक्ते है. आयुष्य है वहांतक है. और उनके योगसे सुक्ष्म इर्या वही क्रिया लगती है, अर्थात् मन बचन कायाके शुभ योगकी प्रवृती होते, अहार, विहार, निहारादी करतें सुक्ष्म जीवोंकी विराधना होनेसे क्रिया लगे, उसे पहले समय बन्धे, दूसरे समय वेदे. और तीसरे समय निर्जरे, (दूर करे) जैसे कांचपे लगी हुइ रज, हवासे दूर होय; त्यों क्रिया दूर हो जाती है. और अप्रतिपाति कहीये, आया हुवा ज्ञान पीछा जाता नहीं है; अर्थात्, मति आदी चार ज्ञान तो प्रणामों की वृधीसे बढते हैं, और हीनतासे चले भी जाते हैं, परंतु केवल ज्ञान आया हुवा पीछा जाता नहीं है, और

संपूर्णता है. इस लिये हानी बृधीभी नहीं होती है.

चतुर्थ पत्र—"समुछिन्न क्रिया."

४ समुछिन्न क्रिया-अनिवृती=यह चौथा पाया चउदमें (छेले) गुणस्थान में होता है, चउदमें गुणस्थानका नाम अयोगी केवली है, अर्थात्—वो मन, बचन, कायाके योग रहित हो जाते हैं, जिससे 'समुछिन्न क्रिय' अर्थात-सर्व क्रिया नष्ट हो जाती है. जहां योग और लेश्या नहीं वहां क्रियाका कामही नहीं रहता हैं; वो अक्रिय होते हैं, और 'अनिवृती' सो शैलेसी (मेरु पर्वत जैसी स्थिर) अवस्थाको प्राप्त होते है, जिससे वो शुद्ध चित पूर्णानन्द, परम विशुद्धता-निर्मलता होती है, अघातिक कर्मका नाश हो, शुद्ध चैतन्यता प्रगट हो जाती है, फिर वो उस स्वभावसे कदापि निर्वृतते नहीं हैं. मोक्ष पधारे उसही स्थितीमें अनंत काल कायम बने रहते हैं, यह शुक्लध्यान का चौथा पाया.

द्वितीय प्रति शाखा-"शुक्लध्यानस्य लक्षण"

सूत्र—सुक्कसणं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पन्नंत तंज्जहा. विवेगे, विउसग्गे, अव्वेठ, असमोहे.

अर्थ—शुक्लध्यान ध्याताके चार लक्षण (पहचा-

न) भगवंतने फरमाये सो कहते है. १ विवक्त=निवृत्ती भाव, २ विउत्सर्ग=सर्व सङ्ग परित्याग, ३ अवस्थित=स्थिरी भूत, और ४ अमोह=मोह ममत्व रहित.

प्रथम पत्र "विवक्त"

१ विवक्त शुक्लध्यानीका सदा यह विचार रहता है

गाथा—एगो में सासउ अप्पा, नाण दंसण संजउ
सेसामें बाहिरा भावा, सव्वे संजोग लख्कणा.

अर्थ—मै एक हूं. मेरा दूसरा कोइ नहीं है. मै दूसरे किसीका नहीं हूं. अर्थात मुजे किसीभी द्रव्यनें उत्पन्न नहीं किया. जीव द्रव्य अनादी अनंत है. इस को उत्पन्न करनेकी या नाश करनेकी शक्ती, किसी भी अन्य द्रव्यमें नहीं है. तैसेही यह कधी उत्पन्नभी नहीं हुवा, क्यों कि अनादी है. और कधी नाश भी नहीं होनेका, क्यों कि अवीन्यासी और अनंत हूं. इस लियेही कहा है की "सासउ अप्पा" अर्थात् आत्मा शाश्वती हैं, जो उपजाता है, उसका नाशभी होता है, आत्मा उत्पन्न नहीं हुइ, इसी लिये इस का नाश भी नहीं है. आत्म शाश्वती है. आत्मा-असंग है. अभंग है, अरंग है, सदा एकही चैतन्यता गुणमें रमण कर्ता है. पर सङ्ग की इसे कुछ जरूरही नहीं है. आ-

त्मा का निज गुण ज्ञान और दर्शन है. वो अनादी अनंत है. यह ज्ञान और दर्शन कहने रूप दो है. परन्तु सङ्कत्व से एकही है. क्यों कि इकेला ज्ञान कोइ स्थान विशेष काल ठहर शक्ता नहीं है, ज्ञानके साथ ही दर्शन उत्पन्न होता है. ज्ञानका अर्थ जानना, और दर्शनका अर्थ श्रधना, ऐसा होता है, येही जीवके लक्षण हैं. इन सिवाय और जो कूछ है.* सुक्ष्म (अद्रष्ट) पदार्थ, व बादर (द्रश्य) पदार्थ यह सव चैतन्य द्रव्य से स्वभावमें और गुणमें अलग है क्यों कि "सव संजोग लक्खणं" अर्थात यह पुद्गल है, इससे इनमें संजोगिक विजोगिक स्वभाव सहजही है, यह इधर उधर से आके मिलभी जाते हैं, और बिछडभी जाते हैं. इनका क्या भरोसा? ऐसा जान शुक्ल ध्यानी स्वभावसे निवृती भावको प्राप्त होते है, अन्य प्रवृतीको आत्म स्वभावमे प्रवेश करनेका अवकाश ही नहीं मि-

*पुद्गल ६ प्रकारके होते है, १ बादर बादर जो टुकडे हुये पीछे आपसमें नही मिले जैसे पत्थर काष्ट वगैरे २ बादर=जो टुकडें (अलग२) हुये पीछे मिलजाय जैसे घृत तेलदूध वगैरे ३ बादर सुक्ष्म=दिखे परन्तु ग्रहण नही किये जाय, जैसे धूप छाया चांदनी वगैरे ४ सुक्ष्म बादर=सरीर को लगे परन्तु दिखे नहीं जैसे हवा सुगन्ध वगैरे ५ सुक्ष्म=प्रमाणु ओं जो एकके दो नहीं होये ६ सुक्ष्म सुक्ष्म=कर्म वर्गणा के पुद्गल—गोमट सार

लता है. क्यों कि वो पुद्गलीक स्वभावसे स्वभावेही अलग है.

द्वितिय पत्र-"विउत्सर्ग".

२ विउत्सर्ग—शुक्लध्यानी सदा सर्व सङ्गके त्यागी स्वभावसे ही होते हैं. श्री कपिल केवलीजीने फरमाया है—

गाथा—विजहितु पुव्व संजोगं, नासिणेह कहिं विकुवेज्जा;
असिणेह सिणेह करेहिं, दोस पदोसेहिं मुच्चए भिख्खू
सव्व गंथ कलहंच, विप्प जहे तहा विहं भिख्खू
सव्वेसु काम जाएसु पास माणो न लिप्पई ताइ ४

अर्थ—सर्व ग्रन्थ—अर्थात् बह्य संजोग पूर्वात मात पितादिका पश्चात स्वशुर पक्षका; और अभ्यंतर राग द्वेष का तथा कषाय रूप प्रणतीका यह दोनो महा क्लेशका कारण भाष (मालम) हुवा, जिससे विप्य जहितु दोनो प्रकारके सम्बन्ध से स्वभाविकही ममत्व दूर हो गया, सम्बन्ध छूट गया. और शब्दादी सर्व काम, तथा गंधादी सर्व भोग पाश (बन्धन) जैसे मालम होनेसे, उनसे स्वभाविकही अलिप्त हुये, राग द्वेष रहित हुये, (पुव्व संजोग) यह पुर्व अनादी अनंत परिभ्रमण कराने वाले सम्बन्धसे पीछा कदापि कोइभी प्रकारसे

सम्बन्ध नहीं करे, और (असिणेह सिणेह करेहिं) अर्थात अस्नेहीयोसे वीतराग से स्नेह करे, की जो कदापि क्लेश और बन्धन का कर्ता नहीं होता है, सदा वाह्याभ्यंतर शांती और मुक्ती का दाता है. ऐसा सम्बन्ध स्वभाविक होनेसे सर्वथा राग द्वेष की प्रणती रहित हुये, उससे ज्ञानादी त्रि रत्नकी ज्योती स्वभाविक ही प्रदिप्त हुइ. अनंत ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप रूप चतुष्टय भुक्ता हुये.

तृतीय पत्र-"अवस्थित"

३अवस्थित स्थिरी भूत रहैं, अनंत चतुष्टय की प्राप्ती से सर्वज्ञ, सर्व, दर्शी, निरमोही बने, अनंत शक्ती प्रगटी जिससे सर्व इच्छा निर मुक्त, "मेरू इव धीरा" अर्थात् ज्यों प्रचन्ड वायू से भी मेरू पर्वत चलायमान नहीं होता हैं, तैसेही महान प्राणांतिक कष्ट प्राप्त हुये भी प्रणामों की धरा कदापि चलबिचल नहीं होती हैं. सदा अचल रहहै.

श्री उत्तराध्येयनजी सूत्र के दूसरे अध्याय में कहा है—

गाथा—समणं संजयं दंतं, हणीज्ज कोइ कत्थइ.
नत्थी जीवस्स नासति, एवं पेहाज संज्जय. उतराध्येयन.

अर्थात्-कषाय नष्ट होने से श्रमण हुये, स्वयं आत्मा का सधने से संयती हुये, रागादी रिपुके नष्ट होने से दमित हुये, ऐसे ऋषीराज माहाराज धीराज किसीभी कर्मोदय के योग सें कोइ किसी प्रकार का दुःख दे, प्राणांत होवें ऐसा उपसर्ग करे, तब वो यह विचार करें की, मेरी आत्मा अनुपसर्ग है. अखंड अविन्यासी हैं"

"नैवंछिदन्ति शस्त्राणी नैवंदहंति पावकं" यह आत्मा शस्त्रसे छेद भेद जाती नहीं हैं. अग्नीमे जले नहीं, पाणी में गले नहीं. इस लिये मुजे किसा भी प्रकार का उपसर्ग कोइ भी उपजाने स्मर्थ नहीं हैं, "नत्थी जीवस्स नासत्ती" जीवका नाश कदापी हेही नहीं, इस लिये में अम्मर हूं. यह मनुष्य पशु या देव जिसका नाश कर ने प्रवृत हुये हैं, वो तो नाशिवंतकाही नाश करते हैं. आज कल या किसी भी अगामिक काल में, इसका नाश जरूर ही होगा. मै ने क्रोडोयत्न किये तो रहे नहीं, ऐसा निश्चय जिन्नकी आत्मा में होने से उन को किसी भी प्रकार की बाधा पीडा दुःख मालुम पड़ताही नहीं हैं.यथा द्रष्टान्त जैसे गज सुकुमल मुनिश्वर के सिर (मस्तक) पे खीरे (अग्नीके अङ्गारे) रखदिये. जिस सें तड२ करती खोपरी जलके

भस्म भूत होगइ, परन्तु उनोने नाक में शल्य ही नहीं डाला खन्धक ऋषि राज के सर्व सरीर की त्वचा (चमडी) जैसे मूरे पशु क चर्म उदेड तैसे उदेडी (निकाल) डाली, वहां रक्तकी प्रनाल वह गइ परन्तु. उन्होने जरा सी साट (शब्द) भी नहीं किया स्कन्ध ऋषिके५०० शिष्यों कों, तैली तिल कों पीलता हैं त्यों घानी में पील डाले, परन्तु वो नेत्र में जरालाली भी नही लाये, मेहतारज ऋषिवरके सिरपे आला चर्म बान्ध, धूप मे खडे कर दिये. जिससे जिनकी आँखो छिटक पडी; परन्तु मनमें जरामी दुभाव नहीं लाये. ऐसे२ अनेक दाखले शास्त्रमे दिये हुये हैं. ऐसे महान घोर उपसर्ग में प्रणामोंकी धारा जिनोनें एकसी बनी रक्खी, यह सहज नहीं है. तो मोक्ष प्राप्त करना भी सहज नहीं है. उन्ह महात्मा को यही निश्चय होगया था की "नत्थी जीवस्स नासत्थी" जीव अजरामर है. इसका नाश कदापि होताही नहीं हैं. जो जले गले हैं वो अलगही है. और मै अलगही हूं. फक्त द्रष्टा हूं. ऐसे प्रणामो की स्थिरी भूत एकत्र धारा प्रवृतनेसे, उन्होने किंचित कालमे अनंत कर्म वर्गणाका क्षय किया. अनंत, अक्षय, अव्याबाध मोक्षके सुख प्राप्त किये.

चतुर्थ पत्र-"अमोह"

४ अमोह—अर्थात् शुक्लध्यानी स्वभाव सेही मोह रहित निर्मोही होते है. "मोह बन्धति कर्माणी, निर्मोहो वीमुच्यते" अर्थात्--मोह कर्म बन्ध करता हैं और निर्मोहपणा कर्म के बन्धन से छुडाता है, ऐसा निश्चय होनेसे शुक्लध्यानी के निर्मोही अवस्था स्वभाव सेही प्राप्त हो जाती है, मोह उत्पन्न करने जैसा कोइ भी पदार्थ उनको भाष नहीं होता है.

उत्तराध्येयनजी सुत्रमें चितमुनीश्वरने कहा है.

गाथा—सव्वं विलं वियं गीयं, सव्वं नट्टं वीडं वियं;
सव्वं आभरण भारा, सव्वे काम दुहा वहा.

अर्थात्="सर्व गीत-गायन है सो विलाप जैसे हैं," क्यों कि विलाप शब्दका और गीत शब्दका उत्पन्न होनेका और समाव होनेका स्थान एकहीं है. [मुख और कान] और दोनोही राग द्वेषकी प्रणतीसे पूर्ण है, गायन भी प्रेम का दर्शक और उदासी का दर्शक दोनो तरहका होता है. तैसेही रूदनभी प्रेम दर्शक और उदासी दर्शक दोनो तरहका होता है, यह भाव मोह गींध जीवके मानने उपर है. गीतों मोह मद से भरे हुये, कर्म वीकार से उद्भवे हुये, चितको

विचित्रता उपजाने वाले, इत्यादी अनेक असद्भावका कारण है. ऐसा जाण या कैवल ज्ञानसे प्रत्यक्ष देख, देवता, किन्नर या मनुष्यादी सम्बन्धी गीत श्रवण करते हुयेभी स्वभावसे किंचित राग द्वेषको प्राप्त नहीं होते हैं. सर्व नृत्य-नाटक हो रहें हैं सो विटंबना मात्र है. जैसी वीटंबना जीवोंकी चतुर्गति परिभ्रमण में होती हैं, वैसीही बीटंबना कर्माधीन हो बेचारे करते है. कधी पुरुष, कधी स्त्री, कधी उंच, कधी नीच, ऐसा अनेक विचित्र रूप धारण कर अनेक जनके वृन्दमें या अनेक देवोके वृन्दमें हांस रुदन नृत्य आदी कर बताते है, और भवोंकी विचित्रता को भूल दोनो (नृतिक और प्रेक्षक) हर्षानन्द में गर्क होते है, जाणे चतुरगतिकी विटम्बना सेही त्रस्त नहीं हुये. सो अब स्वतः नाच या नृत्य देख त्रसी करते है, यह विटम्बना जगत्की देख सर्व जगत्का नाटक ज्ञान कर देख हूयेभी राग द्वेषमय नहीं होते है, "सर्व आभरण-भूषण भार (वजन) भूत हैं" पृथवीसे उत्पन्न कंकर पत्थर लोहादिक सामान्य धातू और पृथवीसेही उत्पन्न हुये रजत (चांदी) सुवर्ण या हीरा पन्ना रत्नादी पदार्थ उत्पन्न होते हैं. ऐसे दोनो एक से भार भुत होते भी. सरागी जीवों कंकर पत्थर का वजन देने से दुःख मानते हैं. और

सुवर्ण रत्नके भूषणों से लदे हुये फिरते हर्ष मानतेहैं. वितरागी पुरूष यथार्थ द्रष्टी से देखते हुये विभुषित पे और नग्न पे स्वभाव से ही रागद्वेष रहित मध्यस्थ भवमें रहते हैं. और जित्ने जक्तमें दुःख है, वे सब काम भोग से ही उत्पन्न होते हैं और जो काम भोग का अर्थि हैं वोही अनंत दुःख मय संसार भार को वहाता है—उठाता हैं, काम भोग की अभीलाषा वालाही दुःख पाताहैं यह सर्व तमाशा प्रत्यक्ष जगत् में दिख रहा हैं, ऐसा जाण ज्ञानी महात्मा स्वभा से ही सर्व अभीलाषा रहित हो शांतबनें हैं, सर्वथा मोहका नाश होने सें वितरागी बने हैं.

तृतीयप्रातिशाखा शुक्लध्यानस्य आलम्बन

सूत्र—सुक्करसणं झाणस्स चत्तारी आलंबणा पन्नंते तंज्जहा खंत्ती, मुत्ती, अज्जाव, मद्दव.

अर्थ—शुक्लध्यान ध्याता को चार प्रकारका आधार हैं.

१ क्षमका, २ निर्लोभताका, ३सरलताका, और ४ नम्रताका.

प्रथम पत्र– 'क्षमा"

क्षमा श्रमण क्षमा स्वभावमें, स्वभावसे रमण करते अन्यकी तर्फसे, पर पुद्गलोंसे, या स्व प्रणतीकी विप्रीतता से, जो चितको क्षोभ उपजे, ऐसे पुद्गलोंका सम्बन्ध मिलनेसे निजात्म के, या पर आत्मके, ज्ञान दर्शन चारित्र रूप पर्यायकी, संकल्प विकल्पता कर घात करे नहीं, करावे नहीं, करतेको अच्छा जाने नहीं अपने क्षमा रूप अमुल्य गुणका कदापि नाश होने देवे नहीं, शुभाशुभ संयोगोंमे चित वृतीको स्थिर रक्खे, और पुद्गलोंके स्वभावकी तर्फ द्रष्टी रखके विचारे की जैसा २ जिस २ वक्त, जिन २ पुद्गलोंका जिस२ तरह प्रणती में प्रगमनेंका द्रव्यादिक संयोग होता है, वो उसी वक्त प्रगमें विन कभी रहताही नहीं हैं. यह जगतका अनादी स्वभाव हैं. शुक्लध्यानीकी इस स्वभाव से प्रणति स्वभाविक विरक्त होनेसे वो स्वभाव उनमें नहीं प्रणमता है, ऐसे अनेक प्रणतीयों जक्त में भ्रमण करती हुइ वितरागीकी आत्मका स्पर्श कर खराब नहीं कर शक्ती है. जगत्का जो कार्य है सो तो, अनादी से चला आता हैं, और अनंत काल तक चलाही करेगा. मन, बचन, कायाके, शुभाशुभ पुद्गलोका चक्कर भ्रमताही रहता हैं, मिथ्या भ्रमसे भ्रमित जीव, दुविचार, दुउच्चार, और दुआचार, द्वरा; करना, कराना,

और अनुमोदना कर ज्यों चीगटा घडा उडती हुइ रज-
को अकर्षण करता है, और मलीन होता है. तैसेही वो
उन पुद्गलोंको अकर्षण कर मलीन होते है; जिससे नि-
ज स्वभावका अच्छादन हो, पर स्वभावमें रमण कर,
विभाको प्राप्त होते है. और ज्ञानी कांचके घडेकी त-
रह निर्लेप या लुक्खे (चिकास रहित) होनेसे वो ज-
गत्में भ्रमते हुये पुद्गल उनके आत्मापे ठेहर नहीं स-
क्ते हैं. क्यों कि वो मनादी त्रियोगकी अशुभ प्रवृत्तीसें
स्वभावेही अलग रहै. निजात्मिक ज्ञानादी गुणमें रमण
करते है, मतलब की. इस जगत् मे अनेक जीव
बोलते है, और अनेक जीव सुणते हैं. उसपे अपन
ध्यान नहीं देते हैं, तो वो पुद्गल अपनको राग द्वेषके
उत्पन्न कर्ता नहीं होतें है, और उन्ही शब्द को आपन
अपनी तर्फ खेंचे की यह गाली मुजेही दी की, तुर्त वो
पुद्गल अपनी आत्मा में प्रणम, अपन को द्वेषी बना
देते हैं. अब अपन जरा दीर्घ विच्चार सें देखें तो, अ-
पनी निंदा कोइ करताही नहीं हैं; क्योंकि, निंदा हो-
य ऐसा अपना निजात्मा का स्वभाव ही नहीं हैं; आ-
त्मा तो ज्ञानादी अनंत गुणो का सागर है, और ज्ञा-
नादी गुणों की कोइ निंदा करताही नहीं हैं, निंदा
तो विषय, कषायादी प्रकृत्ती यों की होती है, सो

विषय कषायादी प्रणती कर्म जनित हैं, और कर्म पुद्गल रूप हैं, आत्मासे उसका स्वभाव विप्रित हैं. और इसीही लिये निन्दा पात्र हैं, उनकी निन्दा तो होवेगी. तूं चैतन्य रुप उनसे अलग हो फिर उनकी प्रणती में प्रणम मलीन क्यों होता हैं, बुरा क्यों मानता हैं, जिनकों जग बुरा कहते हैं, उन्ही को वो बचन लगो. और उन्ही दुर्गुणोका नाश होवो, की जिससे मेरा भला होवे. ऐसी भलाइ होनेके स्थान, कोण मुज़ बुराइ करेगा, अर्थात् कोइ नहीं. ऐसे और इससे भी अत्युत्तम विचार अव्वल सेही शुक्लध्यानी की आत्मामें ठसे रहते है, और प्रत्यक्षमें देख रहे है की, क्रोध विश्वानल रूप हों, जीवोंको छिन्न भिन्न कर रहा है, और मेरी आत्मा उस लायसे अलगहो, ज्ञानादी गुण रूप समुद्र के महा ओघमें डूब रही है, इसे वो अग्नी स्पर्श्य करही नहीं सक्ती है. आंच लगही नहीं सक्ती है, सदा संबूड, निबुड, शांत शीतली भूत अखन्डानन्द में रमते है.

द्वितिय पत्र-"निर्लोभ"

२मुत्ती=मुक्त=हुये, छूटगये, अर्थात् लोभ त्रष्णरूपी फासमें सब जगत् फस रहा हैं. उस फास को

शुक्लध्यानी ने स्वभावसे जडा मूलसे उच्छेदन कर, संतोषमें संस्थित हुये हैं. ज्ञानी ज्ञानसे प्रत्यक्ष जानते हैं की इस जक्तमें कोइभी ऐसा पदार्थ नहीं है, की जिसकी मालकी अपने जीवनें नहीं करी, या उनका भोगोपभोग नहीं किया, अर्थात् सब पूद्गलकी मालकी अनंत वक्त कर आया है, और सव पुद्गलोंका भोगभी अनंत वक्त लें आया है. अश्चर्य यह है कि, एक वक्त अहार करके निहार करी हुइ वस्तुकों देखते ही, घ्रणा, दुगंच्छा उत्पन्न होती है, और जिन वस्तुओंका अनंत वक्त अहार कर निहार कर आया उन्होंकाही पीछा भोगोपभोग करने बहुतसे जीव तरस रहे है, तडफ रहें है, उनकी त्रष्णासे व्याकुल हो रहें है, त्रप्ती आइही नहीं है, तो अब क्या विना संतोष किये कदापी त्रप्ती आवेगी? हा हा! क्या जब्बर मोहकी छटा! के जीवों बिलकूल बे विचार बन रहेहै, और इस वृतमान कालके सरीर के पुद्गल, तथा पहले धारन किये हुये, सब सरींरके पुद्गल जित्ने जगत्में जीव है, उन सबका भक्ष बना है. सब ने अहार कर के निहार कर दिया है. तैसेही जब जीवोंके धारण किये सरीरके पुद्गलोंका, आपन भी अनंत वक्त भक्षण कर लिया, जगत् की सब ऋद्धिके मालक अपन बने, और जगत्के जीवके

दास अपन बने, अनंत पर्याय रूप इस संसारमें अपन प्रणम आये, और सर्व संसार पर्याय अपन में प्रणमी, सर्व खाद्य खाये, सर्व पेय पीये, सर्व भोग भोगवे, परन्तु गरज कुछ नहीं सरी, आखीर वैसेके वैसे. इस लिये मै न किसका हुवा, न मेरा कोइ हुवा, न मुजे कोइने खाया, और न मैने किसीको खाया. पुद्गलही पुद्गलका भक्षण करता है, और छोडता है. और वो भाव पुद्गलोंमें ही प्रगमते हैं. तैसेही निर्गमते है, मुजे उससे जरूरही क्या, मै चैतन्य, यह पुद्गल, ज्यों नाटकिया नाना तरह का रूप धारण कर प्रेक्षक को खुश करने अनेक चरित्र करता है. रोता हैं, हंसता है, वगैरे, परंतु प्रेक्षक को उसके झगडे देख सुख दुःख अनुभवनेकी क्या जरूरत है, तैसेही यह जगत रूप नाटकका में प्रेक्षक हूं. इसका विचित्रता देख मुजे उसके विचारमे लीन हो, दुःखी बननेकी कुछ जरूरत नहीं है. यह भाव या इससे भी अत्युत्तम भाव शुक्ल ध्यानीके हृदय में स्वभावसेही प्रवृतते है, जिससे सहजही सर्व सङ्गके परित्यागी हो सिद्ध तुल्य सदा निर्छित भावमें त्रप्तपणें आत्म स्वभावमें रमण करते है.

तृतीय पत्र-"आर्यव"

२ अज्जव-आर्जव-सरलता युक्त. प्रवृतनेका स्वभाव, शुक्लध्यानीका स्वभाविकही होता है. सुयगडांग सूत्र में फरमाया है. की 'अज्जुधमं गइ तच्चं, अर्थात् आर्य सरल आत्माही धर्म मार्गमें गति प्रवृती कर शक्ती हैं, ज्ञानी समजते हैं, की वक्र आत्माका धणी, अन्यको ठगने जाते अपही ठगाता है, और एक वक्त ठगाया हुवा, प्राणी कर्मानुयोगसे भवांतरोकी श्रेणीयोंमें अनंत वक्त ठगाता है, सर्व पुद्गल परतणी में प्रणमे हुये पदार्थ कुटिलता से भरे हुये हैं. सकर्मि आत्मा उनमें प्रणाम प्रवृताती हुइ, उनमेंसे पुद्गलोंका अकर्षण कर उस रूप बनती हैं उसे 'मायाशल्य' कहते है, मयाशल्य मिथ्या दर्शनका मूल है, मायाशल्यसे आत्माके ज्ञानादी गुणका अच्छादन होता है. ठांकता है, 'शल्य' काँटे को कहते है, जैसा सरीरके अन्दर रहा हुवा काँटा तन्दुरुस्तीकी हरकत करता है, तैसें मायारूप शल्य (काँटा) जिनके हृदय से नहीं निकला हैं, उनके ध्यानमें दुरस्ती न रहती है, जैसे सीधे म्यान में बांकी तरवार प्रवेश नहीं करती हैं, तैसेही वक्र प्रकातिका धणीके ह्रदयमें शुक्लध्यान प्रवेश नहीं

करता है, ऐसा निश्चय होनेसे शुक्लध्यानीके न्हृदयसे माया स्वभावसेही नष्ट होती है.

और भी शुक्लध्यानी विचारते हैं, की कपट किस्के साथ करे, क्योंकि चैतन्यके निज गुण तो कपटसे वंचित (छलित) नहीं होते हैं, आत्माका निज स्वभाव तो सरल शुद्ध पवित्र हैं, उसे छोड मलिनतामें पड नाही अज्ञान दिशा है. ऐसा जान, शुक्लध्यानी स्वभा-सेही, परम ज्ञानी, परमध्यानी, निष्कपटि, निर्विकार आत्म गुणमें सदा लीन. बाह्याभ्यांतर शुद्ध सरल प्र-वृती रहती है.

चतुर्थ पत्र-"मार्दव."

मद्दव—मार्दव किया हैं, मान का. शुक्ल ध्यानी का, अभिमानका. मर्दन स्वभाव से ही होता हैं, क्यों कि वो जानते हैं, की. इस जक्त में बडा मीठा, और बडा जब्बर शत्रू "अभीमान" हैं, उंचा चडा के नीचे डाल देता हैं. देवलोक के मुख में जो गर्क हो रहे है, उन्हे तिर्यंच गति में डालता हैं, इत्यादी अनेक बिटंबना अभीमान से होती है, और भी बिचारते हैं, की अभीमान किस बात करना, तथा मान यह हैं क्या? देखीये. अब्बी किसी निरक्षर; मुर्ख मनुष्य को

कोइ पण्डित कहें. तों वो चिडता हैं. निरधन को श्री मंत कहने से वो बुरा मानता हैं, कहता है क्या हमारी मस्करी करते हो. बस तैसेही ज्ञानी के कोइ गुण ग्राम करे तो वो योंही विचार ते हैं, यह संपूर्ण गुण तो मेरी अत्मा में हैही नहीं, तो मुजे उन बचन को सुण अभीमान करने की क्या जरुर हैं. यह मेरी परसंस्या नहीं करता हैं, परंन्तु मुजे उपदेश करता है, की, सत्य सील, दया, क्षमा, दी गुण तुम स्विकारो! शुक्ल ध्यानी सर्वों तम गुण संपन्न हो के भी, उन्हे गुण का गर्व किंचित मात्र कदापी नहीं होता है, इस लिये वो सदा निर्भीमानी रहते हैं. तथा विचारना चाहीये की, जो गुण ग्राम करते हैं, वो तो गुण के करते हैं, और उसका अभीमान गुणों को तो होताही नहीं हैं, फिर बीच में मुजे करने की क्या जरुर हैं, संसार में सुनतें हैं की, अमुक ने अमुक अच्छी वस्तु की सरावणा (परसंस्या) करी जिस्स सें यह बिगड गइ (निजर लग गइ) बस तैसेही गुणानुवाद करने से तूं पोमायगा तो तेरे इ गुणों का खराबा होगा. ऐसा जान के खराबा क्यों करना.

औरभी जो सद्गुणोंकी प्राप्ती हुइ है, वो आत्म सुधारा करने हुइ है, और उसीसे बीगाडा करना यह

कैसी जब्बर भूल. इत्यादी निश्चय शुक्लध्यानी पुरुषों को स्वभाविक होनेसे सदा स्वभाविक उनकी आत्मा निर्भिमानी, नम्र भूत हुइ है.

इन चार वस्तुओंका आलम्बन शुक्लध्यानीको सहज स्वभाविक होनेसे अखंड अप्रति पाती ध्यानमें रहते है.

चतुर्थप्रातिशाखा "शुक्लध्यानस्य अनुप्रेक्षा"

सूत्र

सुक्कसणं झाणस्स, चत्तारी अणुपेहा, पन्नंता तंज्जहा अवायाणुप्पेहा, असुभाणुप्पेहा, अणंतवित्तीयाणुप्पेहा, वीप्परीणामाणुप्पेहा.

अर्थात्–शुक्लध्यान ध्याताकी ४ अनुप्रेभा विचारना १ अपायानुप्रेक्षा=दुःखसे निर्वृतनेका विचार. २ अशुभानुप्रेक्षा=अशुभ प्रवृती आदीसे निर्वृतनें का विचार. ३ अनंत वृतीयानुप्रेक्षा=अनंत प्रवृतीने निर्वृतने का विचार. और ४ विप्रामाणानुप्रेक्षा=विप्रित प्रणाम सेनिर्वृतनेका विचार. यह ४ प्रकारका विचार शुक्लध्यनीका स्वभाविक होता है.

प्रथम पत्र "अपयानुप्रेक्षा"

१ अपयानुप्रेक्षा—संसारमें परिभ्रमण करते हुये जीवको मिथ्यात्व २ अव्रत, ३ प्रमाद, ४ कषाय और ५ योग यह अनंत विटंबना देने वाले है. १ श्री वीतराग दिशा निजात्मके अनुभवमें जो विप्रीत रुची उसमें अभीनिवेश (अग्रह) उत्पन्न करनेवाला तथा बाह्य विषय में, पर सम्बन्धी शुद्ध आत्म तत्व सें लगाके, संपूर्ण द्रव्योंमें जो विप्रीत अग्रह करे, सो मिथ्यात्व. २ अभ्यंतर मे आत्म प्रमात्मा के स्वरूपकी भावनासे उत्पन्न हुवा, जो परम सुख रूप अमृत समान भोजन प्रासन करनेकी रुची होए उसे पलटावे. तथा बाह्य विषय में वृतादी धारन नहीं करने रूप जो प्रवृती सो अवृत. ३ अभ्यंतर में प्रमाद रहित जो शुद्ध आत्मा है उसके अनुभवसे चलाने रूप जो प्रणती, तथा बाह्य विषय मे जो मूल और उत्तर गुणमे अतीचार उत्पन्न करने वाला जो है, सो प्रमाद ४ अभ्यंतर मे परम उपशम मूर्ती केवल ज्ञानादी अनंत गुण स्वभावसेही धारन करने वाला, निजात्म परमात्मके स्वरूपको क्षोभ के करने वाले, तथा बाह्यमें विषयके सम्बन्धसे क्रूरता आदी आवेश रूप जो क्रोधादी है, सो कषाय.

और ५ निश्चय में क्रिया रहित आत्माको भी जो व्यवहार से विर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशम से उत्पन्न मन बचन, और कायाके पुद्गल वर्गणाका अवलम्बन करने बाला कर्मोंकों ग्रहण करनेमें कारण भूत आत्माके प्रदेशोंका संचलन, सो योग.

यह पांच अश्रव संसारी जीवों के अनादी से प्रणातिमें प्रणम रहेहै, जिस से अनंत संसर प्रणाति प्रणमने का कार्य होता हैं, शुक्ल ध्यानी ने पंचही आश्रवों का स्वभाव सेही नाश कर १क्षयिक, सम्यकत्व २यथा ख्यात चारित्र ३ अप्रमादी, ४ क्षिण, कषायी, और स्थिर स्वभावी हैं, इन पंच गुणोंको स्वभावी प्राप्त करतें हैं.

द्वितीय पत्र "अशुभानु प्रेक्षा"

२ अशुभानु पेक्षा—जीवों का शुभाशुभ होने के दो मार्ग है. १ निश्चय और २ व्यवहार. निश्च सो निजगुण में प्रवृती करने को कहते हैं. और व्यवहार वाह्य प्रवृती को कहते हैं, छद्मस्तों के लिये अव्वल व्यवहार हैं, अर्थात् व्यवहार शुद्ध कार्म कर आत्म साधन करते निश्चय की तर्फ द्रष्टी रखते हैं; और सर्वज्ञ निश्चय की प्रव्रती करते हुये भी, व्यवहार को नहीं

बीगाडते हैं, ऐसेही कर्म सम्बन्ध भी जाना जाता है, व्यवहार में कर्म के कर्ता पुद्गलहैं. जैसे त्रीयोग रहित शुद्ध आत्मा की जो भावना हैं, उस से' बे मुख होके, उपचरित असद्भुत व्यवहार से ज्ञाना वर्णियादी द्रव्य कर्मोंका, तथा उदारिक, वेक्रय, और अहारिक यह तीन सरीर, अहार, सरीर, इन्द्र, शाश्वोश्वास, मन. और भाषा, यह पर्याय, इत्यादी योग्य से जो पुद्गल पिण्ड नो कर्म है, उनकी तथा उसी प्रकार से, उप चरित असभ्दूत वाह्य विषय, घटपटादी का भी येही कर्ताहैं. यह तो व्यवहार की व्याख्या कही. अब निश्चय अपेक्षा से चैतन्य कर्मका कर्ताहैं, सो इस्तरह की-रागादि विकल्प रूप उदासी सें रहित, और क्रिया रहित, ऐसे जीव ने जो रागादी उत्पन्न करने वाले कर्मों का उपारजन किया, उन कर्मों का उदय होने से, अक्रिय निर्मल आत्मा ज्ञानी नहीं होता हुवा, भाव कर्म का या राग द्वेष का,कर्ता होता हैं. और जब यह जीव, तीनो योग्यके व्यवहार रहित, शुद्ध तत्त्वज्ञ एक स्वभाव में परिणमता हैं; तब अनंत ज्ञानादी सुख का, शुद्ध भावों का छद्मस्त अवस्था में भावना रूप विविक्षित, एक देश शुद्ध निश्चय से कर्ता होता हैं, और मुक्त अवस्था में तो, निश्चय से अनंत ज्ञानादी शुद्ध भावों

का कर्ताहीहैं.

इस लिये शुद्धाशुद्ध भावोंकी जो प्रणती है, उसका कर्ता जीव जाणना. क्यों कि नित्य निराकार निष्क्रिय, ऐसी अपनी आत्म स्वरूपकी भावना से रहित जो जीव है, उसीको कर्मका कर्ता कहा है, पर प्रणितीही शुभाशुभ बन्धका मुख्य कारण है. जिससे निर्वृत अपनी आत्मामें ही भावना करे, और व्यवहारकी अपेक्षासे सुख और दुःख रूप पुद्गल कर्मोंका भोगवता है. उन कर्म फलोंका भुक्ताभी आत्माही है. और निश्चय नयसे तो, चैतन्य भावका भुक्ता आत्मा हैं, वो चैतन्य भाव किस सन्बन्धी है, ऐसा विचार करीये तो, अपनाही सम्बन्धी है. कैसे है की, निज शुद्ध आत्माको ज्ञानसे उत्पन्न हुवा, जो परमार्थिक सुख रूप अमृत रस उस भोजनको न प्राप्त होते, जो आत्मा है, वो उपचारित असद्भूत व्यवहारसे इष्ट तथा अनिष्ट, पांचो इंद्रिय के विषय से उत्पन्न होते हुये सुख, तथा दुःख भोगवता है, ऐसेही अनुपचरित, असद्भूत व्यवहार से अंतरंग में सुख तथा दुःखको उत्पन्न करनें वाला, द्रव्य कर्म सत्ता असत्ता रूप उदय है, उसको भोगवता है, और वोही आत्मा हर्ष तथा शोक को प्राप्त होता है, और शुद्ध निश्चय में तो प्र-

मात्म स्वभावका जो सम्यक श्रधान ज्ञान और क्रिया उससे उत्पन्न अविन्यासी अनन्द रूप एक लक्षणका धारक सुखमृतको भोगवता है.

सारांश—जो स्वभावसे उत्पन्न हुये सुखामृत के भोजनकी अप्राप्ती से, आत्मा इन्द्रिय जनित सुखको भोगवता हुवा, संसारमें परिभ्रमण करता है; और स्व स्वभाव उन्पन्न हुये, इन्द्रियोंके अगोचर सुख है, सो ग्रहण करने योग्य है शुक्लध्यानके ध्याता उन्हे स्वभाव सेही ग्रहण करते है, जिससे संसार रूप वृक्ष शुभाशुभ कटु मधु, उच्चता-नीच्चता, रूप फलोंका दाता पूद्गल प्रणतीसे प्रणमा हुवा जो स्वभाव है उसका सहजही त्याग हों जाता है. शुद्ध आत्मानंद चैतन्य मय स्व भावमें सदा रमण करतें है.

तृतीय पत्र-"अनंतवृतीयानुप्रेक्षा"

३ अनंत वृतीयानु प्रेक्षा—अनंत संसार मे परि भ्रमण करनेकी जो प्रवृती है. उससे निवृतनेका स्व- भाविक ही विचार होवे, की इस संसार में अनंत पु- द्गल प्रावृतन किये, वो ८ प्रकारसे होता है, १ द्रव्यसे बादर पुद्गल प्रवृतन सो उदारिक वैक्रय, तेजस, कार- माण मन, बचन, और शाश्वोश्वास यह ७ तरह के है,

उनके जित्ने पुद्गल जक्तमें हैं, उन्ह सबको स्पर्श्यें. २ द्रव्यसे सुक्ष्म पुद्गल प्रावृतन सो पूर्वोक्त सातही प्रकार के पुद्गलोंमे से प्रथम सर्व जगत्में रहें. उदारिक केसब पुद्गल अनुक्रमें स्पर्श्यें, किंचितही नहीं छोडे, फिर वैक्र य के फिर तेजसके यो ७ ही के अनुक्रमें स्पर्श्यें. ३ क्षेत्रसे बादर पुद्गल प्रावृतन सो मेरु प्रवृतसें दशाही दि शा आकाश की असंख्यात श्रेणी मकडीके जालेके तं तवेंकी तरह फैली है, उन्ह सबपे जन्म मरण, कर स्प र्श्यें, ४ क्षेत्रसे सुक्ष्म पुद्गल प्रावर्तन सो पूर्वोक्त श्रेणि- योंमे से पहले एकही श्रेणि ग्रहण कर उसपे अनुक्रमें (मेरुसे अलोक तक) जन्म मरण कर स्पर्श्यें. जराभी नहीं छोडे, फिर दूसरी श्रेणिभी इस तरे यो सब श्रे- णि स्पर्श्यें, ५ कालसे बादर पुद्गल प्रावृतन सो समय आंवालिका स्तोक लव महुर्त दिन, पक्ष, मांस, ऋतु, आ यन, वर्ष, युग, पूर्व, पल्य, सागर, सर्पणी, उत्सर्पणी और कालचक्र, इन सबकालमें जन्म मरण कर स्पर्श्यें, ६ काल से सुक्ष्म पुद्गल प्रावर्तन सो, पहले सर्पणी काल बेठा, उ सके पहले समय जन्म के मरे फिर दूसरी वक्त सरप णी लगे तब उसके दूसरे समयमे जन्मके मरे, यों आं वलकाका समय पूरा होवे वहांतक. फिर सरपणी बैठे उसके पहली आंवालिका में जन्मके मरे, फिर दूसरी

में यो स्तोकका काल पूरा करे. ऐसे अनुक्रमे सब काल जन्म मरण कर स्पर्श्यें. ७ भावसे बादर पुद्गल प्रावर्तन सो ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श्यं. इन २० ही बोलके सर्व पुद्गलोंको स्पर्श्यें, ८ भावसें सुक्ष्म पुद्गल प्रावृत सो पहले एक गुणे काल वर्णके जगत् में जित्ने पुद्गल हैं, उन सबको स्पर्श्यें, फिर दुगणे कालेकों यों त्री गुणों जावत असंख्यात गुणे काले वर्ण के पुद्गल स्पर्श्यें यो सर्व काले वर्णके पुद्गल स्पर्श्यें पीछे, हरे वर्णके पुद्गल कालेकी तराह, अनुक्रमें स्पर्श्यें इसी तरह २० ही तरहके पुद्गलको अनुक्रमें स्पर्श्यें.

यह ८तरह पुद्गल प्रावर्तन करे उसे एक पुद्गल प्रावृतन कहना, ऐसे अनंत पुद्गल प्रावर्तन एकेक जीव संसार में करते हैं;और अपने जीव ने भी कियेहैं. ऐसी भव भ्रमणा में भ्रमण करते २अनंतानंत पुण्योदय होने से, मनुष्य जन्म से लगा शुक्लध्यानारूढ होने जित्ने अत्युत्तम समग्रीयों प्राप्ती हुइहै. यह उन्ह पुद्गलों के प्रावृतन से निर्मुक्त कर, अखंडित, अचल, निरामय, मोक्षके सुख देने वाली है. ऐसा निश्चय शुक्लध्यानी कों स्वभावसेही होता हैं. और अनंत जीव अनंत पुद्गलो का प्रावृतन करते विभाव रूप विचित्रता कों प्राप्त होतें है वो प्रतिछाया उनकी शुद्ध आत्मामें

सद्भावसें पडतीहैं. उसज्ञानके अप्रतिपाति ध्यानमें सदा मग्न हो रहते हैं.

चतुर्थ पत्र-"विप्रमाणु प्रेक्षा"

४ विप्रमाणु प्रेक्षा—३४३राजात्मक रूप विश्वोदर संपूर्ण सचेतन अचेतन पदार्थो कर भरा हैं, उनमें के पुद्गलों क्षिण२ में विप्रायास पाते हैं, जैसे मट्टि के पिण्ड के समोह में से कुम्भार अच्छे, बुरे, छोटे-बडे' अनेक प्रकार के भाजन बनाते हैं. तैसेही मनुष्याकार, पशुवाकार, नाना प्रकार के चित्र बनाता है, उन्हे देखके बहुत लोक कित्नेकको अच्छे कहते हैं, कित्नेक कों बुरे कहते हैं, एकही वस्तु से उत्पन्न होते है, वो कुछ वस्तुका फेर नहीं है. फक्त द्रष्टीकाही फेर है. तैसेही सर्व लोक जीव अजीव करके भरा है, उन अनंत प्रमाणुओंको समोहसे पंच सम्वायकी प्रेरणासे पुरण गलन, (मिलन विछडन) होते हुये, अनेक आकार भावमें प्रगमते है. उसमे अनेक पुद्गलोंकी सामान्यता विषेशता, अनंत कालसे होतीही रहती है. और इसही लोकमें राग द्वेषके पुद्गल भी पूर्ण भरें हैं, वो सकर्मी जीवोंकें चमक लोहकी तरह अकर्षण होके लगते है. और मिथ्यात्व तथा मोहकी श-

क्तीसें प्रगमते हैं. जिससे प्रणामोंमें सकल्प विकल्प हो इन वस्तुओंमें प्रेमद्वेष उत्पन्न होता है. जिसपे प्रेम उत्पन्न होता है, और जिसपे द्वेष उत्पन्न होता है वह दोनो वस्तुओं उनही पुद्गलों के प्रमाणु ओंकीं प्रण; मी है. घर, धन, स्त्री, स्वजन, वस्त्र, भुषण, मिष्टान्न, विष, मलीनता वगैरे सर्व वस्तुओं यही पुद्गलोंसे प्रण मी है. क्षिण २ मे इनका रूपांतर हुवाही रहता है. और उस उस प्रमाणें जीवोंकी प्रणतीमें फेर होता है, प्रणतीमें राग द्वेष रूप चमकके भाव उत्पन्न होनेसे, उन्ह पुद्गलोंको अकर्षण कर गुरू (भारी) बनता है, और उस भारी पणनेके योग्यसे उच्च जो मोंक्ष गति है उसे प्राप्त नहीं होताहै, यह संसारमें रुलनेका मुख्य कारण अनादी अनंत है, यह सब पुद्गलोंकी प्रणती स्वभावका गुण है, उसमे चैतन्य लीनता (लुब्धता) धारण कर दुःखी हुवा, विप्रयास पाया. ऐसा निश्चयात्म ज्ञान शुक्लध्यानी कों होताहैं, जिस से सर्व पुद्गलों उपर सें राग द्वेष निर्वृत होनें से, ज्ञानादी गुण प्रगट होते हैं, जिस से निजगुण की पहचान हुइ, की मेरे आत्म गुण, अखंड है, अविनाशीहैं, सदाएकही रूपमें रहने वाले चैतनीक गुण युक्त हैं, अगरू लघुहै, न वो कधी आके लगे, न वो कधी विछडे, आनादी से निज

मेंहीहै. परन्तु पर गुणों से ढके हुयेथे, जिस से इत्ने दिन पैछान में नही आये अब उन्ह पुद्गलो से विप्रित शक्ति धारण करने वाले. गुणका संयोग होने सें, निजगुण प्रगटे, जैसे वायु के जोग से बद्दल विखर तें है, और सूर्य का प्रकाश होताहैं, तैसे पुद्गल पर्याय रूप बद्दल वैराग्य वायू से दूर होने से अनंत ज्ञान जोती का अरुणोदय हुवा जिस से पूर्ण प्रकाश होने का निश्चय हुवा तथा पूर्ण प्रकाश हुवा जिस से कालांत्रमें सर्व पुद्गल परिचय से दुर होवूंगा सत्य चित्य आनन्द रूप प्रगटेगा. तब निरामय नित्य अटल सुखका भुक्ता बनूंगा.

पुष्प फल

यह चार प्रकार का विचार शुक्ल ध्यानी के हृदय मै स्वभाव से ही सदा प्रणति में प्रणमता रहता हैं, जिस के प्रबल प्रभाव से उनकी आत्मा सर्व विभावों पुद्गल प्रणती के सम्बन्ध रूप सें निवृत, सर्व कर्म सें विमुक्त हो अत्यंत शुद्धता. परम पवित्र कों प्राप्त हो- अनंत अक्षय अव्याबाध मोक्ष के सुख में तल्लीन रहतें हैं.

यह शुक्लध्यानीके ४ पाये, ४ लक्षण, ४ आलंब्बन, और ४ अनुप्रेक्षा, यों १६ भेदका वर्णव हुवा.

मै एक अल्पज्ञ विषय कषायका सदन अनेक दुर्गुण करपूरित ऐसे गहन ध्यानका यथार्थ वर्णव करने असमर्थ हूं. क्यों कि शुक्लध्यान मेरें अनुभव के बाहिर है. मैंने जो कुछ लिखा है सो जिनोक्त सूत्र व कित्नेक ग्रंथों के अनुसार और कित्नेक स्थान सद्भाविक बोध रूपभी लेख आया है, इस लिये पाठक गणसे नम्र क्षमा याचता हूं. और ऐसीही क्षमा इस ग्रन्थकी सर्व अशुद्धीयों कें लिये चाहता हूं.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज की स
म्प्रदाय के महंत मुनी श्री खुबा ऋषिजी महा-
राजके शिष्य आर्य मुनी श्री चैना ऋषिजी
महाराज और उनके शिष्य बाल
ब्रह्मचारी मुनी श्री अमोलख ऋषि
जी रचित 'ध्यानकल्पतरू'
ग्रन्थका शुक्लध्यान नामक
चतुर्थ शाखा समाप्तं

ध्यान कल्पतरू समाप्तम्